प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्ज़

कश्मीरी गेट

दिल्ली

मूल्य

चार रुपया आठ आना

मुद्रक

नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स

१०, दरियागंज

दिल्ली

प्राक्कथन

कहानी सुनने और सुनाने का क्रम उतना ही प्राचीन है, जितना कि मानव-समाज। दूसरो के साथ बीती हुई सच्ची घटनाओ को जानने और उनके अनुभव से लाभ उठाने की प्रवृत्ति मनुष्य मे सदा से विद्यमान रही है। इसके साथ ही मनुष्य में एक और प्रवृत्ति है—आत्माभिव्यक्ति की। आत्माभिव्यक्ति की इस प्रवृत्ति द्वारा मनुष्य के 'अहं' भाव को एक विचित्र प्रकार की तृप्ति होती है। प्रत्येक मनुष्य अपने साथ वीती हुई घटनाएं दूसरो को सुनाना चाहता है। जितनी देर तक वह दूसरे को आपबीती सुनाता है, उतनी देर तक वह अपने आप को श्रोता की अपेक्षा कुछ उच्चतर स्तर पर विद्यमान अनुभव करता है। उसे ऐसा अनुभव होता है कि मैंने दूसरे को कुछ दान किया है; इसलिए जहा मानव-समाज में कभी भी सच्ची घटनाएं या कल्पित कहानिया सुननेवालो की कमी नही रही, वहा सुनानेवालों को भी कमी नही रही।

कहानी और कथा

प्राचीन साहित्य में कहानी का हमें वह रूप दिखाई नही पडता, जिस अर्थ में हम आजकल 'कहानी' शब्द का प्रयोग करते है। आजकल हम 'कहानी' शब्द का प्रयोग लघु कथा या आख्यायिका के रूप में करते है। किन्तु प्राचीन साहित्य में हमें कहानी कथा के रूप में दिखाई पडती है। कथा न केवल महाकाव्य का एक अनिवार्य अग होती थी, अपितु नाटको मे भी कथा एक महत्त्वपूर्ण अग थी।

नाटको और महाकाव्यो के अतिरिक्त धार्मिक तत्वो को समझाने के लिये भी कथाओ का सहारा लिया जाता था। अच्छे उपदेशो को हृदयगम कराने के लिये दृष्टान्तपरक कथाए बना ली जाती थी। यो तो सारे ही भारतीय साहित्य में साहित्य् का अन्तिम उद्देश्य 'मोक्ष' और 'कान्ता के समान मधुर वाणी मे सत्कर्तव्यो का उपदेश' भी माना गया था, किन्तु

दृष्टान्तपरक कथाएं अन्य साहित्य से इस दृष्टि से विलकुल भिन्न है कि उनका उद्देश्य एकमात्र सत्कर्तव्यो का प्रतिपादन करना ही था।

नाटको में, महाकाव्य में, उपनिषदो मे और दृष्टान्तपरक कथाओं में कथा कथा के लिये नही रहती थी, किन्तु वह किसी अन्य उच्चतर लक्ष्य का एक गौण अंग मात्र वनकर रह जाती थी। पुराणों में कथा किसी अंश तक इतिहास का अग बनकर रह गयी। इतिहास मे भी कहानी का काफी कुछ अश विद्यमान रहता है और यहां तक कहा जाता है कि अच्छे ढंग से लिखे गये इतिहास कहानियों की अपेक्षा भी अधिक रोचक होते है।

पहला शुद्ध कलाकार

परन्तु प्राचीन साहित्यकारो ने कथा के स्वतन्त्र महत्त्व को भी पहचाना था। इस दृष्टि से गुणाढ्य का स्थान सर्वोच्च कहा जा सकता है। सम्भवतः गुणाढ्य सारे ससार में सवसे पहला साहित्यकार था, जिसने विशुद्ध कहानी पाठको के सम्मुख प्रस्तुत की।

'वृहत्कथा' या 'कथा सरित्सागर' की कहानियां अत्यन्त लोकप्रिय हुई। इनका प्रचार सारे ससार मे हो गया और परवर्ती काल मे इन कथाओ के आधार पर अनेक देशो में अनेक कहानियां लिखी गयी। 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' जैसी विश्वविश्रुत रचनाओ पर भी 'कथा-सरित्सागर' की छाप स्पष्ट दिखाई पडती है। यो तो 'कथा सरित्सागर' में भी नीति सम्वन्धी शिक्षाओ की कमी नही है, किन्तु पंचतत्रकार ने अपनी कहानियों को जिस प्रकार नीति सम्वन्धी श्लोकों से गूथ-गूथ कर उन्हे पूर्णतया राजनीति-शास्त्र का रूप दे दिया है, उसका 'कथा सरित्सागर' मे अभाव है। 'कथा सरित्सागर' की कहानिया मुख्य रूप से लोकानन्द के लिये ही लिखी गयी है।

और आगे चलकर संस्कृत में वाण भट्ट ने 'कादम्बरी' और दण्डी ने 'दशकुमारचरित' लिखा। इन दोनो रचनाओं को किसी सीमा तक उपन्यास कहा जा सकता है और काल की प्राचीनता को देखते हुए ये दोनो उपन्यास अत्यन्त सफल उपन्यास रहे है। संस्कृत साहित्य में वाण को विशेष सम्मान उसकी रचना कादम्बरी के कारण ही प्राप्त हुआ है।

आधुनिक कहानी पश्चिम की देन

किन्तु हिन्दी में आधुनिक कहानी और उपन्यास की परम्परा सस्कृत से न आकर अग्रेजी से आई है। 'सिहासन बत्तीसी' और 'बैताल पच्चीसी' इत्यादि कहानिया संस्कृत से हिन्दी मे अवश्य आई, किन्तु हिन्दी के आधुनिक कहानी-साहित्य में उनका स्थान एक तिरस्कृत कोने में ही है। यद्यपि यह स्वीकार करना होगा कि देश में अल्प शिक्षित जनता में जितना प्रचार इन कहानियो का है, उतना आधुनिक कहानियो का नही हो पाया है।

आधुनिक कहानी हमारी नई पश्चिमी सभ्यता की देन है। कुछ विचारकों का कथन है कि पश्चिमी सभ्यता में जीवन की आवश्यकताएं अधिक होने के कारण जीवन-संघर्ष बहुत उग्र हो गया है। लोगो को अपनी जीवन की आवश्यकताए पूर्ण करने के लिये बहुत अधिक समय तक काम करना पडता है। उनके पास अवकाश कम है। इसलिये लोग पहले की भाति लम्बे-लम्बे उपन्यास पढने के लिये समय नही निकाल पाते। वे ऐसी रचना चाहते है, जो थोडे ही समय में उनका पूरा मनोरजन कर सके। इसीलिये कहानी का आविप्कार हुआ है। कहानी एक ही बैठक मे थोडे से भी अवकाश के समय में पढ़कर समाप्त की जा सकती है। यहा तक कि अग्रेजी के प्रसिद्ध कहानी लेखक एडगर ऐलेन पो ने तो कहानी की परिभाषा ही यह की है कि "कहानी एक ऐसा छोटा-सा आख्यान है, जो एक ही बैठक में पढा जा सके, और जो पाठक पर एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के लिये लिखा गया हो।"

किन्तु कहानी के जन्म का यह कारण पूर्णतया सन्तोषजनक प्रतीत नही होता। यदि यह मान लिया जाए कि जीवन-सघर्ष की विकटता के कारण अवकाश कम हो गया है, तो कहानी के जन्म के उपरान्त उपन्यास का युग समाप्त हो जाना चाहिए। किन्तु वस्तुत. ऐसा हुआ नही। कहानी उपन्यास को साहित्य के क्षेत्र से हटा तो सकी ही नही, उसके समकक्ष भी नही हो पाई है। इसलिये कहानी के जन्म का कारण जीवन-संघर्ष की विकटता अथवा अवकाश की अल्पता न समझ कर यही समझना चाहिए कि मनुष्य की रुचि विविध प्रकार की है। वह बगीचो में भी सैर करना

चाहता है और अपनी मेज पर गुलदस्ता सजा कर भी रखना चाहता है। इसी प्रकार कभी वह उपन्यासो में जीवन के विभिन्न रूपो, विभिन्न समस्याओ और विभिन्न पात्रो का चित्रण देखना चाहता है, तो कभी केवल एक प्रभाव को उत्पन्न करनेवाली किसी एक ही घटना पर आधारित जीवन के किसी एक ही पक्ष की झलक दिखाने वाली कहानी को पढ कर आनन्द लेना चाहता है।

उपन्यास और कहानी मे भेद

कहानी और उपन्यास मे यही अन्तर है। उपन्यास जीवन की विविध परिस्थितियो का और विविध समस्याओ का चित्रण करता है। उसका कथासूत्र वहुत लम्बा और पेचीदा होता है। उसमें पात्रो की सख्या भी काफी अधिक होती है और सारे उपन्यास का लक्ष्य कोई एक ही प्रभाव उत्पन्न करना नही होता। उसमे घटनाओ की संख्या भी जी चाहे जितनी रखी जा सकती है। किन्तु कहानी बहुत छोटी और सीमित वस्तु है। कहानी मे इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि वह जीवन के केवल किसी एक ही पक्ष का चित्रण करती हो, किसी एक ही घटनाक्रम पर आधारित हो और उसमे किसी एक ही व्यक्ति या वस्तु का कलापूर्ण परिमार्जित अकन हो। जो लोग यह समझते है कि उपन्यास और कहानी में केवल आकार के छोटे या बडे होने का ही अन्तर है, वे गलती करते है। लम्बी कहानी उपन्यास नही हो सकती और छोटे उपन्यास को कहानी नही कहा जा सकता। दोनो की रचना मे ही मौलिक अन्तर है।

आधुनिक कहानी का विकास पहले पश्चिमी भाषाओ मे हुआ। उसके बाद अब भारतीय भाषाओ मे भी तेजी से इसका विकास हो रहा है। वस्तुत. इस समय भी कहानी विकास की दशा मे है इसलिए उसके सबंध मे सुनिश्चित और सुनिर्धारित नियम बना पाना कठिन है। अभी भी कहानी के सम्बन्ध मे नित्य नए प्रयोग हो रहे है। पहले कहानी मे घटनाक्रम को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता था, किन्तु उसके बाद चरित्रचित्रण घटनाक्रम से अधिक प्रधान समझा जाने लगा। उसके बाद प्रभाववादी कहानियो का जन्म हुआ। इन कहानियो में न तो घटनाक्रम को ही महत्त्व

दिया जाता है और न चरित्र-चित्रण को। केवल एक विशेष प्रकार का वातावरण या प्रभाव उत्पन्न करने का यत्न किया जाता है।

कहानी चाहे जैसी भी क्यों न हो, किन्तु सक्षेप उसका अनिवार्य गुण होना चाहिये। क्योकि प्रत्येक कहानी का एक सुनिश्चित लक्ष्य रहता है, इसलिए कहानी का प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक घटना और प्रत्येक कथोपकथन उस लक्ष्य की ओर झुका होना चाहिए, कहानी को उस लक्ष्य की ओर ले जाने वाला होना चाहिए। सक्षिप्त होने के कारण कहानी मे एक भी अनावश्यक वर्णन या विस्तार के लिए स्थान नही रहता। न इसमे कथोपकथन ही उपन्यास के कथोपकथनो की भाति लम्बे या उपदेशात्मक हो सकते है।

कहानी के तत्त्व

सामान्यतया कहानी में निम्नलिखित तत्त्व होते है, जिन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। कथावस्तु, चरित्रचित्रण, कथोपकथन, देश-काल या वातावरण, शैली और उद्देश्य।

कथावस्तु, सच कहा जाए तो कहानी की जान ही है। बाकी सारे तत्त्व तो एक तत्त्व का ही कलात्मक विन्यास अर्थात् बनाव-सिंगार करने के साधन मात्र है। इसलिए कहानी-लेखक को अपनी कथावस्तु का चुनाव बहुत सावधानी से करना होता है। इस कथावस्तु का विकास क्रमशः होना चाहियें, जिससे पाठक की उत्सुकता अन्त तक बनी रहे। कहानी की कथावस्तु में एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाली घटनाए रखी जानी चाहिए। परस्पर विरोधी या कहानी के लक्ष्य से असबद्ध घटनाओ के लिए कहानी में बिल्कुल स्थान नही होता।

हम आज जिस युग में रह रहे है, उसमे कथावस्तु के लिए यह भी आवश्यक है कि वह स्वाभाविक और बुद्धि सगत हो। आज की कहानी जीवन के साथ-साथ चलती है। जीवन की साधारण से साधारण घटना भी अच्छी कहानी का आधार बन सकती है। पर यह आवश्यक नही है कि कहानी की कथावस्तु जीवन में घटित हो ही चुकी हो, आवश्यक केवल यह है कि वह ज्यो की त्यो घटित हो सकती हो।

कहानियो के लिए उपयुक्त अनगिनत कथावस्तुए जीवन के क्षेत्र में

बिखरी पडी है। किन्तु उनको देखने, परखने और चुनने के लिए कलाकार की सूक्ष्म दृष्टि अपेक्षित है। जिस लेखक की निरीक्षण और अनुभव की शक्ति जितनी सूक्ष्म और तीव्र होगी, वह उतनी ही अधिक अच्छी कथा-वस्तुएं चुन कर उनसे उत्तम कहानियो की रचना कर सकेगा।

चरित्र-चित्रण

कहानी की कथावस्तु किन्ही पात्रो का सहारा ले कर ही खडी हो सकती है। इसलिए पात्रो के अभाव में कहानी की कल्पना ही नही की जा सकती। इन पात्रो का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व या चरित्र होता है। कहानी लेखक अनेक प्रकार से पात्रो के चरित्र को निखार कर पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है। किन्तु कहानी में किसी भी पात्र के चरित्र के विकास की गुजाइश नही होती, जैसी उपन्यास में होती है। किन्तु प्रत्येक पात्र का चरित्र जितना अधिक स्पष्ट चित्रित होगा, उतना ही अच्छा है।

चरित्र चित्रण के लिए लेखक कई विधियो का प्रयोग कर सकता है। पहली विधि तो सीधे-सादे वर्णन द्वारा चरित्र-चित्रण की है, जिसमें लेखक स्वय वर्णन करके पात्र के विषय में बता देता है कि वह पात्र डील-डौल, रूप-रग और स्वभाव में कैसा है। दूसरी विधि सकेतात्मक चरित्र-चित्रण की है। इस विधि में लेखक पात्र के चरित्र की विशेषताओ का वर्णन नही करता, अपितु उसके रहन-सहन तथा अन्य गतिविधि का वर्णन करता जाता है, जिससे पाठक उस पात्र के चरित्र के सम्बन्ध मे स्वयं अनुमान लगा सकता है। कहना न होगा कि व्यजना प्रधान होने के कारण सकेतात्मक विधि वर्णनात्मक विधि की अपेक्षा कही अधिक अच्छी समझी जाती है।

इसके अतिरिक्त कहानी के कथोपकथन भी चरित्र-चित्रण मे अत्यन्त सहायक होते है। जहा दो पात्र आपस में बात कर रहे है, वहा वे न केवल परस्पर एक-दूसरे के चरित्र पर प्रकाश डाल सकते है, अपितु किसी तीसरे अनुपस्थित पात्र के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ कह सकते है। कथोपकथनों द्वारा बहुत सक्षेप में और बहुत अच्छा चरित्र-चित्रण किया जा सकता है। इन तीन साधनो के अतिरिक्त कहानी की घटनाए भी चरित्र-चित्रण में सहायक हो सकती है। किसी भी विशिष्ट परिस्थिति में अलग-अलग

स्वभाव के मनुष्य अलग-अलग ढंग से व्यवहार करते है । उनका यह व्यवहार ही उनके चरित्र का परिचायक होता है ।

कथोपकथन

कथोपकथन भी कहानी का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । कथोपकथन न केवल पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक होता है, अपितु कहानी में पाठक की रुचि को भी जाग्रत किये रखता है । कथोपकथन पात्रो के चरित्र के अनुकूल होने चाहियें । वे लम्बे न हो । वे कथा की गति को अग्रसर करते हों । कहानी में सजीवता और उत्सुकता बनाये रखने में कथोपकथन का विशेष हाथ रहता है ।

देश-काल

जिस प्रकार उपन्यासो में, उसी प्रकार कहानियो में देश-काल का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है । प्रत्येक कहानी किसी न किसी देश और काल से सम्बद्ध होती है । यदि कहानी उसी देश और काल से सम्बद्ध है, जिसमे लेखक रह रहा है तो विशेष कठिनाई नही होती, क्योकि लेखक को उस देश और काल की परिस्थितियो और रीति-रिवाजों का अच्छा ज्ञान रहता है । किन्तु कठिनाई तब उत्पन्न होती है, जब लेखक किसी ऐसे देश और काल को लेकर कहानी लिखता है, जिसे उसने प्रत्यक्ष देखा नही है । ऐसी दशा में लेखक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपनी रचना लिखने से पहले सब सम्भव उपायो द्वारा उस देश और काल के सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ले, अन्यथा यह सम्भव है कि वह अनेक ऐसी बाते लिख जाए जो उस देश और उस काल मे वैसी होती ही न हो और इसलिए साहित्यिक सत्य के प्रतिकूल हो । ऐसी दशा में उस लेखक की कहानी निकृष्ट कोटि की रह जाएगी ।

शैली

आधुनिक कहानी में लेखन-शैली का भी बहुत महत्त्व है । वैसे तो प्रत्येक कलाकार की अपनी स्वतन्त्र शैली होती है किन्तु कहानी मे उसी लेखक को अधिक सफलता मिल सकती है, जिसकी शैली सरल और सुबोध हो, जिसमें चित्रणात्मकता तथा व्यंजकता को विशेष महत्त्व दिया

गया हो। कहानी मे गुरु-गम्भीर भापा तथा निरर्थक शब्द-जाल की गुजाइश नही होती। वात को कहने के नए से नए चुटीले ढग निकाले जा सकते हैं, किन्तु दुर्वोध कदापि न होने चाहिये। कहानी की भाषा जन साधारण की भापा के जितना अधिक निकट होगी, कहानी की सफलता की आशा उतनी ही अधिक होगी। फिर भी इस विपय मे कोई पक्का, निरपवाद नियम नही वनाया जा सकता।

उद्देश्य

उद्देश्य के सम्वन्ध में इतना कहना पर्याप्त है कि प्रत्येक कहानी का कोई न कोई एक उद्देश्य रहता है। निरुद्देश्य कहानी को आधुनिक परिभापा के अन्तर्गत कहानी कह पाना कठिन है। कहानी का सारा प्रवाह इस एक ही उद्देश्य की ओर अग्रसर होना चाहिए। जो भी वस्तु या प्रसग इस उद्देश्य से सम्वद्ध न हो, उसे कहानी मे से निकाला जा सकता है।

कहानी के अंग

कहानी के तत्त्वो पर दृष्टिपात कर लेने के वाद कहानी के विभिन्न अंगो के सम्वन्ध मे भी कुछ जान लेना उचित होगा। कहानी के कलेवर को चार भागो मे वाटा जा सकता है। प्रारम्भ, विस्तार, चरम सीमा और अन्त। इनमें से प्रत्येक पर लेखक को विशेप ध्यान देना होता है।

कहानी का **प्रारम्भ** अत्यन्त आकर्षक होना चाहिए, ऐसा कि पहला वाक्य पढ़ते ही पाठक के मन मे एक ऐसी उत्सुकता जाग उठे कि वह कहानी को आगे पढे विना रह ही न सके। यदि प्रारम्भ नीरस हुआ तो पाठक शुरू की कुछ पक्तियाँ पढ कर ही कहानी को छोड बैठेगा और भले ही कहानी आगे चलकर अच्छी भी हो, उसे पढेगा नही। इसलिए अच्छी कहानी का प्रारम्भ विशेप रूप से सवारा जाना चाहिए। इस प्रारम्भ मे पाठक के मन मे उत्सुकता जगाने की क्षमता होनी चाहिए।

विस्तार भाग में लेखक अपेक्षाकृत कुछ अधिक स्वतन्त्रता से काम ले सकता है। इस भाग में कुतूहल, दुविधा, और अप्रत्याशित सयोगों के ऐसे अनेक प्रसंग लाये जा सकते है, जो लेखक को अभीष्ट हैं, और जिनसे कथावस्तु अपने उद्देश्य की ओर आगे बढती है। जव लेखक कथावस्तु का

अभीष्ट विस्तार कर चुकता है, तब चरमसीमा वाला भाग आता है। यहां पहुंच कर पाठक की भावनाएं चरम सीमा पर पहुच जाती है और उसे एक प्रकार का चमत्कारिक आनन्द प्राप्त होता है। कई बार कहानी का अन्त चरम सीमा पर ही हो जाता है और कुछ कहानियो में चरम सीमा के बाद भी कहानी कुछ दूर आगे चलती है और उसके बाद अन्त आता है। अन्त चाहे चरम सीमा पर ही हो या उसके कुछ बाद, किन्तु वह उतना ही सुन्दर और सन्तोषजनक होना चाहिए, जितना कि प्रारम्भ। यदि अन्त सुन्दर हुआ तो पाठक के मन में कहानी को पढ़ने के बाद एक प्रकार का सन्तोष-सा बना रह जाएगा।

चरम सीमा तक पहुचने से पहले कहानी का कुतूहल न केवल बना रहना चाहिए, अपितु बढते जाना चाहिए। लेखक की कुशलता इस बात में है कि वह पहले से यह आभास न होने दे कि कहानी का अत क्या होगा। यदि अन्त का पहले से ही आभास हो जाए तो पाठक की उत्सुकता समाप्त हो जाती है और कहानी का रस मारा जाता है।

चार शैलियां

हिन्दी में कहानी लेखन की चार शैलिया प्रचलित है। ऐतिहासिक या कथात्मक शैली, चरित शैली, डायरी शैली और पत्र-शैली। कथात्मक शैली में लेखक कथा-सी सुनाता जाता है। वह सब पात्रो और घटनाओं का वर्णन करता चलता है। चरित्र-शैली में कहानी के पात्र अपनी कथा अपने मुंह से कहते है। लेखक सामने नही आता। डायरी-शैली और पत्र-शैली में कम कहानिया लिखी गई है।

हिन्दी कहानी का विकास

हिन्दी मे कहानी का विकास हुए अभी मुश्किल से ५० साल हुए है। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कही जाती है, जो सन् १९०० मे 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। १९११ के बाद कहानियो का विकास तेजी से हुआ। इस समय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जयशकर प्रसाद, प्रेमचन्द, सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', चतुरसेन शास्त्री, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, जैनेन्द्रकुमार, भगवतीचरण वर्मा, भगवती-

गया हो। कहानी मे गुरु-गम्भीर भाषा तथा निरर्थक शब्द-जाल की गुजाइश नही होती। बात को कहने के नए से नए चुटीले ढग निकाले जा सकते हैं, किन्तु दुर्बोध कदापि न होने चाहिये। कहानी की भाषा जन साधारण की भाषा के जितना अधिक निकट होगी, कहानी की सफलता की आशा उतनी ही अधिक होगी। फिर भी इस विपय मे कोई पक्का, निरपवाद नियम नही वनाया जा सकता।

उद्देश्य

उद्देश्य के सम्बन्ध मे इतना कहना पर्याप्त है कि प्रत्येक कहानी का कोई न कोई एक उद्देश्य रहता है। निरुद्देश्य कहानी को आधुनिक परिभाषा के अन्तर्गत कहानी कह पाना कठिन है। कहानी का सारा प्रवाह इस एक ही उद्देश्य की ओर अग्रसर होना चाहिए। जो भी वस्तु या प्रसग इस उद्देश्य से सम्बद्ध न हो, उसे कहानी में से निकाला जा सकता है।

कहानी के अंग

कहानी के तत्त्वो पर दृष्टिपात कर लेने के वाद कहानी के विभिन्न अंगो के सम्बन्ध मे भी कुछ जान लेना उचित होगा। कहानी के कलेवर को चार भागो मे बाटा जा सकता है। प्रारम्भ, विस्तार, चरम सीमा और अन्त। इनमें से प्रत्येक पर लेखक को विशेप ध्यान देना होता है।

कहानी का **प्रारम्भ** अत्यन्त आकर्षक होना चाहिए, ऐसा कि पहला वाक्य पढते ही पाठक के मन मे एक ऐसी उत्सुकता जाग उठे कि वह कहानी को आगे पढे बिना रह ही न सके। यदि प्रारम्भ नीरस हुआ तो पाठक शुरू की कुछ पक्तियाँ पढ कर ही कहानी को छोड़ बैठेगा और भले ही कहानी आगे चलकर अच्छी भी हो, उसे पढेगा नही। इसलिए अच्छी कहानी का प्रारम्भ विशेप रूप से सवारा जाना चाहिए। इस प्रारम्भ मे पाठक के मन मे उत्सुकता जगाने की क्षमता होनी चाहिए।

विस्तार भाग में लेखक अपेक्षाकृत कुछ अधिक स्वतन्त्रता से काम ले सकता है। इस भाग में कुतूहल, दुविधा, और अप्रत्याशित संयोगो के ऐसे अनेक प्रसग लाये जा सकते है, जो लेखक को अभीष्ट है, और जिनसे कथावस्तु अपने उद्देश्य की ओर आगे बढती है। जब लेखक कथावस्तु का

अभीष्ट विस्तार कर चुकता है, तब **चरमसीमा** वाला भाग आता है। यहां पहुंच कर पाठक की भावनाएं चरम सीमा पर पहुच जाती है और उसे एक प्रकार का चमत्कारिक आनन्द प्राप्त होता है। कई बार कहानी का अन्त चरम सीमा पर ही हो जाता है और कुछ कहानियो में चरम सीमा के बाद भी कहानी कुछ दूर आगे चलती है और उसके बाद अन्त आता है। अन्त चाहे चरम सीमा पर ही हो या उसके कुछ बाद, किन्तु वह उतना ही सुन्दर और सन्तोषजनक होना चाहिए, जितना कि प्रारम्भ। यदि अन्त सुन्दर हुआ तो पाठक के मन मे कहानी को पढ़ने के बाद एक प्रकार का सन्तोष-सा बना रह जाएगा।

चरम सीमा तक पहुचने से पहले कहानी का कुतूहल न केवल बना रहना चाहिए, अपितु बढते जाना चाहिए। लेखक की कुशलता इस बात मे है कि वह पहले से यह आभास न होने दे कि कहानी का अत क्या होगा। यदि अन्त का पहले से ही आभास हो जाए तो पाठक की उत्सुकता समाप्त हो जाती है और कहानी का रस मारा जाता है।

चार शैलियां

हिन्दी में कहानी लेखन की चार शैलिया प्रचलित है। ऐतिहासिक या कथात्मक शैली, चरित शैली, डायरी शैली और पत्र-शैली। कथात्मक शैली में लेखक कथा-सी सुनाता जाता है। वह सब पात्रो और घटनाओ का वर्णन करता चलता है। चरित्र-शैली में कहानी के पात्र अपनी कथा अपने मुह से कहते है। लेखक सामने नही आता। डायरी-शैली और पत्र-शैली मे कम कहानिया लिखी गई है।

हिन्दी कहानी का विकास

हिन्दी में कहानी का विकास हुए अभी मुश्किल से ५० साल हुए है। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कही जाती है, जो सन् १९०० मे 'सरस्वती' पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। १९११ के बाद कहानियो का विकास तेजी से हुआ। इस समय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जयशकर प्रसाद, प्रेमचन्द, सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', चतुरसेन शास्त्री, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, जैनेन्द्रकुमार, भगवतीचरण वर्मा, भगवती-

प्रसाद वाजपेयी आदि अनेक मंजे हुए लेखक इस क्षेत्र में अवतरित हुए।

इस समय अनेक कहानी-लेखक अपनी रचनाओ द्वारा हिन्दी के साहित्य-भंडार को भर रहे है। इनमें यशपाल, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'अज्ञेय', विष्णु प्रभाकर, राधाकृष्ण आदि विशेप रूप से उल्लेखनीय है।

वगला, गुजराती तथा अन्य प्रातीय भापाओ में कहानी-साहित्य का वहुत स्पृहणीय विकास हुआ है। इन भाषाओ से सैकडो कहानियो के अनुवाद हिन्दी मे प्रकाशित हो चुके है और उनका अच्छा आदर हुआ है। बंगला के शरच्चन्द्र, गुजराती के धूमकेतु और उर्दू के कृष्णचन्द्र आज हिन्दी में भी उसी प्रकार प्रसिद्ध है, जिस प्रकार हिन्दी के अन्य कहानी लेखक।

हिन्दी कहानी का भविष्य अति उज्ज्वल है। अनेक व्यावसायिक एवं सामाजिक कारणो से कहानी और उपन्यास को साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा पनपने का अधिक अवसर प्राप्त है।

प्रस्तुत सकलन

प्रस्तुत संकलन के संपादन में जिन वातो का ध्यान रखा गया है, उनके संवंध में दो शव्द कहना अप्रासंगिक न होगा।

यह सौभाग्य की वात है कि हिन्दी कहानी साहित्य इस समय अपने पूर्ण विकास पर है। पुरानी पीढी के कलाकारो ने इसके पौधे को लगाया, नई पीढी ने अपनी साधना से सीचा और नवोदित कलाकार उसे पल्लवित और पुष्पित होने में योगदान दे रहे हैं।

इस सग्रह में निश्चय ही इनमें से वहुतो के नाम नही आ पाए ह। इसका कारण यह कदापि नही है कि उनकी कृतिया साधारण है। अपितु स्थानाभाव ही मुख्य कारण है।

इस सग्रह को विपयो और शैलियो की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण वनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया है। कहानी के क्रमिक विकास की दृष्टि से भी इसे प्रतिनिधि संग्रह कहा जा सकता है, ऐसा हमारा विश्वास है।

कहानियो का क्रम निर्धारित करते हुए किस लेखक की पहली कहानी किस सन् में छपी, इसी क्रम को अपनाया गया है।

किस लेखक की प्रथम रचना कव प्रकाशित हुई, इसकी तालिका निम्न

प्रकार से है :—

सन् १९११—जयशकर प्रसाद
सन् १९११—चन्द्रधर शर्मा गुलेरी
सन् १९१२—विश्वम्भरनाथ 'कौशिक'
सन् १९१४—चतुरसेन शास्त्री
सन् १९१५—प्रेमचन्द
सन् १९१७—रायकृष्णदास
सन् १९२०—सुदर्शन
सन् १९२१—भगवतीचरण वर्मा
सन् १९२२—पाडेय वेचन शर्मा 'उग्र'
सन् १९२३—वृन्दावनलाल वर्मा
सन् १९२३—इलाचन्द्र जोशी
सन् १९२४—भगवती प्रसाद वाजपेयी
सन् १९२८—जैनेन्द्रकुमार
सन् १९२८—चन्द्रगुप्त विद्यालकार
सन् १९२८—सियारामशरण गुप्त
सन् १९३०—राधाकृष्ण
सन् १९३२—अज्ञेय
सन् १९३३—उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
—कमला चौधरी
—होमवती देवी

हो सकता है कि उपर्युक्त तिथिक्रम के बारे मे कुछ मतभेद हो, पर साधारणत: यही तिथिक्रम माना जाता है।

अन्त में हम उन सब लेखक महानुभावो के प्रति आभार मानते है, जिनकी कलापूर्ण कृतियो ने इस संकलन को हिन्दी कहानी के विकास और शैलियों की दृष्टि से प्रतिनिधि सकलन कहलाने योग्य बनाया है।

—सम्पादक

कहानी-क्रम

जयशंकर प्रसाद

: १ :

आकाश-दीप

'बन्दी !'

'क्या है ? सोने दो।'

'मुक्त होना चाहते हो ?'

'अभी नही, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।'

'फिर अवसर न मिलेगा।'

'बड़ा शीत है, कही से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।'

'आंधी की संभावना है। यही अवसर है, आज मेरे बन्धन शिथिल है।'

'तो क्या तुम भी बन्दी हो ?'

'हां, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी है।'

'शस्त्र मिलेगा ?'

'मिल जायगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?'

'हां।'

समुद्र मे हिलोरे उठने लगी। दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे। पहले बन्दी ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया। दूसरे का बंधन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक दूसरे

को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा-स्नेह का असंम्भावित आलिगन। दोनों ही अंधकार से मुक्त हो गए। दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से उसको गले से लगा लिया। सहसा उस बन्दी ने कहा—'यह क्या ? तुम स्त्री हो ?'

'क्या स्त्री होना कोई पाप है ?'—अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

'शस्त्र कहां है ? तुम्हारा नाम ?'

'चम्पा।'

तारक-खचित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अन्धकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आंदोलन था। नौका लहरों मे विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढकने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकालकर, फिर लुढ़कते हुए, बन्दी के समीप पहुंच गई। सहसा पोत से पथदर्शक ने चिल्लाकर कहा—'आँधी !'

आपत्ति-सूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बन्दी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बन्दी लुढककर उस रज्जु के पास पहुचा जो पोत से संलग्न थी। तारे ढंक गए। तरंगें उद्वेलित्त हुईं, समुद्र गरजने लगा। भीषण आंधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों मे लेकर कंदुक-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोनों बन्दी खिलखिला कर हँस पड़े। आंधी के हाहाकार मे उसे कोई न सुन सका।

२

अनंत जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कराने लगी। सागर शांत था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बन्दी मुक्त है।

नायक ने कहा—'बुद्धगुप्त! तुमको मुक्त किसने किया?'

कृपाण दिखाकर बुद्धगुप्त ने कहा—'इसने।'

नायक ने कहा—'तो तुम्हें फिर बन्दी बनाऊंगा।'

'किसके लिए? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा—नायक! अब इस नौका का स्वामी मै हू।'

'तुम? जलदस्यु बुद्धगुप्त? कदापि नही।'—चौककर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उसपर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

'तो तुम द्वन्द्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ; जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा।' इतना कह, बुद्धगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया। चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

भीषण घात-प्रतिघात आरंभ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गति वाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दांतों से पकड़कर, अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिए। चम्पा, भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गए। परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाणवाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों मे बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों मे चमक उठा। नायक की कायर आंखें

प्राण-भिक्षा मांगने लगी ।

बुद्धगुप्त ने कहा—'बोलो, अब स्वीकार है कि नही ?'

'मै अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ । मै विश्वासघात न करूंगा ।'

बुद्धगुप्त ने उसे छोड़ दिया ।

चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना-विहीन कर दिया । बुद्धगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त-बिन्दु विजय तिलक कर रहे थे ।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्त ने पूछा—'हम लोग कहा होगे ?'

'बालीद्वीप से बहुत दूर, संभवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना-जाना होता है । सिंहल के वणिकों का वहा प्राधान्य है ।'

'कितने दिनों मे हम लोग वहां पहुँचेंगे ?'

'अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन मे । तब तक के लिए खाद्य का अभाव न होगा ।'

सहसा नायक ने नाविकों को डांड लगाने की आज्ञा दी, और स्वयं पतवार पकड़कर बैठ गया । बुद्धगुप्त के पूछने पर उसने कहा—'यहां एक जलमग्न शैलखण्ड है । सावधान न रहने से नाव के टकराने का भय है ।'

३

'तुम्हे इन लोगों ने बंदी क्यों बनाया ?'

'वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने ।'

'तुम्हारा घर कहां है ?'

'जाह्नवी के तट पर । मै चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका

हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल-समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनंतता में निस्सहाय हूँ। अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियां सुनाईं। उसी दिन से वंदी बना दी गई'—चम्पा रोष से जल रही थी।

'मैं भी ताम्र-लिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ चम्पा! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हू। अब तुम क्या करोगी?'

'मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूगी। वह जहाँ ले जाय।' चम्पा की आंखे निस्सीम प्रदेश मे निरुद्देश्य थी। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांग मे बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या-व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर कांप गया। उसके मन मे एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पाली लहरों को जगाने लगी। समुद्र-वक्ष पर विलम्बमयी राग-रंजित सन्ध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत कुंतल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा मे अलौकिक एक वरुण-बालिका! वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला। वह थी—कोमलता!

उसी समय नायक ने कहा—'हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये।'

वेला से नाव टकराई। चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। मांझी भी उतरे। बुद्धगुप्त ने कहा—'जब इसका कोई नाम नही है तो

हम लोग इसे चम्पा द्वीप कहेंगे।'

चम्पा हस पड़ी।

४

पांच बरस वाद—

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झलमला रहे थे। चंद्र की उज्ज्वल विजय पर अंतरिक्ष में शरद्लक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को विखेर दिया।

चम्पा के एक उच्च सौध पर बैठी हुई तरुणी चम्पा दीपक जला रही थी। बड़े यंत्र से अभ्रक की मंजूषा मे दीप धरकर उसने अपनी सुकुमार उगलियों से डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढने लगा। भोली-भोली आखें उसे ऊपर चढते बड़े हर्ष से देख रही थी। डोरी धीरे-धीरे खीची गई। चम्पा की कामना थी कि उसका आकाश-दीप नक्षत्रों से हिलमिला जाय, किन्तु वैसा होना असंभव था। उसने आशा भरी आखें फिरा लीं।

सामने जल-राशि का रजत शृंगार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैलमालाएं बना रही थी। और वे मायाविनी छलनाएं अपनी हँसी का कलनाद छोडकर छिप जाती थी। दूर-दूर से धीवरों की वशी की झनकार उनके संगीत-सा मुखरित होता था। चम्पा ने देखा कि तरल संकुल जल-राशि में उसके कंडील का प्रतिविम्ब अस्त-व्यस्त था। वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देखकर पुकारा—'जया!'

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई। वह जंगली थी। नील नभोमडल से मुख मे शुभ्र नक्षत्रों की पंक्ति के

समान उसके दांत हंसते ही रहते। वह चम्पा को रानी कहती, बुद्धगुप्त की आज्ञा थी।

'महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो', चम्पा ने कहा। जया चली गई।

दूरागत पवन चम्पा के अंचल मे विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय मे गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यो वह बे-सुध थी। एक दीर्घकाय वृद्ध पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे चमत्कृत कर दिया। उसने फिरकर कहा—'बुद्धगुप्त!'

'बावली हो क्या? यहां बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है?'

'क्षीरनिधिशायी अनंत की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाश-दीप जलाऊं?'

'हंसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो? उसको, जिसको तुमने भगवान् मान लिया है?'

'हाँ, वह भी कभी भटकते है, भूलते हैं, नही तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?'

'तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पा रानी!'

'मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार मे है महानाविक! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे। इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में—तारिकाओं की मधुर ज्योति में—थिरकती थी! बुद्धगुप्त! उस विजन अनंत मे जब मांझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे।

हम तुम परिश्रम से थककर पालों में शरीर लपेटकर एक-दूसरे का मुँह क्यों देखते थे। वह नक्षत्रों की मधुर छाया—'

'तो चम्पा! अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते है। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।'

'नही, नही, तुमने दस्युवृत्ति तो छोड़ दी परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान् के नाम पर हंसी उड़ाते हो! मेरे आकाश-दीप पर व्यंग कर रहे हो! नाविक! उस प्रचड आधी मे प्रकाश की एक-एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है, जब मै छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र मे जाते थे—मेरी माता, मिट्टी का दीपक वांस की पिटारी मे जलाकर भागीरथी के तट पर बास के साथ ऊचे टाग देती थी। इस समय वह प्रार्थना करती—'भगवान्! मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अधकार मे ठीक पथ पर ले चलना।' और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते—'साध्वी। तेरी प्रार्थना से भगवान् ने भयानक संकटों में मेरी रक्षा की है!' वह गद्गद् हो जाती। 'मेरी माँ! आह नाविक! यह उसी की पुण्य स्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण जलदस्यु! हट जाओ!'—सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठाकर हँस पड़ा।

'यह क्या चम्पा! तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।' कहता हुआ चला गया। चम्पा मुट्ठी वाधे उन्मादिनी-सी घूमती रही।

५

निर्जन समुद्र के उपकूल में वेला से टकराकर लहरें बिखर

जाती है। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शांत गंभीर हलचल में जलनिधि विचार मे निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मीलन किरणों से विरक्त था।

चम्पा और जया धीरे-धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गईं। तरंग से उठते पवन ने उनके वसन को अस्त-व्यस्त कर दिया। जया के संकेत से एक छोटी-सी नौका आई। दोनों के उसपर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चम्पा मुग्ध-सी समुद्र के उदास वातावरण मे अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी।

'इतना जल ! इतनी शीतलता ! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूगी ? नही। तो जैसे वेला से चोट खाकर सिन्धु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूं ? या जलते हुए स्वर्ण-गोलक सदृश अनंत जल मे डूबकर बुझ जाऊं ?'—चम्पा के देखते-देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त बिम्ब धीरे-धीरे सिन्धु मे, चौथाई-आधा फिर संपूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ निश्वास लेकर चम्पा ने मुँह फिरा लिया। देखा तो महानाविक का बजरा उसके पास है। बुद्धगुप्त ने झुककर हाथ बढ़ाया। चम्पा उसके सहारे बजरे पर चढ गई। दोनों पास-पास बैठ गए।

'इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नही। पास ही वह जल-मग्न शैल-खड है। कही नाव टकरा जाती या ऊपर चढ जाती, चम्पा, तो ?'

'अच्छा होता, बुद्धगुप्त ! जल मे बंदी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है !'

'आह चम्पा, तुम कितनी निर्दय हो ! बुद्धगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो, वह क्या नही कर सकता। जो तुम्हारे लिए नए

द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नई प्रजा खोज सकता है, नए राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो····। कहो चम्पा ! वह कृपाण से अपना हृदय-पिण्ड निकाल अपने हाथों अतल जल मे विसर्जन कर दे !' महानाविक जिसके नाम से बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूजता था, पवन थर्राता था, घुटनों के बल चम्पा के सामने छलछलाई आखों से बैठा था।

सामने शैलमाला की चोटी पर, हरियाली मे, विस्तृत जल-प्रदेश मे नील-पिगल संध्या, प्रकृति की एक सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्न-लोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नील जल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों से भर उठी। उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए। वहां एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का। किन्तु उस परिरंभ मे सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल लिया।

'बुद्धगुप्त ! आज मै अपना प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ। हृदय ने छल किया, बार-बार धोखा दिया !'—चमककर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया।

'तो आज मै विश्वास करूं ? मै क्षमा कर दिया गया ?'—आश्चर्य-कपित कंठ से महानाविक ने पूछा।

'विश्वास ? कदापि नही बुद्धगुप्त ! जब मै अपने हृदय पर विश्वास नही कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मै कैसे कहूँ। मै तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूं।'—चम्पा रो पड़ी।

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या, तम से अपनी आंखें बन्द करने लगी थी। दीर्घ निश्वास लेकर महानाविक ने कहा—'इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति मे एक प्रकाश-गृह बनाऊंगा। चम्पा! यहीं उस पहाड़ी पर। संभव है कि मेरे जीवन की धुंधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाय!'

६

चम्पा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी। बहुत दूर तक सिंधुजल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाए था। आज उसी शैलमाला पर चम्पा के आदि निवासियों का समारोह था। उन सबों ने चम्पा को वनदेवी-सा सजाया था। ताम्र-लिप्ति के बहुत से सैनिक और नाविकों की श्रेणी में वन-कुसुम-विभूषिता चम्पा शिविकारूढ़ होकर जा रही थी।

शैल के एक ऊँचे शिखर पर चम्पा के नाविकों को सावधान करने के लिए सुदृढ़-दीप-स्तंभ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्तंभ के द्वार पर खड़ा था। शिविका से सहायता देकर चम्पा को उसने उतारा। दोनो ने भीतर पदार्पण किया था कि बांसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में कुसुमभूषण से सजी वन-बालाएं फूल उछालती हुईं नाचने लगी।

दीप-स्तंभ की ऊपरी खिड़की से वह देखती हुई चम्पा ने जया से पूछा—'यह क्या है जया?—इतनी बालिकाएं कहां से बटोर लाई?' 'आज रानी का ब्याह है न?'—कहकर जया ने हँस दिया।

बुद्धगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसे झक-

झोर कर चम्पा ने पूछा—'क्या यह सच है ?'

'यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह सच भी हो सकता है चम्पा ! कितने वर्षों से मै ज्वालामुखी को अपनी छाती से दवाए हूँ।'

'चुप रहो महानाविक ! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जान कर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा ?'

'मै तुम्हारे पिता का घातक नही हूं चम्पा ! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।'

'यदि मैं इसका विश्वास कर सकती ! वुद्धगुप्त वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय ! आह ! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते !'

जया नीचे चली गई थी। स्तंभ के संकीर्ण प्रकोष्ठ मे वुद्ध-गुप्त और चम्पा एकात मे एक दूसरे के सामने वैठे थे।

वुद्धगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिए। उच्छ्वसित शब्दों मे वह कहने लगा—'चम्पा ! हम लोग जन्मभूमि भारतवर्ष से इतनी दूर इन निरीह प्राणियो में इन्द्र और शची के समान पूजित है। पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किए है। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश ! वह महिमा की प्रतिमा ! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है; परन्तु मै क्यों नही जाता; जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मै कंगाल हूँ !, मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चंद्रकांतमणि की तरह द्रवित हुआ।

'चम्पा ! मै ईश्वर को नही मानता, मै पाप को नही मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मै उस लोक मे विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्वल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक वहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य

मे उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निबिड़ तन में मुस्कराने लगी। पशु-बल और धन के उपासक के मन में किसी शांत और कांत कामना की हँसी खिलखिलाने लगी, पर मैं न हँस सका।

'चलोगी चम्पा! पोतवाहिनी पर असंख्य धन-राशि लादकर राजरानी-सी जन्मभूमि के अंक मे? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिए प्रस्थान करे। महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा सिधु की लहरें मानती है। वे स्वयं उस पोत-पुज को दक्षिण पवन के समान भारत मे पहुँचा देगी। आह चम्पा! चलो।'

चम्पा ने उसके हाथ पकड़ लिये। किसी आकस्मिक झटके ने एक पल भर के लिये दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने कहा—'बुद्धगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित नही। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दु:ख की सहानुभूति और सेवा के लिए।'

'तब मै अवश्य चला जाऊंगा चम्पा! यहां रहकर मै अपने हृदय पर अधिकार कर सकूगा—इसमें संदेह है। आह! इन लहरों में मेरा विनाश हो जाय!'—महानाविक के उच्छ्वास मे विकलता थी। फिर उसने पूछा—'तुम अकेली यहां क्या करोगी?'

'पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप-स्तंभ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण

करूंगी। किन्तु देखती हूं, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश-दीप।'

एक दिन स्वर्ण-रहस्य के प्रभात में चम्पा ने अपने दीप-स्तभ पर से देखा——सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चम्पा का उपकूल छोड़कर पश्चिम-उत्तर की ओर महा जल-व्याल के समान संतरण कर रही है। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चम्पा आ-जीवन उस दीप-स्तंभ मे आलोक जलाती ही रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन द्वीप-निवासी, उस माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी की समाधि-सदृश उनकी पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

: २ :

उसने कहा था

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये है, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबू-कार्ट वालों की बोली का मरहम लगावे। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़ों की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते है, कभी राह चलते पैदलों की आखों के न होने पर तरस खाते है, कभी उनकी पैरों की अंगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते है और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते है, तब अमृतसर मे उनकी बिरादरी वाले तग चक्करदार गलियों में, हर एक लडढी वाले के लिए ठहरकर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा',—कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जंगल मे से राह खेते है। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसीको हटना पड़े? यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नही, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक

करूंगी । किन्तु देखती हूं, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश-दीप ।'

एक दिन स्वर्ण-रहस्य के प्रभात में चम्पा ने अपने दीप-स्तंभ पर से देखा—सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चम्पा के उपकूल छोड़कर पश्चिम-उत्तर की ओर महा जल-व्याल समान संतरण कर रही है। उसकी आखो से आंसू बहने

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है । चम्प जीवन उस दीप-स्तभ में आलोक जलाती ही रही । किन्तु वाद भी वहुत दिन द्वीप-निवासी, उस माया-ममता औ सेवा की देवी की समाधि-सदृश उनकी पूजा करते थे ।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चं गिरा दिया ।

पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली-'हां, हो गई।'

'कब ?'

'कल,—देखते नही यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते मे एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उंडेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कही घर पहुंचा।

२

'राम-राम ! यह भी कोई लड़ाई है ! दिन-रात खंदकों में बठे हड्डियाँ अकड़ गई। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ मे धसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखाता नही—घंटे दो घंटे मे कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोली से बचे तो कोई लड़े। नगर-कोट का जलजला सुना था, यहा दिन मे पचीस जलजले होते हैं। जो कही खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी मे लेटे हुए या घास की पत्तियों मे छिपे रहते है।'

'लहनासिह, और तीन दिन है। चार तो खंदक मे बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथो 'झटका' करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरगी मेम के बाग मे—मखमल का-सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते है, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।'

से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने है —हट जा, जीऊण जोगिए हट जा उमरांवालिए, हट जा, पुत्तांप्यारिए, वच जा, लम्वी उमरांवालिए। समष्टि मे इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्य वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्वी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है ? वच जा।

ऐसे बंबू-कार्ट वालों के बीच मे होकर एक लडका और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके वालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख है। वह अपने मामा के केस धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़िया। दुकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने विना हटता न था।

'तेरे घर कहा है ?'

'मगरे में—और तेरे ?'

'माझे में—यहां कहां रहती है ?'

'अतरसिंह की बैठक मे, वे मेरे मामा होते हैं ?'

'मैं भी मामा के यहां आया हूं, उनका घर गुरु वाजार में है।'

इतने मे दुकानदार निवटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुसकराकर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गई।' इस पर लड़की कुछ आंखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहां, या दूध वाले के यहां अकस्मात् दोनों मिल जाते है। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन वार लड़के ने फिर पूछा— 'तेरी कुड़माई हो गई।' और उत्तर में वही 'धत्' मिला।

एक दिन जव फिर लड़के ने वैसे ही हँसी मे चिढ़ाने के लिए

पूछा तो लड़की, लड़के की सभावना के विरुद्ध बोली-'हा, हो गई।'

'कब ?'

'कल,—देखते नही यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते मे एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उंडेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कही घर पहुचा।

२

'राम-राम ! यह भी कोई लड़ाई है ! दिन-रात खंदकों में बठे हड्डियाँ अकड़ गई। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेह और बरफ ऊपर से। पिडलियो तक कीचड़ मे धंसे हुए है। गनीम कहीं दिखाता नही—घटे दो घंटे मे कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोली से बचे तो कोई लड़े। नगर-कोट का जलजला सुना था, यहा दिन मे पचीस जलजले होते है। जो कही खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए या घास की पत्तियो मे छिपे रहते है।'

'लहनासिह, और तीन दिन है। चार तो खंदक मे बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों 'झटका' करेगे और पेट-भर खाकर सो रहेगे। उसी फिरगी मेम के बाग मे—मखमल का-सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते है, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।'

'चार दिन तक पलक नही झंपी। विना फेरे घोड़ा विगड़ता है और विना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटू तो मुझे दरवार साहव की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कही के, कलो के घोड़े—संगीन देखते ही मुह फाड़ देते है और पैर पकड़ने लगते है। यो अन्धरे मे तीस-तीस मन का गोला फेकते है। उस दिन धावा किया था— चार मील तक एक जर्मन नही छोड़ा था। पीछे जनरल साहव ने हट जाने का कमान दिया, नही तो—।'

'नही तो सीधे वर्लिन पहुँच जाते । क्यों ?' सूबेदार हजारासिह ने मुस्कराकर कहा, 'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नही चलते। वड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ वढ़ गये तो क्या होगा?'

'सूबेदार जी, सच है'। लहनासिह बोला, 'पर करें क्या? हड्डियो-हड्डियों में जो जाड़ा धस गया है। सूर्य निकलता नही और खाई मे दोनों तरफ से चंवे की वावलियों के-से सोते झर रहे है। एक धावा हो जाय तो गर्मी आ जाय।'

'उदमी, उठ, सिगड़ी मे कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने वाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेको। महासिह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल दे।' यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक मे चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गंदला पानी भरकर खाई के बाहर फेकता हुआ बोला—'मै पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के वादशाह का तर्पण।' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के वादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—'अपनी बाड़ी के खरबूजों मे पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर मे नहीं मिलेगा।'

'हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मै तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमाव जमीन यहां माग लूगा और फलों के बूटे लगाऊगा।'

'लाड़ी होरा को भी यहां बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरगी मेम—'

'चुप कर। यहां वालों को शर्म नही।'

'देस-देस की चाल है। आज तक मै उसे समझा न सका कि सिख तम्बाकू नही पीते। वह सिगरेट देने मे हठ करती है, होंठों मे लगाना चाहती है, और मै पीछे हटता हूं तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिये लड़ेगा नही।'

'अच्छा, अब बोधासिह कैसा है ?'

'अच्छा है।'

'जैसे मै जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे ओढाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ मे पड़े रहते हो। कही तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है, और 'निमोनिया' से मरने वालो को मुरब्बे नही मिला करते।'

'मेरा डर मत करो! मै तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूंगा। भाई कीरतसिह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आगन के आम के पेड़ की छाया होगी।'

वजीरासिह ने त्योरी चढ़ाकर कहा—'क्या मरने-मराने की बात लगाई है ?'

इतने में एक कोने से पंजावी गीत की आवाज सुनाई दी। सारी खंदक गीत से गूज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

३

दो पहर रात गई है। अंधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली विसकुटों के तीन टीनों पर अपने दोनों कम्वल बिछा कर और लहनासिंह के दो कम्वल और एक वरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आंख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुवले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

'क्यों बोधा भाई, क्या है ?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—कहो, कैसे हो ? पानी पीकर बोधासिंह बोला—'कंपनी छूट रही है, रोम-रोम मे तार दौड़ रहे हैं। दाँत वज रहे हैं।

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।'

'और तुम ?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।'

'ना, मै नही पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिये—'

'हां, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमे बुन-बुनकर भेज रही है। गुरु उनका भला करें।' यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो ?'

'और नहीं झूठ ?' यों कहकर नाही करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आई—'सूबेदार हजारासिह !'

'कौन ? लपटन साहब ? हुकुम हुजूर' कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भर दूरी पर पूरब के कोने मे एक जर्मन खाई है। उसमे पचास से जियादह जर्मन नही है। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काट-कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव है। जहाॅ मोड़ है, वहाॅ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाॅ दस आदमी छोड़कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीनकर वही, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहां रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिह ने उसे रोका। लहनासिह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उंगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहे, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुंह फेरकर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

'लो, तुम भी पियो।'

आँख मारते-मारते लहनासिह सब समझ गया। मुंह का भाव छिपाकर बोला—'लाओ, साहब।' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियो वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये ?

शायद साहब शराब पिये हुए है और उन्हे बाल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेंजिमेंट मे थे।

'क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे ?'

'लडाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नही।'

'नही साहब, शिकार के वे मजे यहां कहां ? याद है, पारसाल नकली लडाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले में शिकार करने गये थे—'हां, हां'— वही जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अबदुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढाने को रह गया था ? 'बेशक, पाजी कही का'—सामने से वह नील गाय निकली, ऐसी बड़ी कि मैंने कभी न देखी थी। और आप की एक गोली कंधे मे लगी और पट्ठे मे से निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने मे मजा आता है। क्यो साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न। आपने कहा था कि रेंजिमेंट की मेस मे लगायेंगे ? 'हो, पर मैंने वह विलायत भेज दिया' —ऐसे बड़े-बड़े सीग। दो-दो फुट के तो होंगे।'

'हां, लहनासिह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट

नहीं पिया ?'

'पीता हूं साहब, दियासलाई ले आता हूं,—कहकर लहनासिह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नही रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया था कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे मे किसी सोने वाले से वह टकराया।

'कौन ? वजीरासिंह ?'

'हां, क्यों लहना ? क्या, कयामत आ गई ? जरा तो आंख लगने दी होती ?'

४

'होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।'

'क्यों ?'

'लपटन साहब या तो मारे गये है या कैद हो गये है। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुह नही देखा। मैंने देखा है और बातें की है। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू ! और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।'

'तो अब ?'

'अब मारे गये। धोखा है ! सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहां खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले मे धावा होगा। उठो, एक काम करो पलटन के पैरों के निशान देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एक दम लौट आवे। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।'

'हुक्म तो यह है कि यही ।—'

'ऐसी-तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम— जमादार लहनासिह जो इस वक्त यहा सब से वडा अफसर है उसका हुकुम है। मै लप-टनसाहब की खबर लेता हूॅ ।'

'पर यहां तो तुम आठ हो ।'

'आठ नही दस लाख । एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है । चले जाओ ।'

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिह दीवार से चिपक गया । उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से वेल के बराबर के तीन गोले निकाले । तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों मे एक तार-सा वांध दिया । तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रक्खा । वाहर की तरफ जाकर दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी वन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा । धमाके के साथ साहव के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गरदन पर मारा और साहव 'आह ! माई गाड' कहते हुए चित्त हो गए । लहनासिह ने तीनों गोले बीन कर खन्दक के वाहर फेके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हे अपनी जेब के हवाले किया।

साहव की मूर्छा हटी। लहनासिह हंसकर बोला—'क्यो लपटन साहव ! मिजाज कैसा है ? आज मैंने वहुत बातें सीखी। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते है। यह सीखा कि जगाधरी के

जिले मे नील गायें होती है और उनके दो फुट चार इंच के सीग होते है ? यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढाते है और लपटन साहब खोते पर चढ़ते है। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहां से सीख आये ? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डेम' के पांच लफ्ज नही बोला करते थे।'

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नही ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिह कहता गया—'चालाक तो बड़े हो पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देनें के लिए चार आंखे चाहिएं। तीन महीनें हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गांव मे आया था। औरतों को बच्चे होने के तावीज बांटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंज्जा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पंडित है। वेद पढकर उनमें से विमान चलाने की विद्या जान गये है। गौ को नही मारते। हिन्दुस्तान मे आ जायेगे तो गौहत्या बन्द कर देगे। मण्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूड़ दी थी और गाव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गांव में अब पैर रखा तो—'

साहब की जेब मे से पिस्तौल चला और लहना की जांघ मे गोली लगी। इधर लहना की 'हैनरी मार्टिनी' के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—'क्या है ?'

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि 'एक हड़का

हुआ कुत्ता आया था, मार दिया, और 'औरों से सब हाल कह दिया। बन्दूकें लेकर सब तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियां कसकर बांधी। घाव मांस मे ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने मे सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खो की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहा थे आठ (लहनासिह तक-तककर मार रहा था—वह खड़ा था, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढकर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनटों मे वे—

अचानक आवाज आई 'वाह गुरु जी की फतह! वाह गुरु जी का खालसा।' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच मे आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिराना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—'अकाल सिक्खां दी फौज आई वाह गुरु जी दी फतह! वाह गुरु जी दा खालसा!! सत श्री अकाल पुरख!!!' और लड़ाई खतम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों मे पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कंधे मे से गोली आरपार निकल गई। लहनासिह की पसली मे एक गोली लगी। उसने घाव को खंदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी को साफा कसकर कमर-बन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को

दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चांद निकल आया था। ऐसा चांद, जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षपा' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपट रही थी, जब मै दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर उसकी तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहां से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियां चली, जो कोई डेढ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुंची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहा पहुंच जायेंगे, इस लिये मामूली पट्टी बांधकर एक गाड़ी मे घायल लिटाये गए और दूसरी मे लाशे रक्खी गई। सूबेदार ने लहनासिह की जांघ में पट्टी बधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जायगा। बोधासिह ज्वर मे कराह रहा था। वह गाड़ी मे लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नही थे। यह देख लहना ने कहा—"तुम्हे बोधा की कसम है, सूबेदारनी की सौगन्द है, जो इस गाड़ी मे न चले जाओ।"

'और तुम?'

'मेरे लिये वहां पहुंचकर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियां आती होगी। मेरा हाल बुरा नही है।

देखते नही मैं खड़ा हूं ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।"

'अच्छा, पर'—

'बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला, आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो, सूबेदारनी होरा को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था-टेकना लिख देना, और जब घर जाओ तो कह देना कि 'मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैने कर दिया।'

गाड़िया चल पड़ी थी। सूबेदार ने चढते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—'तूने मेरे और बोधा के प्राण वचाये है। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?'

'अब आप गाड़ी पर चढ जाओ। मैने जो कुछ कहा, वह लिख देना और कह भी देना।'

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। 'वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।'

५

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाए एक-एक करके सामने आती है। सारे दृश्यों के रंग साफ होते है। समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

× × ×

लहनासिह बारह वर्ष का है। अमृतसर मे मामा के यहां आया हुआ है। दही वाले के यहा, सब्जी वाले के यहां, हर कही, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़मायी हो गई ? तब, 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने पूछा तो उसने कहा—'हा' कल हो गई,

देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू ?' सुनते ही लहना-सिंह को वहुत दु:ख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

'वजीरासिह, पानी पिला दे !'

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिह नं० ७७ राइफल्स मे जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्दमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही हजारासिह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गाव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिह सूबेदार के यहां पहुंचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेड़े मे से निकलकर आया। बोला—'लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है। बुलाती है। जा, मिल आ।' लहनासिंह भीतर पहुंचा। सूबेदारनी मुझे जानती है ? कब से? रेजिमेंट के क्वार्टरों मे तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नही। दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिह चुप।

"मुझे पहचाना ?"

"नही।"

"तेरी कुड़माई हो गई ?—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटे वाला सालू—अमृतसर में—"

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव वह निकला।

"वजीरा, पानी पिला"—'उसने कहा था।'

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूं। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने वहादुरी का खिताव दिया है, लायलपुर मे जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घघरिया-पलटन क्यो न वना दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक वेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नही जिया।' सूबेदारनी रोने लगी—'अव दोनो जाते है। मेरे भाग ! तुम्हे याद है, एक दिन टागे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास विगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण वचाये थे। आप घोडे की लातों मे चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खडा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को वचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूं।'

रोती-रोती सूवेदारनी ओवरी में चली गई। लहना भी आंसू पोंछता हुआ वाहर आया।

'वजीरासिह, पानी पिला,—उसने कहा था।'

× × ×

लहना का सिर अपनी गोदी पर रक्खे वजीरासिह बैठा है। जव मागता है, तव पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर वोला—

'कौन ? कीरतसिह ?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा—'हां'।

'भइया, मुझे और ऊंचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।'

वजीरा ने वैसा ही किया।

'हां, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यही बैठकर आम खाना। जितना बड़ा मेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने मे मैंने उसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आंसू टप-टप टपक रहे थे।

× × ×

कुछ दिनों पीछे लोगों ने अखबारों मे पढ़ा—

फ्रांस और बेलजियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफ़ल्स जमादार लहनासिंह।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

: ३ :

रक्षा-बन्धन

'मा, मैं भी राखी बांधूगी।'

श्रावण की धूम-धाम है। नगरवासी स्त्री-पुरुष बड़े आनंद तथा उत्साह से श्रावणी का उत्सव मना रहे हैं। बहने भाइयों के और ब्राह्मण अपने यजमानों के राखिया बाध-बांध कर चांदी कर रहे है। ऐसे ही समय एक छोटे से घर मे एक दस वर्ष की बालिका ने अपनी माता से कहा—मां, मैं भी राखी बांधूगी।

उत्तर मे माता ने एक ठंडी सांस भरी और कहा—किसके बांधेगी बेटी—आज तेरा भाई होता तो . . .।

माता आगे कुछ न कह सकी। उसका गला रुंध गया और नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये।

अवोध बालिका ने अठलाकर कहा—तो क्या भइया ही के राखी बांधी जाती है और किसी के नही ? भइया नही है तो अम्मां, मैं तुम्हारे ही राखी बांधूगी।

इस दुःख के समय भी पुत्री की वात सुनकर माता मुसकराने लगी और बोली—अरी तू इतनी बड़ी हो गई—भला कही मां के भी राखी बाधी जाती है।

बालिका ने कहा—वाह, जो पैसा दे उसी के राखी बांधी जाती है।

माता—अरी कंगली! पैसे पर नही—भाई ही के राखी बाधी जाती है।

बालिका उदास हो गई।

माता घर का काम-काज करने लगी। घर का काम शेष करके उसने पुत्री से कहा—आ तुझे न्हिला (नहला) दूं।

बालिका मुख गम्भीर करके बोली—मै नही नहाऊँगी।

माता—क्यों, नहावेगी क्यों नही?

बालिका—मुझे क्या किसी के राखी बांधनी है?

माता—अरी राखी नहीं बांधनी है तो क्या नहावेगी भी नहीं। आज त्योहार का दिन है। चल उठ नहा।

बालिका—राखी नही बाधूगी तो तिवहार काहेका?

माता—(कुछ क्रुद्ध होकर) अरी कुछ सिड़न हो गई है। राखी-राखी रट लगा रक्खी है। बड़ी राखी बांधने वाली बनी है। ऐसी ही होती तो आज यह दिन देखना पड़ता। पैदा होते ही बाप को खा बैठी। ढाई बरस की होते-होते भाई से घर छुड़ा दिया। तेरे ही कर्मों से सब नास (नाश) हो गया।

बालिका बड़ी अप्रतिभ हुई और आंखों में आंसू भरे हुए चुप-चाप नहाने को उठ खड़ी हुई।

× × ×

एक घटा पश्चात् हम उसी बालिका को उसके घर के द्वार पर खड़ी देखते हैं। इस समय भी उसके सुन्दर मुख पर उदासी विद्यमान है। अब भी उसके बड़े-बड़े नेत्रो मे पानी छलछला रहा है।

परन्तु बालिका इस समय द्वार पर क्यों ? जान पड़ता है, वह किसी कार्यवश खड़ी है, क्योकि उसके द्वार के सामने से जब कोई निकलता है, तब वह बड़ी उत्सुकता से उसकी ओर ताकने लगती है। मानो वह मुख से कुछ कहे बिना केवल इच्छा-शक्ति ही से, उस पुरुष का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करती थी, परन्तु जब उसे इसमें सफलता नही होती, तब उसकी उदासी बढ़ जाती है।

इसी प्रकार एक, दो, तीन करके कई पुरुष, बिना उसकी ओर देखे, निकल गये।

अन्त को बालिका निराश होकर घर के भीतर लौट जाने को उद्यत ही हुई थी कि एक सुन्दर युवक की दृष्टि, जो कुछ सोचता हुआ धीरे-धीरे जा रहा था, बालिका पर पड़ी। बालिका की आंखे युवक की आखों से जा लगी। न जाने उन उदास तथा करुणापूर्ण नेत्रों मे क्या जादू भरा था कि युवक ठिठक कर खड़ा हो गया और बड़े ध्यान से सिर से पैर तक देखने लगा। ध्यान से देखने पर युवक को ज्ञात हुआ कि बालिका की आंखें अश्रुपूर्ण है। तब वह अधीर हो उठा। निकट जाकर पूछा—बेटी, क्यों रोती हो ?

बालिका इसका कुछ उत्तर न दे सकी। परन्तु उसने अपना एक हाथ युवक की ओर बढ़ा दिया। युवक ने देखा, बालिका के हाथ मे एक लाल डोरा है। उसने पूछा—यह क्या है ? बालिका ने आंखे नीची करके उत्तर दिया—राखी। युवक समझ गया। उसने मुस्कराकर अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया।

बालिका का मुख-कमल खिल उठा। उसने बड़े चाव से युवक के हाथ में राखी बांध दी।

राखी बंधवा चुकने पर युवक ने जेब मे हाथ डाला और दो

रुपये निकाल कर बालिका को देने लगा। परन्तु बालिका ने उन्हें लेना स्वीकार न किया। बोली—नही, पैसे दो।

युवक—ये पैसे से भी अच्छे है।

बालिका—नही, मै पैसे लूँगी, यह नही।

युवक—ले लो बिटिया। इसके पैसे मगा लेना। बहुत-से मिलेंगे।

बालिका—नही, पैसे दो।

युवक ने चार आने पैसे निकाल कर कहा—अच्छा पैसे भी ले और यह भी ले।

बालिका—नही, खाली पैसे लूगी।

तुझे दोनों लेने पड़ेगे—यह कहकर युवक ने बलपूर्वक पैसे तथा रुपये बालिका के हाथ पर रख दिये।

इतने मे घर के भीतर से किसीने पुकारा—अरी सरसुती (सरस्वती) कहां गई ?

बालिका ने—आई—कहकर युवक की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि डाली और चली गई।

: २ :

गोलागंज (लखनऊ) की एक बड़ी तथा सुन्दर अट्टालिका के एक सुसज्जित कमरे में एक युवक चिता-सागर मे निमग्न बैठा है। कभी वह ठण्डी सांसे भरता है, कभी रूमाल से आखें पोंछता है, कभी आप ही आप कहता है—हा ! सारा परिश्रम व्यर्थ गया। सारी चेष्टाये निष्फल हुईं। क्या करूं। कहां जाऊं। उन्हे कहां ढूंढू। सारा उन्नाव छान डाला। परन्तु फिर भी पता न लगा। युवक आगे कुछ और कहने को था कि कमरे का द्वार धीरे-धीरे खुला और एक नौकर अन्दर आया।

युवक ने विरक्त होकर पूछा—क्यों, क्या है ?

नौकर—सरकार अमरनाथ बाबू आये है।

युवक—(संभलकर) अच्छा, यही भेज दो।

नौकर के चले जाने पर युवक ने रूमाल से आंखें पोंछ डाली और मुख पर गम्भीरता लाने की चेष्टा करने लगा।

द्वार फिर खुला और एक युवक अन्दर आया।

युवक—आओ भाई अमरनाथ !

अमरनाथ—कहो घनश्याम, आज अकेले कैसे बैठे हो ? कानपुर से कब लौटे ?

घनश्याम—कल आया था।

अमरनाथ—उन्नाव भी अवश्य ही उतरे होगे ?

घनश्याम—(एक ठण्डी सांस भरकर)हां, उतरा था। परन्तु व्यर्थ। वहा अब मेरा क्या रखा है ?

अमरनाथ—परन्तु करोगे क्या। हृदय नही मानता है—क्यों ? और सच पूछो तो बात ही ऐसी है। यदि तुम्हारे स्थान पर मै होता तो मैं भी ऐसा ही करता।

घनश्याम—क्या कहूं मित्र, मैं तो हार गया। तुम तो जानते ही हो कि मुझे लखनऊ आकर रहते एक वर्ष हो गया और जब से यहा आया हू उन्हें ढूढने मे कुछ भी कसर उठा नही रखी परन्तु सब व्यर्थ।

अमरनाथ—उन्होंने उन्नाव न जाने क्यों छोड़ दिया और कब छोड़ा—इसका भी कोई पता नही चलता।

घनश्याम—इसका तो पता चल गया न, कि वे लोग मेरे चले जाने के एक वर्ष पश्चात् उन्नाव से चले गये। परन्तु कहाँ गये, यह नही मालूम।

अमरनाथ—यह किससे मालूम हुआ ?

घनश्याम—उसी मकान वाले से जिसके मकान में हम लोग रहते थे।

अमरनाथ—हा शोक !

घनश्याम—कुछ नहीं, यह सब मेरे ही कर्मो का फल है। यदि मैं उन्हें छोड़कर न जाता; यदि गया था तो उनकी खोज-खबर लेता रहता। परन्तु मैं तो दक्षिण जाकर रुपया कमाने में इतना व्यस्त रहा कि कभी याद ही न आई। और जो आई भी तो क्षणमात्र के लिए। उफ, कोई भी अपने घर को भूल जाता है। मैं ही ऐसा अधम—

अमरनाथ—(बात काटकर) अजी नही, सब समय की बात है।

घनश्याम—मैं दक्षिण न जाता तो अच्छा था।

अमरनाथ—तुम्हारा दक्षिण जाना तो व्यर्थ नही हुआ। यदि न जाते तो इतना धन . . . .।

घनश्याम—अजी चूल्हे में जाय धन! ऐसा धन किस काम का? मेरे हृदय में सुख-शांति नही, तो धन किस मर्ज की दवा है?

अमरनाथ—ऐं, यह हाथ में लाल डोरा क्यों बांधा है?

घनश्याम—इसकी तो बात ही भूल गया। यह राखी है।

अमरनाथ—भाई वाह, अच्छी राखी है। लाल डोरे को राखी बताते हो। यह किसने बांधी है। किसी बड़े कन्जूस ब्राह्मण ने बांधी होगी। दुष्ट ने एक पैसा तक खरचना पाप समझा। डोरे ही से काम निकाला।

घनश्याम—संसार में यदि कोई बढिया-से-बढ़िया राखी बन सकती है तो मुझे उससे भी कही अधिक प्यारा यह लाल डोरा है।—यह कहकर घनश्याम ने उसे खोलकर बड़े यत्नपूर्वक अपने

वक्स में रख लिया।

अमरनाथ—भई, तुम भी विचित्र मनुष्य हो। आखिर यह डोरा वांधा किसने है?

घनश्याम—एक वालिका ने।

पाठक समझ गये होंगे कि घनश्याम कौन है।

अमरनाथ—वालिका ने कैसे वांधा और कहां?

घनश्याम—कानपुर मे।

घनश्याम ने सारी घटना कह सुनाई।

अमरनाथ—यदि यह वात है तो सत्य ही यह डोरा अमूल्य है।

घनश्याम—न जाने क्यों, उस वालिका का ध्यान मेरे मन से नही उतरता।

अमरनाथ—उसकी सरलता तथा प्रेम ने तुम्हारे हृदय पर प्रभाव डाला है। भला उसका नाम क्या है?

घनश्याम—नाम तो मुझे नही मालूम। भीतर से किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा। परन्तु मै सुन न सका।

अमरनाथ—अच्छा, खैर! अव तुमने क्या करना विचारा है?

घनश्याम—धैर्य धर कर चुपचाप वैठने के अतिरिक्त और मैं कर ही क्या सकता हूं। मुझ से जो हो सका, मै कर चुका।

अमरनाथ—हा, यही ठीक भी है। ईश्वर पर छोड़ दो! देखो क्या होता।

: ३ :

पूर्वोक्त घटना हुए पांच वर्ष व्यतीत हो गये। घनश्यामदास पिछली वाते प्रायः भूल गये है। परन्तु उस वालिका की याद कभी-

कभी आ जाती है। उसे देखने वे एक बार कानपुर गये भी थे। परन्तु उसका पता न चला। उस घर में पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह वहां से, अपनी माता सहित, बहुत दिन हुए न जाने कहां चली गई। इसके पश्चात् ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उसका ध्यान भी कम होता गया। पर अब भी जब वे अपना बक्स खोलते हैं तब कोई वस्तु देखकर चौक पड़ते है और साथ ही कोई पुराना दृश्य आंखों के सामने आ जाता है।

घनश्याम अभी तक अविवाहित है। पहले तो उन्होंने निश्चय कर लिया था कि विवाह करेंगे ही नही। पर मित्रों के कहने और स्वयं अपने अनुभव ने उनका यह विचार बदल दिया। अब वे विवाह करने पर तैयार है। परन्तु अभी तक कोई कन्या उनकी रुचि के अनुसार नही मिली!

जेठ का महीना है। दिन भर की जला देने वाली धूप के पश्चात् सूर्यास्त का समय अत्यन्त दुःखदायी प्रतीत हो रहा है। इस समय घनश्यामदास अपनी कोठी के बाग मे मित्रो सहित बैठे मन्द-मन्द शीतल वायु का आनन्द ले रहे है। आपस में हास्यरस-पूर्ण बाते हो रही है। बाते करते-करते एक मित्र ने कहा—अजी अभी तक अमरनाथ नही आये?

घनश्याम—वह मनमौजी आदमी है। कहीं रम गया होगा।

दूसरा—नहीं रम नही, वह आजकल तुम्हारे लिये दुलहन ढूंढने की चिन्ता मे रहता है।

घनश्याम—बड़े दिल्लगीवाज हो।

दूसरा—नही, दिल्लगी की बात नही है।

तीसरा—हां, परसों मुझसे भी वह कहता था कि घनश्याम का विवाह हो जाय तो मुझे चैन पड़े।

ये बातें हो ही रही थी कि अमरनाथ लपकते हुए आ पहुंचे।

घनश्याम—आओ यार, बड़ी उमर—अभी तुम्हारी ही याद हो रही थी।

अमरनाथ—इस समय बोलिये नही, नही एकाध को मार बैठूगा।

दूसरा—जान पड़ता है, कही से पिट कर आये हो।

अमरनाथ—तू फिर बोला—क्यो?

दूसरा—क्यों, बोलना किसी के हाथ क्या बेच खाया है ?

अमरनाथ—अच्छा, दिल्लगी छोड़ो, एक आवश्यक बात है।

सब उत्सुक होकर बोले—कहो कहो, क्या बात है ?

अमरनाथ—(घनश्याम से) तुम्हारे लिये दुलहन ढूंढ़ ली है।

सब—(एक स्वर से) फिर क्या तुम्हारी चाँदी है।

अमरनाथ—फिर वही दिल्लगी। यार तुम लोग अजीब आदमी हो।

तीसरा—अच्छा बताओ, कहाँ ढूढी ?

अमरनाथ—यही, लखनऊ मे।

दूसरा—लड़की का पिता क्या करता है ?

अमरनाथ—पिता तो स्वर्गवास करता है।

तीसरा—यह बुरी बात है।

अमरनाथ—लडकी है और उसकी माँ। बस, तीसरा कोई नही। विवाह में कुछ मिलेगा भी नही। लड़की की माता बड़ी गरीब है।

दूसरा—यह उससे भी बुरी बात है।

तीसरा—उल्लू मर गये, पट्ठे छोड़ गये। घर भी ढूढ़ा तो

गरीब। कहां हमारे घनश्याम इतने धनाढ्य और कहां सुसराल इतनी दरिद्र! लोग क्या कहेंगे?

अमरनाथ—अरे भाई, कहने और न कहने वाले हमीं तुम है। और यहाँ उनका कौन बैठा है जो कहेगा।

घनश्यामदास ने ठण्डी सांस ली।

तीसरा—आपने क्या भलाई देखी जो यह सम्बन्ध करना विचारा है।

अमरनाथ—लड़की की भलाई। लड़की लक्ष्मी-रूपा है। जैसी सुन्दर वैसी ही सरल। ऐसी लड़की यदि दीपक लेकर ढूढ़ी जाय तो भी कदाचित् ही मिले।

दूसरा—हा, यह अवश्य एक बात है।

अमरनाथ—परन्तु लड़की की माता लड़का देखकर विवाह करने को कहती है।

तीसरा—यह तो व्यवहार की बात है।

घनश्याम—और, मै भी लड़की देखकर विवाह करूंगा।

दूसरा—यह भी ठीक ही है।

अमरनाथ—तो इसके लिये क्या विचार है?

तीसरा—विचार क्या, लड़की देखेंगे।

अमरनाथ—तो कब?

घनश्याम—कल।

: ४ :

दूसरे दिन शाम को घनश्याम और अमरनाथ गाड़ी पर सवार होकर लड़की देखने चले। गाड़ी चक्कर खाती हुई अहियागज की एक गली के सामने जा खड़ी हुई। गाड़ी से उतरकर दोनों मित्र गली में घुसे। लगभग सौ कदम चलकर अमरनाथ एक छोटे से

मकान के सामने खड़े हो गये और मकान का द्वार खटखटाया।

घनश्याम बोले—मकान देखने से तो बड़े गरीब जान पड़ते हैं।

अमरनाथ—हा, बात तो ऐसी ही है, परन्तु यदि लड़की तुम्हारे पसन्द आ जाय तो यह सब सहन किया जा सकता है।

इतने मे द्वार खुला और दोनों भीतर गये। सन्ध्या हो जाने के कारण मकान में अँधेरा हो गया था। अतएव ये लोग द्वार खोलने वाले को स्पष्ट न देख सके।

एक दालान में पहुँचने पर ये दोनों चारपाइयो पर बिठा दिये गये और बिठाने वाली ने, जो स्त्री थी, कहा—मै जरा दिया जला लूँ।

अमरनाथ—हाँ, जला लो।

स्त्री ने दीपक जलाया और पास ही एक दीवार पर उसे रख दिया, फिर इनकी ओर मुख करके वह नीचे चटाई पर बैठ गई। परन्तु ज्योंही उसने घनश्याम पर अपनी दृष्टि डाली—एक हृदय-भेदी आह उसके मुख से निकली—और वह ज्ञानशून्य होकर गिर पड़ी।

स्त्री की ओर कुछ अँधेरा था इस कारण उन लोगों को उसका मुख स्पष्ट न दिखाई पडता था। घनश्याम उसे उठाने को उठे। परन्तु ज्योही उन्होने उसका सिर उठाया और रोशनी उसके मुख पर पड़ी त्योंही घनश्याम के मुख से निकला—'मेरी माता'—और उठकर वे भूमि पर बैठ गये।

अमरनाथ विस्मित हो काष्ठवत् बैठे रहे। अन्त को कुछ क्षण उपरान्त बोले—उफ, ईश्वर की महिमा बड़ी विचित्र है। जिनके लिये तुमने न जाने कहाँ-कहाँ की ठोकरे खाई वे अन्त को इस

प्रकार मिले।

घनश्याम अपने को सँभाल कर बोले—थोडा पानी मंगाओ।

अमरनाथ—किससे मँगाऊँ। यहाँ तो कोई और दिखाई ही नही पड़ता। परन्तु हाँ, वह लड़की तुम्हारी—कहते अमरनाथ रुक गये। फिर उन्होंने पुकारा—बिटिया, थोड़ा पानी दे जाओ। —परन्तु कोई उत्तर न मिला।

अमरनाथ ने फिर पुकारा—बेटी, तुम्हारी माँ अचेत हो गई है। थोड़ा पानी दे जाओ।

इस 'अचेत' शब्द में न जाने क्या बात थी कि तुरन्त ही घर के दूसरी ओर बरतन खड़कने का शब्द हुआ। तत्पश्चात् एक पूर्ण-वयस्का लड़की लोटा लिए आई। लड़की मुंह कुछ ढंके हुए थी। अमरनाथ ने पानी लेकर घनश्याम की माता की आखे तथा मुख धो दिया। थोड़ी देर मे उसे होश आया। उसने आंखे खोलते ही फिर घनश्याम को देखा। तव वह शीघ्रता से उठकर बैठ गई और बोली—एं, मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ? घनश्याम क्या तू मेरा खोया हुआ घनश्याम है? या कोई और?

माता ने पुत्र को उठा कर छाती से लगा लिया और अश्रुबिन्दु विसर्जन किये। परन्तु वे बिन्दु सुख के थे अथवा दुख के कौन कहे?

लड़की ने यह सब देख सुन कर अपना मुह खोल दिया और 'भैया-भैया' कहती हुई घनश्याम से लिपट गई। घनश्याम ने देखा लड़की कोई और नहीं, वही वालिका है जिसने पाँच वर्ष पूर्व उनके राखी बाँधी थी और जिसकी याद प्रायः उन्हे आया करती थी।

× × × ×

श्रावण का महीना है और श्रावणी का महोत्सव। घनश्याम-दास की कोठी खूब सजाई गई है। घनश्याम अपने कमरे में बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे है। इतने में एक दासी ने आकर कहा——बाबू भीतर चलो।——घनश्याम भीतर गये। माता ने उन्हें एक आसन पर बिठाया और उनकी भगिनी सरस्वती ने उनके तिलक लगा कर राखी बाँधी। घनश्याम ने दो अशर्फियां उसके हाथ में धर दी और मुस्कराकर बोले——क्या पैसे भी देने होंगे ?

सरस्वती ने हंस कर कहा——नही भैया, ये अशर्फियां पैसों से अच्छी है। इनसे बहुत से पैसे आवेगें।

चतुरसेन शास्त्री

: ४ :

खूनी

उसका नाम मत पूछिये। आज दस वर्ष से उस नाम को हृदय से और उस सूरत को आँखों से दूर करने को पागल हुआ फिरता हूं। पर वह नाम और सूरत सदा मेरे साथ है। मैं डरता हूँ, वह निडर है, मैं रोता हूँ, वह हंसता है, मैं मर जाऊँगा, वह अमर है।

मेरी उसकी कभी की जान-पहचान न थी। दिल्ली में हमारी गुप्त सभा थी, दल के सब आदमी आये थे, वह भी आया था। मेरा उसकी ओर कुछ ध्यान न था, वह पास ही खड़ा एक कुत्ते (पिल्ले) से किलोल कर रहा था। हमारे दल के नायक ने मेरे पास आकर सहज-गम्भीर स्वर में धीरे से कहा—"इस युवक को अच्छी तरह पहचान लो, इससे तुम्हारा काम पड़ेगा।"

नायक चले गये और मैं युवक की तरफ झुका। मैंने समझा शायद नायक हम लोगों को कोई एक काम सुपुर्द करेगा।

मैंने युवक से हँसकर कहा—"कैसा प्यारा जानवर है!"

युवक ने कच्चे दूध के समान स्वच्छ आँखें मेरे मुख पर डालकर कहा—"काश! मैं इसका सहोदर भाई होता।" मैं ठठाकर हंस पड़ा। वह मुस्कराकर रह गया। कुछ बातें हुई।

उसी दिन वह मेरा मित्र बन गया !

दिन-पर-दिन व्यतीत हुए। अछूते प्यार की धाराएं दोनों हृदयों मे उमड़कर एक धार हो गई, सरल अकपट व्यवहार पर दोनो मुग्ध हो गये। वह मुझे अपने गॉव में ले गया, किसी तरह न माना। गाव के एक किनारे स्वच्छ अट्टालिका थी। वह गॉव के जमीदार का लडका था —इकलौता बेटा था, हृदय और सूरत का एक-सा। उसकी मॉ ने दो दिन में ही मुझे 'बेटा' कहना शुरू किया। अपने होश के दिनों में मैंने वहाँ सात दिन माता का स्नेह पाया। फिर चला आया। फिर गया और आया। अब तो विना उसके मन न लगता था। दोनों के प्राण दोनों में अटक रहे थे। एक दिन उन्मत्त प्रेम के आवेश मे उसने कहा था—"किसी अघट घटना से जो हम दोनों में से एक स्त्री वन जाय, तो मै तो तुमसे ब्याह ही कर लू।"

नायक ने कई बार पूछा—"क्यों तुमने मुझे उससे मित्रता करने को कहा ?" वह सदा यही कहते—"समय पर जानोगे गुप्त सभा की भयकर गम्भीरता सब लोग नही जान सकते।" नायक मूर्तिमान भयंकर गम्भीर थे।

उस दिन भोजन के बाद उसका पत्र मिला। वह मेरी पाकेट में अब भी धरा है। पर किसी को दिखाऊँगा नहीं। उसे देखकर सांस सुख से लेता हूं, ऑसू बहाकर हल्का हो जाता हूँ। किसी पुराने रोगी को जैसे दवा खुराक बन जाती है, मेरी वेदना की भी यह चिट्ठी खुराक बन गई ह।

चिट्ठी पढ भी न पाया था, नायक ने बुलाया। मै सामने सरलस्वभाव खडा हो गया। बारहों प्रधान हाजिर थे। सन्नाटा भीषण सत्य की तसवीर खीच रहा था। एक ही मिनट मे मैं गभीर

और दृढ़ हो गया। नायक की मर्म-भेदिनी दृष्टि मेरे नेत्रों मे गड़ गई, जैसे तप्त लोहे के तीर आँख मे घुस गये हों। मैं पलक मारना भूल गया, मानों नेत्रों मे आग लग गई हो। पांच मिनट बीत गये। नायक ने गंभीर वाणी से कहा—"सावधान ! क्या तुम तैयार हो ?"

मै सचमुच तैयार था। मै चौका नहीं। आखिर मै उसी सभा का परीक्षार्थी सभ्य था। मैंने नियमानुसार सिर झुका दिया। गीता की रक्तवर्ण रेशमी पोथी धीरे से मेज पर रख दी गई। नियमपूर्वक मैंने दोनों हाथों से उठाकर सिर पर चढ़ा ली।

नायक ने मेरे हाथ से पुस्तक ले ली। क्षण भर सन्नाटा रहा। नायक ने एकाएक उसका नाम लिया और क्षण भर मे छः नली पिस्तौल मेज पर रख दी।

वह छै नामों का शब्द उस पिस्तौल की छहों गोलियों की तरह मस्तक में घुस गया। पर मै कम्पित नही हुआ। प्रश्न करने और कारण पूछने का निषेध था। नियमपूर्वक मैंने पिस्तौल उठाकर छाती पर रखा और स्थान से हटा।

तत्क्षण मैंने यात्रा की। वह स्टेशन पर हाजिर था। अपने पत्र और मरे प्रेम-पत्र पर इतना भरोसा उसे था, देखते ही लिपट गया। घर गये, चार दिन रहे। वह क्या करता है, क्या कहता है, मैं देख-सुन नही सकता था। शरीर सुन्न हो गया था, आत्मा दृढ़ था, हृदय धड़क रहा था, पर विचार स्थिर थे।

चौथे दिन प्रात.काल जलपान करके हम स्टेशन चले। ताँगा नही लिया, जंगल मे घूमने जाने का विचार था। काव्यो की बढ कर आलोचना होती चलती थी। उस मस्ती मे वह मेरे मन की उद्विग्नता भी न देख सका। धूप और खिली। पसीने बह चले।

मैंने कहा—"चलो कही छाँह मे वैठें।" घना कुंज सामने था, वही गये। वैठते ही जेव से दो अमरूद निकालकर उसने कहा—"सिर्फ दो ही पके थे। घर के वगीचे के हैं। यहीं वैठकर खाने के लिए लाया हूँ। एक तुम्हारा, एक मेरा।"

मैंने चुपचाप अमरूद लिया और खाया। एकाएक मै उठ खड़ा हुआ। वह आधा अमरूद खा चुका था, उसका ध्यान उस के स्वाद में था। मैंने धीरे से पिस्तौल निकाली, घोड़ा चढ़ाया और अकम्पित स्वर मे उसका नाम लेकर कहा—"अमरूद फेंक दो और भगवान का नाम लो, में तुम्हे गोली मारता हूं।"

उसे विश्वास न हुआ। उसने कहा—"वहुत ठीक, पर इसे खा तो लेने दो!" मेरा धैर्य छूट रहा था। मैंने दवे कंठ से कहा—"अच्छा खा लो।" खाकर वह खड़ा हो गया, सीधा तन कर। उसने कहा—"अच्छा मारो गोली!" मैंने कहा—"हंसी मत समझो। मै तुम्हें गोली ही मारता हूं, भगवान का नाम लो।" उसने हंसी में ही भगवान का नाम लिया और फिर वह नकली गम्भीरता से खडा हो गया। मैंने एक हाथ से अपनी छाती दवा कर कहा—"ईश्वर की सौगन्ध! हंसी मत समझो, मै तुम्हें गोली मारता हूं!"

मेरी आंखों में वही कच्चे दूध के समान स्वच्छ आँखे मिला कर उसने कहा—"मारो।"

एक-क्षण भर भी विलम्व करने से मै कर्त्तव्य-विमुख हो जाता। पल-पल में साहस डूव रहा था। दनादन दो शब्द गूज उठे। वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। दोनों गोलियां छाती को पार कर गईं।

मै भागा नही। भय से इधर-उधर मैंने देखा भी नही। रोया

भी नही। मैंने उसे गोद में उठाया। मुंह की धूल पोंछी, रक्त साफ़ किया। आखों में इतनी ही देर मे कुछ-का-कुछ हो गया था। देर तक लिये बैठा रहा, जैसे मां सोते बच्चे को—जगने के भय से—लिये, निश्चल बैठी रहती है।

मैं उठा। ईंधन चुना। चिता बनाई और जलाई। अन्त तक बैठा रहा।

बारहों प्रधान हाजिर थे। इसी स्थान पर जाकर मैं खड़ा हुआ। नायक ने खड़े होकर नीरव हाथ बढ़ाकर पिस्तौल मॉगी। पिस्तौल दे दी। कार्य-सिद्धि का संकेत सम्पूर्ण हुआ। नायक ने खड़े होकर वैसे ही गम्भीर स्वर मे कहा—"तेरहवे प्रधान की कुर्सी हम तुम्हें देते है।"

मैंने कहा—"तेरहवें प्रधान की हैसियत से मै पूछता हू कि उसका अपराध मुझे बताया जाय।"

नायक ने नम्रता-पूर्वक जवाब दिया—"वह हमारे हत्या-सम्बन्धी षड्यन्त्रों का विरोधी था, हमें उस पर सरकारी मुख-बिर होने का संदेह था।"

मैं कुछ कहने योग्य न रहा!

नायक ने वैसे ही गम्भीरता से कहा—"नवीन प्रधान की हैसियत से तुम यथेच्छ (एक) पुरस्कार मांग सकते हो।"

अब मै रो उठा। मैंने कहा—"मुझे मेरे वचन फेर दो, मुझे मेरी प्रतिज्ञाओं से मुक्त करो, मै उसी के समुदाय का हूँ। तुम लोगों में नगी छाती पर तलवार के घाव खाने की मरदानगी न हो, तो अपने को देश-भक्त कहने मे संकोच करो। तुम्हारी इन कायर हत्याओं को मैं घृणा करता हूं। मैं हत्यारों का साथी, सलाही और मित्र नहीं बन सकता, तुम तेरहवी कुर्सी जला दो।"

नायक को क्रोध न आया। वारहों प्रधान पत्थर की मूर्ति की तरह वैठे रहे। नायक ने उसी गम्भीर स्वर में कहा—"तुम्हारे इन शब्दों की सजा मौत है, पर नियमानुसार तुम्हे क्षमा पुरस्कार में दी जा सकती है।"

मैं उठकर चला गया .

दस वर्ष व्यतीत हो गये। देश भर मे घूमा, कहीं ठहरा नही, भूख-प्यास, विश्राम और शान्ति की इच्छा ही मर गई दीखती है। वस, अव वही पत्र मेरे नेत्र और हृदय की रोशनी है। मेरा वारंट निकला था। मन मे आई, फांसी पर जा चढ़ूं, फिर सोचा—"मरते ही उस सज्जन को भूल जाऊँगा। मरनें में अव क्या स्वाद है ? जीना चाहता हूं। किसी तरह जीते रहने की लालसा मन में वसी है. जीते जी ही मैं उसे देख और याद कर सकता हूं!"

: ५ :

बड़े भाईसाहब

मेरे भाई मुझ से पांच साल बड़े थे, लेकिन् केवल तीन दर्जे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढना शुरू किया था, जिसमें मैंने शुरू किया, लेकिन तालीम जैसे महत्त्व के मामले में वह जल्दबाजी से काम लेना पसन्द न करते थे। इस भवन की बुनियाद खूब मज़बूत डालनी चाहते थे, जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल मे करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो, तो मकान कैसे पायदार बने।

मै छोटा था, वह बडे थे। मेरी उम्र नौ साल की थी, वह चौदह साल के थे। उन्हे मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा और जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुक्म को कानून समझू।

वह स्वभाव से बड़े अध्ययन-शील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते। और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों-बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस-बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर

को वार-बार सुन्दर अक्षरों मे नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता न कोई सामंजस्य। मसलन एक बार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी—स्पेशल, अमीना, भाइयो-भाइयो, दर-असल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत राधेश्याम, एक घण्टे तक—इसके वाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने वहुत चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालू, लेकिन असफल रहा। और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वह नवी जमात में थे, मैं पांचवी मे। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटा मुह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढने मे बिलकुल न लगता था। एक घण्टा भी किताव लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान में आ जाता, और कभी कंकरिया उछालता, कभी कागज की तितलिया उड़ाता, और कही कोई साथी मिल गया, तो पूछना ही क्या। कभी चारदीवारी पर चढकर नीचे कूद रहे है, कभी फाटक पर सवार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनन्द उठा रहे है, लेकिन कमरे में आते ही भाईसाहब का वह रुद्र-रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता—कहाँ थे ? हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में हमेशा पूछा जाता था और इसका जवाव मेरे पास केवल मौन था। न जाने मेरे मुह से यह बात क्यों न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मेरा अपराध स्वीकार है और भाईसाहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि स्नेह और रोष से मिले हुए शव्दों मे मेरा सत्कार करें—

"इस तरह अग्रेजी पढोगे, तो जिन्दगी भर पढते रहोगे और एक हर्फ न आयगा। अंग्रेजी पढ़ना कोई हंसी-खेल नही है

कि जो चाहे पढ ले; नहीं तो ऐरा-गैरा, नत्थू-खैरा सभी अंग्रेजी के विद्वान् हो जाते। यहां रात-दिन आंखे फोड़नी पड़ती है, और खून जलाना पड़ता है, तब कही यह विद्या आती है। और आती क्या है, हां, कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्वान् भी शुद्ध अंग्रेजी नही लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मै कहता हूं, तुम कितने घोंघा हो कि देखकर भी सबक नही लेते। मै कितनी मेहनत करता हूं, यह तुम अपनी आखों देखते हो, अगर नही देखते, तो यह तुम्हारी आंखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है। इतने मेले-तमाशे होते है, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है? रोज ही क्रिकेट और हाकी मैच होते है, मै पास नही फटकता। हमेशा पढता रहता हू, उस पर भी एक-एक दर्जे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूं, फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कूद मे वक्त गंवा कर पास हो जाओगे? मुझे तो दो ही तीन साल लगते है, तुम उम्र भर इसी दर्जे मे पड़े सड़ते रहोगे। अगर तुम्हे इस तरह उम्र गवानी है, तो बेहतर है, घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डण्डा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रुपये क्यों बरबाद करते हो?"

मै यह लताड़ सुनकर आसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था। अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे? भाईसाहब भी उपदेश की कला मे निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बाते कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-बाण चलाते, कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत टूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने की शक्ति मै अपने मे न पाता था। और उस निराशा में जरा देर के लिये मै सोचने लगता—क्यों न घर चला जाऊं। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमें हाथ डालकर क्यों अपनी जिन्दगी

को वार-वार सुन्दर अक्षरों में नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमे न कोई अर्थ होता न कोई सामंजस्य। मसलन एक वार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी—स्पेशल, अमीना, भाइयो-भाइयो, दर-असल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत राधेश्याम, एक घण्टे तक—इसके बाद एक आदमी का चेहरा वना हुआ था। मैंने वहुत चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालू, लेकिन असफल रहा। और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वह नवी जमात मे थे, मैं पाचवी में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटा मुह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढ़ने में बिलकुल न लगता था। एक घण्टा भी किताव लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान मे आ जाता, और कभी कंकरिया उछालता, कभी कागज की तितलियां उड़ाता, और कही कोई साथी मिल गया, तो पूछना ही क्या। कभी चारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे है, कभी फाटक पर सवार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनन्द उठा रहे है, लेकिन कमरे में आते ही भाई साहब का वह रुद्र-रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता—कहाँ थे? हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में हमेशा पूछा जाता था और इसका जवाव मेरे पास केवल मौन था। न जाने मेरे मुंह से यह वात क्यों न निकलती कि जरा वाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मेरा अपराध स्वीकार है और भाईसाहव के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि स्नेह और रोष से मिले हुए शव्दों मे मेरा सत्कार करें—

"इस तरह अंग्रेजी पढोगे, तो जिन्दगी भर पढ़ते रहोगे और एक हर्फ न आयगा। अग्रेजी पढ़ना कोई हंसी-खेल नही है

कि जो चाहे पढ़ ले; नहीं तो ऐरा-गैरा, नत्थू-खैरा सभी अंग्रेजी के विद्वान् हो जाते। यहां रात-दिन आंखे फोड़नी पड़ती है, और खून जलाना पड़ता है, तब कही यह विद्या आती है। और आती क्या है, हां, कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्वान् भी शुद्ध अंग्रेजी नही लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मै कहता हूं, तुम कितने घोंघा हो कि देखकर भी सबक नही लेते। मै कितनी मेहनत करता हू, यह तुम अपनी आंखों देखते हो, अगर नही देखते, तो यह तुम्हारी आखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है। इतने मेले-तमाशे होते है, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है ? रोज ही क्रिकेट और हाकी मैच होते है, मै पास नही फटकता। हमेशा पढता रहता हू, उस पर भी एक-एक दर्जे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूं, फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कूद मे वक्त गवा कर पास हो जाओगे ? मुझे तो दो ही तीन साल लगते है, तुम उम्र भर इसी दर्जे मे पड़े सड़ते रहोगे। अगर तुम्हे इस तरह उम्र गवानी है, तो बेहतर है, घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डण्डा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रुपये क्यों बरबाद करते हो ?"

मै यह लताड़ सुनकर आसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था। अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे ? भाईसाहब भी उपदेश की कला मे निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बाते कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-बाण चलाते, कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत टूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने की शक्ति मै अपने में न पाता था। और उस निराशा में जरा देर के लिये मै सोचने लगता—क्यों न घर चला जाऊं। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमें हाथ डालकर क्यों अपनी जिन्दगी

खराब करूं ? मुझे मूर्ख रहना मंजूर था लेकिन उतनी मेहनत ! मुझे तो चक्कर आ जाता था, लेकिन घण्टे दो घण्टे के वाद निराशा के बादल फट जाते और मै इरादा करता कि आगे से खूव जी लगाकर पढूगा । चटपट एक टाइम-टेबुल वना डालता । विना पहले से नक्शा बनाये, कोई स्कीम तैयार किये काम कैसे शुरू करूं। टाइम-टेबुल में खेल-कूद की मद विलकुल उड़ जाती। प्रातःकाल उठना, छः बजे मुह-हाथ धो, नाश्ता कर पढने बैठ जाना। छः से आठ तक अंग्रेजी, आठ से नौ तक हिसाव, नौ से साढे नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढे तीन बजे स्कूल से वापस होकर आधा घण्टा आराम, चार से पांच तक भूगोल, पांच से छः तक ग्रामर, आधा घण्टा होस्टल के सामने टहलना, साढ़े छः से सात तक अग्रेजी कम्पोजीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी, दस से ग्यारह तक विविध-विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम-टेबुल वना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हलके-हलके झोंके, फुटबाल की वह उछल-कूद, कवड्डी के वह दांव-घात, वाली-बाल की वह तेजी और फुर्ती मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खीच ले जाती और वहां जाते ही मै सव कुछ भूल जाता। वह जान-लेवा टाइम-टेबुल, वह आख-फोड़ पुस्तकें, किसी की याद न रहती, और फिर भाईसाहव की नसीहत और फजीहत का अवसर मिल जाता। उनके साये से भागता, उनकी आंखों से दूर रहने की चेष्टा करता, कमरे में इस तरह दबे पांव आता कि उन्हें खबर न हो ! उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे

प्राण निकले। हमेशा सिर पर एक नंगी तलवार सी लटकती मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के बन्धन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियां खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता।

: २ :

सालाना इम्तहान हुआ। भाईसाहब फेल हो गये, मैं पास हो गया और दर्जे मे प्रथम आया। मेरे और उनके बीच में केवल दो साल का अन्तर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथों लूं—आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गई ? मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दर्जे में अव्वल भी हूं। लेकिन वे इतने दु:खी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हां, अब अपने ऊपर मुझे कुछ अभिमान हुआ और आत्माभिमान भी बढ़ा। भाईसाहब का रोब मुझपर न रहा। आजादी से खेल-कूद मे शरीक होने लगा। दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फजीहत की, तो साफ कह दूगा—आपने अपना खून जलाकर कौन-सा तीर मार लिया। मै तो खेलते-कूदते दर्जे में अव्वल आ गया। जबान से वह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंग-ढंग से साफ जाहिर होता था कि भाईसाहब का वह आतंक मुझपर नही है। भाईसाहब ने इसे भांप लिया—उनकी सहज-बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मै भोर का सारा समय गुल्ली-डण्डे की भेट करके ठीक भोजन के समय लौटा तो भाई-साहब ने मानो तलवार खीच ली और मुझ पर टूट पड़े—"देखता हूं कि इस साल पास हो गए और दर्जे मे अव्वल आ गए,

तो तुम्हे दिमाग हो गया है, मगर भाई जान, घमंड तो बड़े-बड़ों का नहीं रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है ! इतिहास मे रावण का हाल तो पढा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया ? या योही पढ गये ? महज इम्तहान पास कर लेना कोई चीज़ नही, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढो उसका अभिप्राय समझो। रावण भूमंडल का स्वामी था। ऐसे राजों को चक्रवर्ती कहते है। आजकल अंग्रेजों के राज्य का विस्तार बिलकुल बढा हुआ है, पर उन्हें चक्रवर्ती नही कह सकते। संसार मे अनेकों राष्ट्र अग्रेजों का आधिपत्य स्वीकार नही करते। बिलकुल स्वाधीन है। रावण चक्रवर्ती राजा था, संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े-बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे, मगर उसका अन्त क्या हुआ ? घमंड ने उसका नाम-निशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चुल्लू पानी देने वाला भी न बचा। आदमी और जो कुकर्म चाहे करे, पर अभिमान न करे, इतराये नहीं। अभिमान किया और दीन-दुनिया दोनों से गया। शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अभिमान हुआ कि ईश्वर का उससे बढकर सच्चा भक्त कोई है ही नहीं। अन्त मे यह हुआ कि स्वर्ग से नर्क में ढकेल दिया गया। शाहे रूम ने भी एक बार अहंकार किया था। भीख मांग-मांग कर मर गया। तुमने अभी केवल एक दर्जा पास किया है, और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया। तब तो तुम आगे बढ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नही पास हुए, अंधे के हाथ बटेर लग गई। मगर बटेर केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार-बार नहीं लग सकती। कभी-कभी गुल्ली-डण्डे मे भी अन्धा-चोट निशाना पड़ जाता है।

इससे कोई सफल खिलाड़ी नही हो जाता। सफल खिलाड़ी वह है जिसका कोई निशाना खाली न जाय। मेरे फेल होने पर मत जाओ। मेरे दर्जे मे आओगे, तो दातों पसीना जाएगा, जब अलजबरा और जॉमेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे, और इग्लिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा। बादशाहों के नाम याद रखना आसान नही। आठ-आठ हेनरी हो गुजरे है। कौन-सा काण्ड किस हेनरी के समय में हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो? हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवा लिखा और सब नम्बर गायब! सफाचट! सिफर भी न मिलेगा, सिफर भी! हो किस खयाल मे? दरजनो तो जेम्स हुए है, दरजनो विलियम, कोड़ियों चार्ल्स! दिमाग चक्कर खाने लगता है। आंधी रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, सोयम, चहराम, पचम लगाते चले गए। मुझसे पूछते तो दस लाख नाम बतला देता। जामेट्री तो बस खुदा की पनाह! अ ब ज की जगह आ ज ब लिख दिया तो सारे नम्बर कट गए। कोई इन निर्दयी मुमतिहनो से नहीं पूछता कि आखिर अ ब ज और आ ज ब मे क्या फर्क है। और व्यर्थ की बात के लिए क्यो छात्रों का खून करते है? दाल-भात-रोटी खाई या भात-दाल-रोटी खाई, इसमे क्या रक्खा है, मगर इन परीक्षको को क्या परवाह, वह तो वही देखते है जो पुस्तक में लिखा रहता है। चाहते है कि लडके अक्षर-अक्षर रट डाले। और इसी रटन्त का नाम शिक्षा रख छोड़ा है, और आखिर इन बे-सिर-पैर की बातों के पढ़ने से फायदा? इस रेखा पर वह लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगुना होगा पूछिए इससे प्रयोजन? दुगुना नही चौगुना हो जाय, या आधा ही रहे, मेरी बला से,

लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफात याद करनी पड़ेगी। कह दिया—'समय की पाबंदी' पर एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नो से कम न हो। अब आप कापी सामने खोले, कलम हाथ मे लिये, उसके नाम को रोइये। कौन नही जानता कि समय की पाबन्दी बहुत अच्छी बात है, इससे आदमी के जीवन में संयम आ जाता है, दूसरों का उसपर स्नेह होने लगता है और उसके कारोबार मे उन्नति होती है, लेकिन इस जरा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखे ? जो बात एक वाक्य मे कही जा सके, उसे चार पन्ने कैसे लिखे ? जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्नो मे लिखने की जरूरत ? मै तो इसे हिमाकत कहता हू । यह तो समय की किफायत नहीं, बल्कि उसका दुरुपयोग है कि व्यर्थ मे किसी बात को ठूस दिया जाय। हम चाहते है आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले; मगर नही आपको चार पन्ने रगने पड़ेगे, चाहे जैसा लिखिए। और पन्ने भी फुलस्केप के आकार के ! यह छात्रों पर अत्याचार नही तो और क्या है ? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है कि 'समय की पाबंदी' पर संक्षेप मे एक नोट लिखो जो चार पन्नों से कम न हो। ठीक सक्षेप में तो चार पन्ने हुए, नही शायद सौ-दो-सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौड़िये और धीरे भी। है उल्टी बात या नही ? बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है; लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज भी नही। उस पर दावा है कि हम अध्यापक है। मेरे दर्जे मे आओगे लाला तो ये सारे पापड़ बेलने पडेंगे, और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इस दर्जे में अव्वल आ गए, तो जमीन पर पांव नही रखते। इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूं, लेकिन तुमसे बड़ा हूँ।

संसार का मुझे तुमसे ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूं उसे गिरह बांधिये, नहीं पछताएगा।"

स्कूल का समय निकट था, नही ईश्वर जाने यह उपदेश-माला कब समाप्त होती। भोजन आज मुझे निस्वाद-सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिये जायें। भाई साहब ने अपने दर्जे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खीचा था, उसने मुझे भय-भीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़कर घर नही भागा, यही ताज्जुब है; लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों मे मेरी अरुचि ज्यों-की-त्यों बनी रही। खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से जाने न देता। पढ़ता भी था; मगर बहुत कम, बस इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाय और दर्जे मे जलील न होना पड़े। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था वह फिर लुप्त हो गया, और फिर चोरों का-सा जीवन कटने लगा।

: ३ :

फिर सालाना इम्तहान हुआ, और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मै फिर पास हुआ और भाईसाहब फिर फेल हो गए। मैंने बहुत मेहनत नही की; पर न जाने कैसे दर्जे में अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाईसाहब ने प्राणांतक परिश्रम किया था। कोर्स का एक-एक शब्द चाट गए थे। दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उधर, छः से साढ़े नौ तक स्कूल जाने के पहले। मुद्रा कांतिहीन हो आई थी, मगर बेचारे फेल हो गये। मुझे उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया तो वह रो पड़े और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने की खुशी आधी हो गई। मै भी फेल हो गया होता तो भाईसाहब को इतना दुःख न होता; लेकिन

विधि की वात कौन टाले ?

मेरे और भाईसाहव के वीच में अव केवल एक दर्जे का अन्तर और रह गया। मेरे मन में एक कुटिल भावना और उदय हुई कि कही भाईसाहव एक साल और फेल हो जायें तो मैं उनके वरावर हो जाऊ, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेगे; लेकिन मैने इस कमीने विचार को दिल से वल-पूर्वक निकाल डाला। आखिर वह मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डांटते है। मुझे इस वक्त अप्रिय लगता अवश्य, मगर यह शायद उनके उपदेशों का ही असर हो कि मै दनादन पास हो जाता हूं और इतने अच्छे नम्वरों से। अव की भाईसाहव वहुत कुछ नर्म पड़ गए थे। कई वार मुझे डांटने का अवसर पाकर भी उन्होंने धीरज से काम लिया, शायद अव वह खुद समझने लगे थे कि डांटने का अधिकार उन्हे नहीं रहा था, या रहा तो वहुत कम। मेरी स्वच्छन्दता भी वढी, मै उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मै तो पास हो ही जाऊंगा पढू या न पढू, मेरी तकदीर वलवान है; इसलिए भाईसाहव के डर से जो थोड़ा-वहुत पढ़ लिया करता था, वह भी वन्द हुआ। मुझे कनकौवे उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था, और अव सारा समय पतंगवाजी ही की भेंट होता था; फिर भी मै भाईसाहव का अदव करता था, और उनकी आंख वचाकर कनकौवे उड़ाता था। माझा देना, कन्ने वांधना, पतंग टूरनामेंट की तैयारियां आदि समस्याये सव गुप्त रूप से हल की जाती थी। मैं भाईसाहव को यह सन्देह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरों में कम हो गया है।

एक दिन सन्ध्या समय होस्टल से दूर मै एक कनकौवा लूटने

बेतहाशा दौड़ा जा रहा था। आंखें आसमान की ओर थी, और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मन्द गति से झूमता पतन की ओर चला आ रहा था, मानो कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नये संस्कार ग्रहण करने जा रही हो। बालकों की एक पूरी सेना लम्बे और झाड़दार बांस लिये उनका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को अपने आगे-पीछे की खबर न थी, सभी मानो उस पतग के साथ ही आकाश मे उड़ रहे थे, जहां सव कुछ समतल है, न मोटर कारे है, न ट्राम, न गाड़िया।

सहसा भाईसाहब से मेरी मुठभेड़ हो गई, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होने वही मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्र भाव से बोले—"इन बाजारी लौडों के साथ धेले के कनकौवे के लिए दौड़ते हुए तुम्हे शर्म नही आती? तुम्हे इसका भी कुछ लिहाज नहीं कि अब नीची जमात मे नही हो; बल्कि आठवी जमात में आ गए हो और मुझसे केवल एक दर्जा नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ तो अपनी पोजीशन का खयाल करना चाहिये। एक जमाना था कि लोग आठवॉ दरजा पास करके नायब-तहसील-दार हो जाते थे। मै कितने ही मिडिलचियों को जानता हूं जो आज अव्वल दर्जे के डिप्टी-मजिस्ट्रेट या सुपरिन्टेन्डेन्ट है। कितने ही आठवीं जमात वाले हमारे लीडर और समाचार-पत्रों के सम्पादक है। बड़े-बड़े विद्वान उनकी मातहती मे काम करते है और तुम उसी आठवें दर्जे में आकर बाजारी लौडों के साथ कनकौवे के लिए दौड़ रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कमअक्ली पर दुःख होता है। तुम जहीन हो, इसमे शक नही। लेकिन वह जहन किस काम का, जो हमारे आत्म-गौरव की हत्या कर डाले,

तुम अपने दिल मे समझते हो कि मैं भाईसाहव से महज एक दर्जा नीचे हूं, और अव उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नहीं है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पॉच साल वड़ा हूं और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत मे आ जाओ—और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्सन्देह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे, और शायद एक साल वाद मुझ से आगे भी निकल जाओ—लेकिन मुझ में और तुम मे जो पांच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं तुमसे पाँच साल वड़ा हूं और हमेशा रहूंगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजुरवा है, तुम उसकी वरावरी नही कर सकते, चाहे तुम एम० ए० और डी० लिट् और डी० फिल० ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबे पढ़ने से नही आती, दुनिया देखने से आती है। हमारी माँ ने कोई दर्जा नहीं पास किया और दादा भी शायद पाँचवी-छठी जमाअत के आगे नहीं गये, लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनिया की विद्या पढ़ लें, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता है वल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का हमसे ज्यादा तजरवा है और रहेगा। अमेरिका मे किस तरह की राज-व्यवस्था है, और आठवें हेनरी ने कितने व्याह किये और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, यह वाते चाहे उन्हें न मालूम हों; लेकिन हजारों ऐसी वातें है, जिनका ज्ञान उन्हे हम से और तुमसे ज़्यादा है। दैव न करे, आज मैं वीमार हो जाऊं, तो तुम्हारे हाथ-पाँव फूल जायँगे। दादा को तार देने के सिवाय तुम्हे और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह दादा हों, तो किसी को तार न दे, न घवराये, न वदहवास हों। पहले खुद मर्ज पहचानकर इलाज करेंगे, उसमें

सफल न हुए, तो किसी डाक्टर को बुलायेंगे। बीमारी तो खैर बड़ी चीज है, हम-तुम तो इतना भी नही जानते कि महीने-भर का खर्च महीना-भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते है, उसे हम बीस बाईस दिन तक खर्च कर डालते हैं, और फिर पैसे-पैसे को मुहताज हो जाते है। नाश्ता वन्द हो जाता है, धोबी और नाई से मुह चुराने लगते है; लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे है उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुम्ब का पालन किया है जिसमें सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेड-मास्टर साहब ही को देखो, एम ए. है कि नही, और यहाँ के एम. ए. नहीं, आक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते है, लेकिन उनके घर का इन्तजाम कौन करता है ? उनकी बूढी मां। हेडमास्टर साहब की डिग्री यहां बेकार हो गई। पहले खुद घर का इन्तजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था, कर्जदार रहते थे। जब से उनकी माता जी ने प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई है। तो भाई जान, यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गये हो, और अब स्वतन्त्र हो। मेरे देखते तुम बेराह न चलने पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे तो मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हू। मै जानता हूं, तुम्हें मेरी बातें जहर लग रही है।"

मैं उनकी इस युक्ति से नतमस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाईसाहब के प्रति मेरे मन मे श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आंखों से कहा—"हरगिज नही। आप जो कुछ फरमा रहे है, वह बिल्कुल सच है, और आपको उसके कहने का अधिकार है।"

तुम अपने दिल में समझते हो कि मैं भाईसाहव से महज एक दर्जा नीचे हूं, और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नहीं है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मै तुमसे पॉच साल बड़ा हूं और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत में आ जाओ—और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्सन्देह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे, और शायद एक साल बाद मुझ से आगे भी निकल जाओ—लेकिन मुझ मे और तुम में जो पाच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नही मिटा सकता। मै तुमसे पाँच साल वड़ा हू और हमेशा रहूंगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजुरवा है, तुम उसकी वरावरी नही कर सकते, चाहे तुम एम० ए० और डी० लिट् और डी० फिल० ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबे पढने से नहीं आती, दुनिया देखने से आती है। हमारी मॉ ने कोई दर्जा नही पास किया और दादा भी शायद पॉचवी-छठी जमाअत के आगे नही गये, लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनिया की विद्या पढ़ ले, अम्मा और दादा को हमे समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नही कि वे हमारे जन्मदाता है वल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का हमसे ज्यादा तजरवा है और रहेगा। अमेरिका मे किस तरह की राज-व्यवस्था है, और आठवें हेनरी ने कितने ब्याह किये और आकाश में कितने नक्षत्र है, यह बातें चाहे उन्हें न मालूम हों; लेकिन हजारों ऐसी वाते है, जिनका ज्ञान उन्हे हम से और तुमसे ज़्यादा है। दैव न करे, आज मै बीमार हो जाऊं, तो तुम्हारे हाथ-पॉव फूल जायँगे। दादा को तार देने के सिवाय तुम्हे और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह दादा हों, तो किसी को तार न दें, न घबराये, न वदहवास हों। पहले खुद मर्ज पहचानकर इलाज करेंगे, उसमें

सफल न हुए, तो किसी डाक्टर को बुलायेंगे। बीमारी तो खैर बड़ी चीज है, हम-तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने-भर का खर्च महीना-भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस बाईस दिन तक ख़र्च कर डालते है, और फिर पैसे-पैसे को मुहताज हो जाते है। नाश्ता बन्द हो जाता है, धोबी और नाई से मुह चुराने लगते है; लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे है उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुम्ब का पालन किया है जिसमे सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेड-मास्टर साहब ही को देखो, एम.ए. है कि नही, और यहाँ के एम. ए. नही, आक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते है, लेकिन उनके घर का इन्तजाम कौन करता है? उनकी बूढी मां। हेडमास्टर साहब की डिग्री यहां बेकार हो गई। पहले खुद घर का इन्तजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था, कर्जदार रहते थे। जब से उनकी माता जी ने प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई है। तो भाई जान, यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गये हो, और अब स्वतन्त्र हो। मेरे देखते तुम बेराह न चलने पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे तो मै (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूं। मै जानता हूं, तुम्हे मेरी बाते जहर लग रही है।"

मै उनकी इस युक्ति से नतमस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाईसाहब के प्रति मेरे मन मे श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैने सजल आंखों से कहा—"हरगिज नही। आप जो कुछ फरमा रहे है, वह बिल्कुल सच है, और आपको उसके कहने का अधिकार है।"

म अपने दिल में समझते हो कि मैं भाईसाहब से महज एक दर्जा नीचे हूं, और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नही है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मै तुमसे पाँच साल वड़ा हूं और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत में आ जाओ—और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्सन्देह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे, और शायद एक साल वाद मुझ से आगे भी निकल जाओ—लेकिन मुझ में और तुम में जो पांच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नही मिटा सकता। मै तुमसे पाँच साल बड़ा हूं और हमेशा रहूंगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजुरवा है, तुम उसकी वरावरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम० ए० और डी० लिट् और डी० फिल० ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढने से नही आती, दुनिया देखने से आती है। हमारी माँ ने कोई दर्जा नहीं पास किया और दादा भी शायद पाँचवीं-छठी जमाअत के आगे नहीं गये, लेकिन हम दोनों चाहें सारी दुनिया की विद्या पढ़ ले, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नही कि वे हमारे जन्मदाता है वल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का हमसे ज्यादा तजरवा है और रहेगा। अमेरिका में किस तरह की राज-व्यवस्था है, और आठवें हनरी ने कितने व्याह किये और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, यह वातें चाहे उन्हे न मालूम हों; लेकिन हजारों ऐसी वातें है, जिनका ज्ञान उन्हे हम से और तुमसे ज़्यादा है। दैव न करे, आज मै वीमार हो जाऊं, तो तुम्हारे हाथ-पॉव फूल जायँगे। दादा को तार देने के सिवाय तुम्हें और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह दादा हों, तो किसी को तार न दें, न घबरायें, न वदहवास हों। पहले खुद मर्ज पहचानकर इलाज करेंगे, उसमे

सफल न हुए, तो किसी डाक्टर को बुलायेंगे। बीमारी तो खैर बड़ी चीज है, हम-तुम तो इतना भी नही जानते कि महीने-भर का खर्च महीना-भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस बाईस दिन तक खर्च कर डालते है, और फिर पैसे-पैसे को मुहताज हो जाते है। नाश्ता बन्द हो जाता है, धोबी और नाई से मुह चुराने लगते हैं; लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे हैं उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुम्ब का पालन किया है जिसमे सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेड-मास्टर साहब ही को देखो, एम.ए. है कि नही, और यहाँ के एम. ए. नहीं, आक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते हैं, लेकिन उनके घर का इन्तजाम कौन करता है ? उनकी बूढी मां। हेडमास्टर साहब की डिग्री यहां बेकार हो गई। पहले खुद घर का इन्तजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था, कर्जदार रहते थे। जब से उनकी माता जी ने प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर मे लक्ष्मी आ गई है। तो भाई जान, यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गये हो, और अब स्वतन्त्र हो। मेरे देखते तुम बेराह न चलने पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे तो मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूं। मैं जानता हू, तुम्हे मेरी बातें जहर लग रही हैं।"

मै उनकी इस युक्ति से नतमस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाईसाहब के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आंखों से कहा—"हरगिज नही। आप जो कुछ फरमा रहे है, वह बिल्कुल सच है, और आपको उसके कहने का अधिकार है।"

भाईसाहब ने मुझे गले लगा लिया और बोले—"मैं कनकौवे उड़ाने को मना नही करता। मेरा जी भी ललचाता है, लेकिन करूं क्या, खुद बेराह चलू, तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूं ? यह कर्त्तव्य भी तो मेरे सिर है।"

सयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौवा हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़को का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था। भाईसाहब लम्बे थे ही, उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े। मै पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

रायकृष्णदास

: ६ :

सम्राट् का स्वत्व

"एक वह और एक मै ! किन्तु मेरा कुछ भी नही ! इस जीवन में कोई पद नही ! वह समस्त साम्राज्य पर निष्कंटक राज्य करे और मुझे एक-एक कौड़ी के लिए उसका मुह देखना पड़े। जिस कोख में उसने नौ महीने विताये है, मै भी उसी कोख से पैदा हुआ हूं। जिस स्तन ने शैशव मे उसका पालन किया, उसी स्तन से मेरा भी शरीर बढ़ा है। जिस स्नेह से उसका पालन हुआ है, उसी स्नेह का मै भी पूर्ण अधिकारी था। पिता की जिस गोद में वह बैठकर खेला है, मैने भी उसी गोद मे ऊधम मचाया है। हम दोनों एक ही माता-पिता के समान स्नेह और वात्सल्य के भागी रहे है ! हम लोगों की बाल्यावस्था बराबर ही के खेल-कूद और नटखटी में बीती है। हम लोगों ने एक ही साथ गुरु के यहां एक ही पाठ पढ़ा और याद किया। एक के दोष को दूसरे ने छिपाया। एक के लिए दूसरे ने मार खाई। सग मे जंगल-जंगल शिकार के पीछे मारे-मारे फिरे। भूख लगने पर एक कौर में से आधा मैने खाया आधा उसने। तब किसी बात का अन्तर न था—एक प्राण दो शरीर थे।"

"पर आज समय ही तो है। वह सिहासन पर बैठ कर आज्ञा चलाये, मै उसके सामने भेट लेकर नत होऊं। कुत्ते के टुकड़े की

तरह जो कुछ वह फेंक दे, सो मेरा। नहीं तो पिता-पितामह की, माता-प्रमाता की, पूर्वजो की इस विशाल सम्पत्ति पर मेरा वाल भर भी अधिकार नहीं। आह! दैव-दुर्विपाक! एक छोटे से छोटे कारवारी के इतना भी मेरा अधिकार नही। पूर्व-महाराज की मुझ औरस संतान का कोई ठिकाना नही। क्यों इसी संयोगमात्र से कि मै छोटा हूं और वह वड़ा। ओह! यदि आज मै वणिकपुत्र होता, तो भी पैतृक-सम्पत्ति का आधा भाग उसकी नाक पकड़कर रखवा लेता। किन्तु धिक्कार है मेरे क्षत्रिय-कुल में जन्मने पर कि मै दूर्वा की तरह प्रतिक्षण पद-दलित होकर भी जीवित रहूं। हरा-भरा रहूं। 'राजकुमार' कहा जाऊं—'छोटा महाराज' कहा जाऊं! यह सव नाम भर के लिए और घर मे अधिकार रत्ती भर भी नही। अव इस स्थिति को मै सह नहीं सकता। शिवनिर्माल्य की तरह किसी अर्थ का न रहूं। अपने ही घर में, अपने ही माता-पिता के आंगन मे अनाथ की तरह ठोकर खाता फिरूं? वकरे के पिंड की तरह फेका जाऊं। आह! यह स्थिति असह्य है! मेरा क्षत्रिय-रक्त तो इसे एक क्षण भर भी सहन नही कर सकता। चाहे जैसे हो, इससे छुटकारा पाना होगा। या तो मैं नही या यह स्थिति नहीं। देखूं किसकी जीत होती है।"

"एक क्षण का तो काम है। एक प्रहार से उसका अंत होता है। किंतु क्या कायरों की तरह धोखे में प्रहार! प्रताप के किये तो यह काम होने का नहीं, यह तो चोरों का काम है! दस्युओं का काम है! हत्यारों की वृत्ति है।"

कुमार प्रतापवर्द्धन का चेहरा तमतमाया हुआ था। ओठ फड़क रहे थे। नस-नस मे तेजी से खून दौड़ रहा था। मारे क्रोध के उसके पैर ठिकाने नही पड़ते थे। संध्या का शीतल समीर उसके

उष्ण शरीर से टकराकर भस्म-सा हुआ जाता था। कुमार को बोध होता था कि सारा प्रासाद भूकम्प से ग्रस्त है। अनेकानेक प्रेत-पिशाच उसे उखाड़े डालते हैं। क्षितिज में संध्या की लालिमा नहीं है, भयंकर आग लगी हुई है। प्रलयकाल मे देर नही।

जिस प्रकार ज्वालामुखी के लावा का प्रवाह आख मूंदकर दौड़ पड़ता है, उसे ध्वस्त करता चलता है, उसी प्रकार राजकुमार का मानसिक आवेश भी अंधा होकर दौड़ रहा था।

"क्यों प्रताप, आज अकेले ही यहां क्यों टहल रहे हो?"

अचानक पीयूष वर्षा हो उठी। राजकुमार की ओर उसकी भाभी—महारानी—चली आ रही थी। महारानी का प्रताप पर भाई जैसा प्रेम, मित्र-जैसा स्नेह, और पुत्र-जैसा वात्सल्य था। राजकुमार उसके सामने आते ही बालक जैसे हो जाते? पर इस समय वे कुछ न बोले। महारानी ने फिर प्रश्न किया, पर राजकुमार अवाक् थे। कुछ क्रोध के कारण नही, महारानी के शब्द कान मे पड़ते ही उनके हृदय को भीषण धक्का लगा था। क्रोध से भारी प्रतिघात हुआ था। और राजकुमार के लिए उस प्रतिघात का सहना असम्भव था। यदि प्रतप्त अंगार औचक शीतल पानी मे पड़ जाय तो शतधा फट जाता है। उसी तरह उनके हृदय की दशा हो रही थी। और जब महिषी ने तीसरी बार प्रश्न किया, तब प्रताप बच्चों की तरह रो पड़ा।

राजमहिषी इस गोरखधंधे को जरा भी न समझ सकी। उन्होंने फिर कोमलता से पूछा—"बोलो प्रताप, आज क्या बात है—तुम पर ऐसा कौन कष्ट पड़ा कि तुम रो रहे हो? मैंने तो कभी तुम्हारी ऐसी दशा न देखी थी। आज दोनों भाइयों मे झगड़ा तो नही हुआ?"

प्रताप के आंसुओं की झड़ी ज्यों की त्यों जारी थी। कष्ट से हिचकियां लेते-लेते उसने उत्तर दिया, पर वे समझ न सकीं।

कुमार का हाथ अपने हाथ से थामकर दूसरा हाथ पीठ पर फेरते हुए वे बोली—"शात हो, प्रताप! मेरा हृदय फटा जाता है। बोलो, बताओ, क्या बात है? चलो तुम्हारा उनका मेल करा दू।"

राजमहिषी ने समझा कि इसके सिवा अन्य कोई कारण नही। प्रताप ने बड़ी कठिनता से अपने आपको संभाल कर कहा—"भला मै किस वल पर भाई का सामना करूंगा?"

"प्रताप, ऐसी कटु वात न कहो। तुम्हे स्नेह का वल है, स्वत्व का बल है। इससे बढ़कर कौन वल हो सकता है। वोलो क्या कारण है? कहो, मेरा हृदय क्रन्दन कर रहा है।"

महारानी का कठ रुध गया था, उनकी आंखें भर आई थी।

"कुछ नहीं भाभी! मन ही तो है। यों ही कुछ वीते दिनों की याद आ गई। स्नेह मयी माता नही, पर तुम तो हो। अव तक मैं निरा बच्चा ही बना हुआ था। बस, यह वचपन की एक तरंग थी।"

"नहीं प्रताप, तुम्हें मेरी शपथ है, मुझे अपना दु.ख सुना दो। चाहे तुम्हारा हृदय ऐसा करने से हलका न हो, पर मेरा हृदय अवश्य हलका हो जायगा।"

प्रताप ने उदासीन मुस्कराहट, छूंछी हंसी हंसते हुए कहा—"कुछ नही भाभी, कुछ हो तब तो! सन्ध्या की उदासी, निराली अटारी, मन मे कुछ सनक आ गई थी। अब कुछ नही। चलिए, आज हम लोग घूमने न चलेगे?"

"प्रताप, तुम टाल रहे हो। इससे मुझे दु.ख होता है। आज तक तुमने मुझसे कुछ छिपाया नही। जो दु:ख-सुख हुआ, सब

कहा। आज यह नयी बात क्यों ?"

प्रताप फिर बच्चों की तरह सिसकने लगा। उसने महिषी के चरणों की धूलि सिर पर लगा ली।

"भाभी, तुम्हारा बच्चा ही ठहरा, कहूं नहीं तो काम कैसे चले। कहूंगा, सब कहूंगा ! पर क्षमा करो। इस समय चित्त ठिकाने नही है। फिर पूछ लेना।"

"अच्छा घूमने तो चलो।"

"नहीं, इस समय मुझे अकेले छोड़ दो भाभी।"

"क्यों तुम्हीं ने अभी प्रस्ताव किया था न ?"

"भाभी, वह कपट था।"

"प्रताप, तुम—और मुझसे कपट करो ! कुमार, मैं इसे देवताओं की अकृपा के सिवा और क्या कहूँ। किन्तु देखो, तुम्हें अपना हृदय मेरे सामने खोलना पड़ेगा।"

रानी भी रोती-रोती चली गईं। राजकुमार रिक्त दृष्टि से उसका जाना देखता रहा। फिर वह खड़ा न रह सका, वही अटारी के मुडेर पर बैठ गया।

महारानी ने देखा कि सम्राट् उद्यान में खड़े है। रथ तैयार है। उन्होंने भी महारानी को अकेली आते देखा—उनका उतरा हुआ मुँह देखा, लट-पटाती गति देखी। हृदय मे एक धक्-सी हो गई। पूछ बैठे—

"क्यों प्रताप कहा है ? और तुम्हारी यह क्या दशा है ?"

"कुछ नही"—महिषी ने भर्राये स्वर से कहा—"चलिए घूमने।"

"आज वह न चलेगा ? बात क्या है, कुछ कहो तो ?"—महाराज ने रूखे स्वर से पूछा।

भृत्यवर्ग स्तम्भित था, चकित था। हाथ बांधे हुए खड़ा तो था, पर हृदय में कांप रहा था—क्या होने को है?

राजमहिषी ने महाराज के निकट जाकर धीरे-धीरे कुछ बातें की।

महाराज ने कहा—"यह सब कुछ नही, चलो प्रताप से एक बार मैं तो बातें कर लू।"

× × ×

प्रताप और महाराज आमने-सामने थे। प्रताप की आंखें भूमि देख रही थी। किन्तु भौहें तन उठी थी। महाराज हिमालय की तरह शांत थे। उन्होंने जिज्ञासा की—

"भाई प्रताप, आज कैसे हो रहे हो?"

किन्तु कुमार ने कोई उत्तर न दिया।

सम्राट् ने उनका हाथ थाम लिया और स्नेह से उसे सहलाने लगे। प्रताप के शरीर मे एक झल्लाहट-सी होने लगी—विरक्ति और घृणा से। क्रोध ने कहा कि एक झटका दो और हाथ छुड़ा लो। साहस भी था। पर भ्रातृ भाव ने यह नौबत न आने दिया। तो भी प्रताप ने कोई उत्तर न दिया।

"प्रताप—हमारे स्नेह की शपथ जो मौन रहो।"

"भैया—"यहा प्रताप का गला रुक गया। बड़ी चेष्टा करते हुए उसने कहा—"अब स्नेह नही रह गया।"

"क्यों, क्या हुआ?" महाराज चकित हो गये।

"भैया—"क्षत्रिय रक्त ने जोर किया और नदी का बांध टूट गया—प्रताप ने वयस्क होने के बाद पहली बार भाई से आखें मिलाकर कहना शुरू किया—"जिस जीवन की कोई हस्ती न हो, वह व्यर्थ है। हम दोनों सगे भाई है, तो भी—मै कोई नही और

आप चक्रवर्ती। यह कैसे निभ सकता है?"

"तो लो, तुम्हीं शासन चलाओ प्रताप।"

महाराज ने अपना खड्ग प्रताप की ओर बढ़ा दिया।

प्रताप ने इस स्थिति की स्वप्न में भी कल्पना न की थी। वह किंकर्तव्यविमूढ हो गया। महाराज साग्रह उसके हाथ मे खड्ग देने लगे और वह पैरों पड़ने के सिवा कुछ न कर सका। महाराज उसे छाती से लगाकर गंभीर स्वर मे कहने लगे—

"सुनो प्रताप, सम्राट् राष्ट्र की एक व्यक्ति में केंद्रित सत्ता है। भाई हो अथवा बेटा, कोई उसे बांट नही सकता। यह वैभव देखकर न चकपकाओ। राष्ट्र ने अपनी महत्ता दिखाने के लिए और उसे स्वयं प्रभावान्वित होने के लिए इस वैभव को—इन अधिकारों को, राजा से सम्बद्ध किया है। ये अधिकार सम्पत्ति के, विलासिता के, स्वेच्छाचारिता के द्योतक नही। यहां तराजू की कमाई नहीं है जो तौलकर जुटती और तौलकर ही बटती भी है। यह है शक्ति की कमाई, और यह शक्ति क्या है? कच्चे सूत हाथी को बांध लेते है, किंतु कब? जब एक मे मिलकर वे रस्सी बन जाते है तब। हां, कौटुम्बिक जीवन में यदि हम तुम दो हों तो भाई! मै दण्डनीय हूं!"

राजमहिषी मुस्कराती हुई महाराज से कहने लगी—"नाथ इसे लक्ष्मी—नही नहीं, गृहलक्ष्मी चाहिए।"

कुमार लज्जित हो गया। फिर वह हंसता हुआ सम्राट् सम्राज्ञी दोनों को संबोधित कर कहने लगा—

"क्या समय बिता के ही घूमने चलियेगा?"

: ७ :

प्रेम-तरु

डेढ़ सौ साल बीत चुके है, परन्तु देवी सुलक्खी का नाम आज भी उसी तरह जीता-जागता है। गुरदासपुर के जिले में कड़याला नाम का एक छोटा-सा गांव है, जहा ज्यादा आबादी हिन्दू जाटों की है; वहां आप किसी से पूछिये, वह आपको देवी सुलक्खी की समाधि का पता बता देगा। यहा प्रति वर्ष मेला लगता है, स्त्रिया रंग-बिरंगे वस्त्र पहन कर आती है, और इस पर घी के दीप जलाती हैं। जब बेर पकते है, तो सब से पहले बेर देवी सुलक्खी की समाधि पर चढ़ाए जाते है। इसके बाद लोग खाते है। क्या मजाल कि इस समाधि पर बेर चढाए विना कोई बेर को मुँह भी लगा जाये। दीवाली की रात को लोग पहले यहा दिये जलाते है, इसके बाद अपने घर मे जलाते है। किसी मे इतना साहस नही कि देवी सुलक्खी की समाधि पर रोशनी किए बिना अपने घर में रोशनी कर ले। ब्याह के बाद दुलहने पहले यहां आकर अपनी श्रद्धा प्रकट करती है, इसके बाद अपनी सुसराल मे पाव धरती है। किसी मे हिम्मत नही कि गांव की इस रीति को तोड सके। देवी की समाधि, गांव के मध्य मे है। उसके ऊपर श्रद्धालुओं ने सगमरमर की एक सुदृढ़ और सुन्दर छत खड़ी कर दी है। इस छत के ऊपर एक झडा

लहराता है, जो आस-पास के गांवों से भी नजर आता है। देवी सुलक्खी ने कोई संग्राम नही जीता, न कोई राज्य स्थापित किया, न कोई उसमे विशेष आत्म-शक्ति थी जो लोगों के दिलों को पकड़ लेती, न उसने लोगों के लिए कोई बलिदान किया; वह एक गरीब, सीधी-सादी, अनपढ, परन्तु सतवन्ती ब्राह्मण-कन्या थी, जो एक मूर्ख और हठी जाट के क्रोध का शिकार हो गई। उसने अपने पति से जो प्रण किया था, उस पर वह ध्रुव के समान अटल रही। इसमें संदेह नही, वह साधारण ब्राह्मणों से भी गरीब थी, परन्तु पतिव्रत धर्म की दौलत से मालामाल थी। वह मर्यादा की पुजारिन थी। उसने जो कहा था, वह करके दिखा दिया। उसके पति ने एक वृक्ष को अपनी सन्तान कहा था, सुलक्खी ने मरते दम तक पति के इस वचन को निबाहा। यही बात है जिसने उसे इतने दिनों के बाद आज भी गांव में जीती-जागती शक्ति बना रक्खा है। हिंदू देवी-देवताओ का पूजन करते है, मुसलमान पीर-फकीरों को मानते है, परन्तु देवी सुलक्खी का शासन दोनों के हृदयों पर है। क्या मजाल, जो कोई उसकी अवहेलना कर जाये।

२

देवी सुलक्खी इसी गांव के एक निर्धन ब्राह्मण जयचन्द की स्त्री थी। जयचन्द के घर मे स्त्री के अतिरिक्त कोई भी न था—न मां, न बाप, न वहन, न भाई। बस, पति-पत्नी ही थे, कोई बाल-बच्चा भी न था। कुछ दिन इलाज करते रहे, परन्तु जब सारा परिश्रम निष्फल हुआ तो भाग्य-विधान पर सन्तुष्ट होकर बैठ रहे। उस युग के ब्राह्मण लोग प्रायः नौकरी इत्यादि न करते थे, न धन-दौलत में उस समय ऐसी मोहनी थी, न लोग धन को दुर्लभ समझ कर उसकी प्राप्ति के लिए अधीर रहते थे। थोड़े ही मे

गुजारा हो जाता था। एक कमाता था, दस खा लेते थे। आज वह जमाना कहां ? दस कमाने वाले हों, एक वेकार को नहीं खिला सकते। उस समय के ब्राह्मण सारा-सारा दिन पूजा-पाठ में लगे रहते थे। खाने-पीने को जाट जजमानों के यहां से आ जाता था। दोनों को किसी प्रकार की चिन्ता न थी। हां, कभी-कभी निःसन्तान होने पर कुढ़ा करते। यदि एक भी वच्चा हो जाता, तो दोनों का मन वहल जाता। उनका जीवन मधुर, प्रकाशमय तथा विनोदपूर्ण हो जाता। उनको कोई शुगल मिल जाता। अव ऐसा मालूम होता था जैसे उनका घर सूना-सूना है, जैसे उनके लिये दुनिया विलकुल फीकी-फीकी है, जैसे उनका जीवन लम्वी, अन्धेरी, समाप्त न होने वाली रात है जिसमे कोई तारा नही, कोई चांद नही, केवल निराशा के काले बादल घिरे हुए है। उन वादलों में कभी-कभी थोडी देर के लिए आशा की विजली भी चमक जाती है, परन्तु उससे उनके दिलों का अन्धकार वढ़ता ही था, घटता न था। इसी तरह कई वर्ष गुजर गये।

एक दिन जयचन्द ने अपने आगन के कोने में नवजात वच्चे के समान वेरी का एक पौदा देखा, जो स्वयं ही उग आया था। पौदा वहुत छोटा था और साधारण पौदों से जरा भी भिन्न न था, किन्तु जयचन्द को ऐसा प्रतीत हुआ, मानो यह पौदा न था, प्रकृति का अद्भुत सौंदर्य था। वे उसके छोटे-छोटे रग-रेशे और चिकनी-चिकनी जरा-सी कोंपले देखकर वेसुध से हो गए। शांति के पुतले पर अशांति छा गई। दौड़े-दौड़े सुलक्खी के पास गए, और बोले—"आओ, कुछ दिखाऊ। भगवान् ने हमारे घर वूटा लगाया है, वड़ा सुन्दर है।"

सुलक्खी ने जाकर देखा, तो एक नन्हा-सा पौदा था। बोली—

"क्या है यह ? ऐसे प्रसन्न क्यों हो ?"

जयचन्द—"बेरी का पौदा है। अभी छोटा है, चन्द दिनों में बड़ा हो जायगा। इसमें हरे-हरे पत्ते आयेंगे। मीठे-मीठे फल लगेंगे। लम्बी-लम्बी डालिया फैला कर खड़ा होगा।"

सुलक्खी ने पुलकित होकर कहा—"सारे आंगन मे छाया हो जायगी।"

जयचन्द—"हर साल बेर लगेगे। खूब मीठे होंगे।"

सुलक्खी—"मै इसे सदा जल से सीचा करूंगी! थोड़े ही दिनों मे बड़ा हो जायगा। कब तक फलेगा ?"

जयचन्द—(पौदे को प्रेम-भरी दृष्टि से देख कर)—"चार वर्ष बाद। तुमने देखा, कैसा प्यारा लगता है! बड़ा होकर और भी प्यारा लगेगा! कैसा चिकना है! कैसा सुन्दर है! देखकर तबीयत हरी हो जाती है!"

सुलक्खी—(सरलता से) गरमी के दिन है, कुम्हला जायगा। मुझे तो अब भी घबराया हुआ मालूम होता है। जरा कोंपले तो देखो, जैसे प्यास के मारे व्याकुल हो रही हों, कहिये ताजा जल भर लाऊं ? गरमी से बड़ो-बड़ों का बुरा हाल है। यह तो बिल्कुल नन्ही-सी जान है! (चुटकी बजाकर) अभी भर लाऊंगी, दो मिनट मे।

जयचन्द—इस समय तुम कहां जाओगी, मै जाता हूं।

मगर सुलक्खी ने कलसा उठाया और चली गई। थोड़ी देर बाद दोनों पति-पत्नी उस छोटे-से पौदे को पानी से सीच रहे थे। ऐसे प्यार से जैसे उनका जीता-जागता बच्चा हो, ऐसी भक्ति से, जैसे उनका देवता हो, ऐसी श्रद्धा से जैसे कोई अमोल वस्तु हो। पौदा सचमुच धूप से कुम्हलाया हुआ था। ठण्डा पानी पीकर उसने

आंखे खोल दी। सुलक्खी बोली—"देख लो! अब इसमें ताजगी आ गई है या नही? क्यों?"

जयचन्द—मुझे ऐसा मालूम होता है, जैसे यह मुस्करा रहा है।

सुलक्खी—और मुझे ऐसा मालूम होता है, जैसे यह बातें कर रहा है। कहता है—मै तुम्हारा बेटा हूं।

जयचन्द—भाई, यह बात तो तुमने मेरे मुंह से छीन ली। मैं भी यही कहने जा रहा था। हां, बेटा तो है ही। इसे खूब प्यार करोगी न?

सुलक्खी—तुम्हारे कहने की क्या आवश्यकता है? अपने बेटे से कौन प्यार नही करता?

जयचन्द—मै डरता हू, कही मुझे न भूल जाओ। बड़ी आयु में बालक पाकर स्त्रियां पति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगती हैं, मगर मुझसे तुम्हारी लापरवाही बर्दाश्त न होगी। यह अभी से कहे देता हू।

सुलक्खी—चलो हटो! तुम्हे तो अभी से डाह होने लगी।

जयचन्द हसते-हसते घर के भीतर चले गये, परन्तु सुलक्खी कई घटे वही धूप मे खड़ी बेरी की ओर देखती रही और खुश होती रही। आज भगवान ने उसके घर बूटा लगा दिया था। आज उसको ऐसा अनुभव हुआ, जैसे वह बांझ नही रही—पुत्रवती हो गई है—अबोध वालक छाछ को दूध समझ कर खुश हो रहा था।

३

अब जयचन्द और सुलक्खी दोनों को एक काम मिल गया। कभी बेरी को पानी देते कि कुम्हला न जाये, कभी खुरपी लेकर

उसके आसपास की जमीन खोदते कि उसे अपनी खुराक प्राप्त करने में दिक्कत न हो, कभी उसके गिरदा-गिर्द बाड़ लगाते कि कोई जीव-जन्तु हानि न पहुंचाये, कभी दो चारपाइया खड़ी कर के उस पर चादर फैला देते कि गरमी से सूख न जाये। लोग यह देखते थे, और उनकी इस मूर्खता पर हंसते थे। कोई-कोई कह भी देता था कि इनकी अक्ल मारी गई है, साधारण वृक्ष को पुत्र समझ बैठे है।

मगर प्रेम के इन सरल-हृदय भक्तों को इसकी जरा भी परवा न थी। उन्हे उस बेरी की कोंपलें बढती देखकर वैसी ही प्रसन्नता होती थी जैसी माता-पिता को बच्चे के हाथ-पांव बढते देखकर होती है। जयचन्द बाहर से आते तो सबसे पहले बेरी का कुशल-क्षेम पूछते। सुलक्खी रात को कई-कई बार चौक कर उठती, और बेरी को देखने जाती—शायद उसे भय था कि कोई इस अन-मोल वस्तु को उखाड़ कर न ले जाय। ऐसे प्रेम, ऐसी सावधानी से किसी गरीब विधवा ने अपने एकमात्र पुत्र का भी लालन-पालन शायद ही किया हो।

धीरे-धीरे यह प्रेम-तरु बढ़ने लगा। अब वह जमीन से बहुत ऊपर उठ गया था। उसका तना भी मोटा हो गया था। डालें भी बड़ी-बड़ी हो गई थी। रात के समय ऐसा सन्देह होता था, जैसे वह बाहे फैलाकर किसी से गले मिलने को अधीर हो रहा है। सुलक्खी उसे अपनी बेटी और जयचन्द उसे अपना बेटा कहते थे। उसे देखकर उनकी आखें चमकने लगती थी। उनका हृदय-कमल खिल उठता था। यह वृक्ष साधारण वृक्ष न था, उनके रात-दिन के परिश्रम का परिणाम था। इसके लिए उन्होंने अपनी रातो की नीद कुर्बान की थी। इस पर उन्होंने अपने शरीर और आत्मा की

सम्पूर्ण शक्तियां खर्च कर दी थीं।

इसी तरह प्रेम-मुहब्बत और लाड़-प्यार के चार वर्ष गुजर गये, और बेरी के फलने के दिन नजदीक आ गये। जयचन्द और सुलक्खी दोनों के पाव जमीन पर न पड़ते थे। उनकी खुशी का ठिकाना न था। जब बौर आया तो दोनों सारा-सारा दिन आंगन में बैठे उसकी रक्षा किया करते थे। क्या मजाल जो कोई पास भी फटक जाय। जयचन्द अब पहले की तरह पूजा-पाठ के पाबन्द न रहे थे। सुलक्खी को अब चरखे का खयाल न था। साधारण वृक्ष के प्रेम ने उन्हें इस प्रकार बांध लिया था कि जरा हिलते भी न थे। हर समय इसी की बातें करते थे। उस वक्त वह इस संसार से बाहर चले जाते थे। सुलक्खी कहती—तुम्हारे खयाल मे यह पीले रंग का बौर होगा, मगर मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि मेरी बेटी ने सोने के भूषण पहने है। किस शान से खड़ी है, देख कर मन नाचने लगता है।

जयचन्द कहते—"यह मेरे बेटे की पहली कमाई है। इसे बौर कौन कहता है? यह तो मोहरें है, बल्कि मुझे तो इसके सामने मोहरें भी तुच्छ मालूम होती हैं। उन्हें मनुष्य बनाता है। इसे स्वयं भगवान अपने हाथों से संवारता है। इसके सामने मोहरे और अशरफियां किस गिनती में है? थोड़े दिनों मे यह बेर बन जायेगे उनमें जो सुन्दरता, जो यौवन, जो मिठास होगी, वह सोने के उन सिक्कों मे कहां?"

सुलक्खी कहती—"जिस दिन पहले बेर उतरेंगे, उस दिन मिठाई बाटूंगी।"

जयचन्द कहते—"मै रतजगा करूंगा, गांव के सारे लोगों को बुलाऊंगा। सारी रात रौनक रहेगी।"

सुलक्खी कहती—"खूब खर्च करना पड़ेगा।"

जयचन्द कहते—"लोग बेटों की ब्याह-शादी में लुटाते है। मेरे लिये यही बेटे का ब्याह है। सब कुछ खर्च हो जाये, तब भी परवा नही, परन्तु एकबार दिल के अरमान निकल जायं। कोई अभिलाषा शेष न रह जाय।"

यह सुनकर सुलक्खी किसी दूसरी दुनिया में पहुंच जाती थी। उनके हृदयरूपी समुद्र मे खुशी की तरगें उठने लगती थी, जैसे चादनी रात में समुद्र मे ज्वार आ जाये।

४

आखिर वह दिन भी आ गया, जिसकी पति-पत्नी दोनों प्रतीक्षा कर रहे थे। पहले दिन बेरी के दो सौ बेर उतरे। ये बेर इतने मोटे, ऐसे गोल-गोल, ऐसे लाल, इतने सुन्दर और चिकने थे कि देखकर जी खुश हो जाता था। दोपहर का समय था। सुलक्खी ने पुराने जमाने की हिन्दू स्त्रियों की तरह नये कपड़े पहने, लाल रंग की फुलकारी ओढी, नाक मे नथ पहनी, और जाकर जयचन्द के सामने खड़ी हो गई, जैसे उस दिन उसके यहा कोई ब्याह-शादी थी। उसको इन वस्त्रों मे देखकर जयचन्द मुग्ध-सा हो गया। थोड़ी देर तक दोनों के मुह से कोई बात न निकली। आंखें मूदकर चुपचाप इस आलौकिक आनन्द से आनन्दित होते रहे। तब जयचन्द ने बेर टोकरी में रखे और सुलक्खी से कहा—"जा! जाकर जजमानों के यहां गिनकर बीस-बीस दे आ।"

सुलक्खी ने साहस पूर्ण नेत्रों से पति को देखा और प्यार भरी आवाज मे कहा—"ईश्वर करे खूब मीठे हों। लोग बे-अख्तियार वाह-वाह अहे। आकर बधाइयां दे। कहे, ऐसे बेर सारे गांव मे नही है।"

जयचन्द ने दस बेर अपने लिए रख लिये थे। उनकी ओर ताकते हुए बोले—"तू ख्वामख्वाह मरी जाती है। दूसरों के लिए मीठे न होंगे, न सही, पर हमारे लिए इनसे मीठी वस्तु संसार मे और कोई नही है। यह मैं चखे विना कह सकता हूं—जा। देर हुई जाती है, तू बांटकर आ जाय, तो एक साथ खायं।"

सुलक्खी ने पति की ओर प्यार से देखकर उत्तर दिया—"मैं एक आध घर मे दे लू, तो तुम खा लेना। मेरी राह देखने की क्या आवश्यकता है?"

जयचन्द—वाह! आवश्यकता क्यों नही? एक साथ खायेंगे, अकेले मे क्या मजा आयेगा। जरा जल्दी लौट आना, नही लड़ाई होगी।

सुलक्खी ने छोटा-सा घूघट निकाला और वेरों की टोकरी उठाकर वाटने चली, जैसे कोई व्याह-शादी की मिठाई वांटने जा रही हो। थोड़ी देर मे एक जजमान दौड़ता हुआ आया, और वोला—"पंडित जी! वधाई है। वेर खूव मीठे निकले।"

जयचन्द का दिल धड़कने लगा। मुंह गुलाव हो गया। वोले—"अच्छा, आपने खाये है?"

जजमान—"खाये क्या है! वेर चखा है, मगर वाह भई, वाह! गुड़ से भी मीठा है, आम से भी मीठा है। कोई और वेर है, या नही?"

जयचन्द की वाछे खिली जाती थी। उन्होंने दो बेर उठाकर जजमान के हाथ में दे दिये। जजमान खाता जाता था, और तारीफ करता जाता था। कहता था—"पण्डित जी ये वेर क्या है, खांड के खिलौने है। मेरी इतनी आयु हो गई, मगर ऐसे वेर मैंने आज तक नहीं खाये। परमात्मा जाने, इनमें कैसा स्वाद है,

मालूम होता है, जैसे कोई खुशबू भरी है, जैसे किसी ने इत्र भर दिया है।"

जयचन्द—परमात्मा ने हमारी मेहनत सफल कर दी है।

जजमान—सारे इलाके मे ऐसे बेर मिल जायं, तो मूछे मुड़वा दू। दूर-नजदीक से लोग आया करेगे। मालूम होता है, आपने अभी नही चखे।"

जयचन्द—जजमानों को भेट कर लूँ, फिर खाऊँगा।

जजमान—हैरान रह जाओगे। ऐसे बेर काबुल-कन्धार में भी न होगे। हमारे घर मे दस-बीस बेरों से क्या बनता है? देखते-देखते खतम हो गये। और बेर कब तक उतरेगे? हम बीस और लेंगे।

जयचन्द—आपका अपना वृक्ष है। दो चार दिन को और उतरेंगे, तो भिजवा दूगा। मुझे दूसरो को खिला कर जो प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह खाकर नही होती। लीजिये, दो और ले जाइये। छै बाकी है। हम दोनों तीन-तीन खायेगे। हमे ये बहुत है।

थोड़ी देर बाद एक और जजमान आया। उसने भी इतनी तारीफ की कि जयचन्द की आंखे चमकने लगी। बोले—"यह प्रेम का वृक्ष है, इसमे प्रेम के बेर लगे हैं। इससे मीठे ससार-भर मे न होंगे। भाई, इतनी मेहनत कौन करता है? आप दोनो ने एक मिसाल कायम कर दी। दो बेर खाये हैं, दो और मिल जाय तो मजा आ जाये। फालतू है, या नही?

जयचन्द ने मुस्करा कर कहा—"छै बचे है। दो आप ले जाइये। दो हम खा लेगे।"

जजमान—"यह तो अन्याय होगा। रहने दीजिये। फिर सही। और बेर कब तक उतरेगे।"

जयचन्द—"आप ले जाइये। हमें स्वाद देखना है। पेट थोड़े भरना है! (वेर हाथ पर रखते हुए) रात रतजगा है। आइयेगा ना? कोई बेटे का ब्याह करता है, कोई पोती-पोते का मुडन करता है। मेरी आयु मे यही एक दिन आया है। यही अंतिम होगा और क्या!"

जजमान—"जरूर आऊंगा, पण्डित जी! मगर बेर खूब मीठे है, अभी तक मुह से सुगन्ध आ रही है।"

यह कह कर जजमान चला गया। इतने मे दो और आ गये। पण्डित जी के चार वेर वाकी थे। वे उनकी भेंट हो गये। अब उनके पास एक भी वेर न था। पण्डित जी दिल मे डरे, सुलक्खी से क्या कहूंगा? कहीं खफा न हो जाय, तैश में न आ जाय। परन्तु सुलक्खी इस प्रकार की स्त्री न थी। सारा माजरा सुन कर वोली—"आपने वहुत अच्छा किया। हमारा क्या है? फिर खा लेगे। अपनी बेरी है, जव चाहा, दो बेर तोड़ लिये। कही मांगने थोडे जाना है। और क्या?"

जयचन्द—"गांव में धूम मच गई है। कहते है—ऐसे वेर दूर-दूर तक नही है।"

सुलक्खी की आंखों में आंसू आ गये। नथ को संभालते हुए वोली—"सभी कहते हैं—और दो। बेर क्या है, खोए के पेड़े है।"

जयचन्द—"कहते है इन में सुगन्ध भी है।"

सुलक्खी—जो खाता है, चटखारे लेता है—ऐसा मजा न आम में है, न संगतरे मे।

जयचन्द—"यह सव तुम्हारे परिश्रम का फल है। रोज पानी दिया करती थी। तुम्हारे हाथों का पानी अमृत हो गया।"

सुलक्खी—"और जो तुम कपड़ों से छाया करते फिरते थे, उसका कोई असर ही नही ? यह सब उसका नतीजा है।"

जयचन्द—"तुम देर मे लौटी, नही तो एक-एक खा लेते। अब दो चार दिन के बाद पकेंगे।"

: ५ :

परन्तु जयचन्द के भाग्य में बेर का पकाना लिखा था, बेर खाना नहीं लिखा था। रतजगे के बाद उनको सहसा बुखार हो गया। गांव में जैसा इलाज हो सकता था, हुआ। हकीम ने समझा थकावट का बुखार है, साधारण औषधियो से उतर जायगा, परंतु यह थकावट का बुखार न था। वह मृत्यु का बुखार था, जिसकी दवा दुनियां के बड़े-से-बड़े हकीम के पास भी नही। चौथे दिन प्रातः ही जयचन्द सुलक्खी से घंटा भर धीरे-धीरे बाते करते रहे रोते और रुलाते रहे ! दुनियादारी की बाते समझाते रहे। ये बातें उनके जीवन का सार थी। सुलक्खी ये बातें सुनती थी, और रोती जाती थी। इस समय उसका दिल बस मे न था। वह चाहती थी, जिस तरह हो, पति को बचा ले। यदि उसके बस में होता, तो वह अपनी जान देकर भी उन्हे बचा लेती। इसमें उसे जरा भी संकोच न होता। परन्तु जो भाग्य मे बदा हो, उसे कौन रोक सकता है। थोड़ी देर बाद इधर संसार का सूर्य उदय हो रहा था, उधर जयचन्द के जीवन और सुलक्खी की दुनियां का सूर्य हमेशा के लिए अस्त हो गया।

अब सुलक्खी संसार में बिलकुल अकेली थी। अब उसका सिवा एक छोटे भाई के और कोई भी न था। थोड़े दिन रोती रही। इसके बाद चुप हो गई, इसलिए नहीं कि मृत्यु का शोक भूल गई, बल्कि इसलिए कि उसकी आंखों में आंसू न रहे थे। रो-रो कर

आंसू भी समाप्त हो जाते हैं, मगर उसके दिल के घाव हमेशा हरे थे। उसे किसी पहलू कल न पड़ती थी। पति की मृत्यु के बाद किसी ने उसे हंसते न देखा। न अच्छा खाती थी, न अच्छा पहनती थी। उसका ज्यादा समय दुखी लोगों की सेवा में गुजरता था। गाँव में कोई बीमार होता, सुलक्खी पहुंच जाती। फिर उसे सोना हराम था। सिरहाने से न उठती थी। हर समय सेवा में लगी रहती थी जैसे मा बच्चे की तीमारदारी कर रही हो। जब वह स्वस्थ हो जाता, तब घर लौटती। उसकी इन सेवाओं ने गांव वालों के मन मोह लिये। वे कहते थे—यह स्त्री नहीं, देवी है। अब उन्हें मालूम होता था कि यदि यह न हो तो गाँव वालो पर विपत्ति टूट पड़े। उसे दुनिया की किसी वस्तु से प्रेम न था—किसी वस्तु की परवा न थी जैसे उसने संन्यास ले लिया हो, जैसे उसने दुनिया की हर एक वस्तु का परित्याग कर दिया हो।

परन्तु एक वस्तु से उसे अब भी प्यार था। वह उसकी बेरी थी। वह अब भी उसका उसी तरह ख्याल रखती थी, उसको उसी तरह पानी देती थी, उसी तरह देख-भाल करती थी, गरमी में उसके पत्तो को कुम्हलाया हुआ देख कर अब भी उसी तरह अधीर हो जाती थी, रात को चौंक-चौंक कर अब भी उसे देखती थी। बाहर जाती तो भाई लछमन से कह जाती, बेरी का खयाल रखना। जब बेर लगते तो दो-तीन महीने उसके पास से न उठती, कहीं ऐसा न हो, जानवर आकर कुतर जाये। जब बेर उतरते, तो सारे गाव में बाटती। जिस तरह पहले बांटे थे, मगर आप बेरें को मुह में न रखती थी। न पहले साल खाये थे न अब खाती थी। उसका भाई लछमन खूब पेट भर कर खाता था। वह कहता था, ये बेर इस दुनियाँ के नहीं, स्वर्ग-पुरी के है! कभी-

कभी कहता, ऐसे बेर स्वर्ग मे भी न होंगे। बहन से कहता—"तू भी चख कर देख।" वह कहती—"वह खाते तो मै भी खाती। उन्होंने नही खाये, मै भी नही खाऊंगी।"

लछमन कहता—"तू अभागी है।"

सुलक्खी उत्तर देती—"अभागी न होती तो वह क्यों मरते? अब तो सारी आयु इसी प्रकार गुजर जाएगी।"

गुरदासपुर के कई दुकानदारों ने बेरी मोल लेनी चाही, पर सुलक्खी ने साफ इन्कार कर दिया। कहा—"मरती मर जाऊंगी, मगर बेरी न दूगी।"

एक दुकानदार ने कहा—"दो सौ रुपये ले ले, बेरी दे दे।"

सुलक्खी ने उत्तर दिया—"तू दो हजार दे, तब भी न बेचूं। दो लाख दे तब भी न बेचू।"

दुकानदार—"तू अजब स्त्री है। न खाती है, न बेचती है।"

सुलक्खी—"बाटती तो हू। मेरे लिए यही खुशी की बात है। मै नही खाती तो क्या हुआ, सारा गाव तो खाता है।"

दुकानदार—"परन्तु इससे तुझे क्या मिल जाता है? जिसको बेर खाने की इच्छा होगी, पैसे देकर खरीद लेगा।"

सुलक्खी ने दुकानदार की ओर करुणापूर्ण दृष्टि से देखा, और कहा—"मै ब्राह्मणी हूं, कुजड़िन नही, जो अपनी बेरी के बेर बेचूं। न भाई, यह न होगा। तू अपने रुपये ले जा मुझे यह सौदा मजूर नही।"

एक दूसरे दुकानदार ने कहा—"तू बेरी बेच दे, तो मैं ५००) दू। बोल, है इरादा?"

सुलक्खी—"यह बेरी नही है, हमारी औलाद है। अपनी औलाद कौन बेचता है?"

दुकानदार—"यह तेरा वहम है। आदमी की सन्तान आदमी होती है, वृक्ष नही होता।"

सुलक्खी—"यह अपना-अपना विचार है। कई आदमी ऐसे भी है जो ठाकुर को पत्थर कहते है।"

दुकानदार—"मुझे तो वृक्ष ही मालूम होता है।"

सुलक्खी—"तेरी आँखों मे वह ज्योति कहाँ जो इसकी असली सूरत देख सके ? वृक्षों के बेर ऐसे मीठे कहां होते है !"

लछमन अब तक चुप था, यह सुन कर बोला—"ऐसे मीठे बेर तुमने कहीं और भी देखे है ? एक-एक बेर एक-एक आने को भी सस्ता है।"

दुकानदार—"यह ठीक है, किन्तु है तो आखिर बेरी।"

सुलक्खी—"नही भैया, यह बेरी नही है। मेरे स्वामी की यादगार है। जो अपने स्वामी की यादगार को बेच दे उसको मर कर नरक भी न मिलेगा।"

दुकानदार—"अब इसका क्या उत्तर दू ? ५००) थोड़े नहीं होते। तेरी सारी आयु सुख से कट जायेगी।"

सुलक्खी—"भैया ! जो सुख मुझे इसको पानी देकर होता है, वह सुख रुपये लेकर कभी न होगा।"

दुकानदार—"तो पानी देने से तुझे कौन रोकता है ? जितना चाहे, पानी दे, अगर हाथ तेरा पकड़ जाऊं, तो जो चोर की सजा वह मेरी सजा।"

सुलक्खी—"परन्तु जो बात अब है, वह फिर कहां ? अब अपना है, फिर पराया हो जाएगा। अब बेर सारे गांव में बांटती हूं, फिर तू हाथ भी न लगाने देगा। गाँव के जिन लोगों के पास

पैसा नही वे क्या करेंगे ? बेरों को देखेंगे और ठण्डी सांस भर कर रह जायेंगे। मुझे कोसेंगे, दिल मे गालिया देंगे। अब सब को मुफ्त मिलते है, फिर किसी को न मिलेंगे। 'गाव के छोटे-छोटे बच्चे कहेंगे, कैसी जालिम है, चार पैसों की खातिर बेरी बेच दी। न भाई, यह कलंक का टीका न खरीदूगी। मै गरीब ही भली।"

यह कह कर सुलक्खी बेरी के पास चली गई और उसकी डालियों पर हाथ फेरने लगी।

और यह उस स्त्री का हाल था, जिसने किसी पाठशाला में विद्या नही पढ़ी थी, जिसने कर्म-धर्म पर कोई व्याख्यान न सुना था, जिसके पास खाने को कुछ न था। जो अपने जजमानों के दान पर निर्वाह करती थी, परन्तु उसका हृदय कितना विशाल, कितना पवित्र था ! उसने पड़ोसियों के कर्तव्य को कितना ठीक समझा था ! ऐसी पवित्र-हृदया, सुशीला, सभ्या देवियां संसार में कम जन्म लेती हैं।

: ६ :

कई वर्ष बीत गये।

ज्येष्ठ का महीना था। सुलक्खी बेरी के सारे बेर बांट चुकी थी। अब बेरी पर एक बेर भी बाकी न था। सुलक्खी बेरी के पास खड़ी उसकी फलों से खाली डाली को देखती थी, और खुश होती थी कि इस साल का कर्तव्य भी पूरा हो गया। इतने मे उसके एक जजमान हाड़ीराम ने आकर सुलक्खी को नमस्कार किया और बोला—"पण्डितानी जी ! हमारे बेर कहां है ?"

सुलक्खी के सिर पर जैसे बिजली-सी गिर पड़ी। हैरान थी, क्या कहे, क्या न कहे। हाड़ीराम गांव मे सबसे उजड्ड जाट था। जरा-जरा सी बात पर जोश मे आ जाता था, और मरने-मारने

को तैयार हो जाता था, उसकी लाल आँखें देख कर सारा गाँव सहम जाता था। वह अपने परिवार सहित दो महीने से कही वाहर गया हुआ था। सुलक्खी एक-दो वार उसके मकान पर गई और किवाड़ वन्द पा कर लौट आई। इसके वाद वह उसे भूल-सी गई, और वेर समाप्त हो गये। और अव—

हाड़ीराम उसके सामने खड़ा था। सुलक्खी ने उसकी ओर ख़तावार निगाहों से देखा, और कहा—"जजमान! वेर तो खतम हो गये।"

हाड़ीराम ने जरा गर्म होकर कहा—"वाह! खतम कैसे हो गये? हमें तो मिले ही नही!"

सुलक्खी—"तव तुम जाने कहाँ चले गये थे। दो वार तुम्हारे मकान पर लेकर गई, दोनों वार दरवाजा वन्द था। लौट आई। इसके वाद मुझे खयाल नहीं रहा।"

हाड़ीराम—(त्योरियाँ चढा कर)—"खयाल क्यों नहीं रहा? इतनी वच्चा भी तो नहीं हो।"

सुलक्खी—(शांति से)—"अव जजमान, तुमसे वहस कौन करे, भूल हो गई। अगले साल दुगने ले लेना।"

हाड़ीराम—"खाना तो कभी नही भूलती हो, न फसल पर गल्ला मांगना भूलती हो। हमारे वेरों का समय आया तो भूल गई!"

सुलक्खी—"तुम वाहर चले गये थे। क्या करती?"

हाड़ीराम—"वेरी से लगे रहने देती। मै आता, उतार लेता।"

सुलक्खी—"और जो पक कर गिर जाते, तो फिर? अव किसी के मुँह मे तो पड़ गये। उस अवस्था मे किसी के भी काम

न आते।"

हाड़ीराम के नेत्रों से अग्नि की ज्वाला निकलने लगी। गरज कर बोला—"मेरे बेर जब मेरे काम न आयँ, तो मुझे क्या? चाहे रहे, चाहे मिट्टी मे मिल जायँ। मेरे लिए एक-सी बात है। तुम दूसरों को देने वाली कौन थी?"

अब सुलक्खी को भी क्रोध आया। जरा तेज होकर बोली—"बेरी मेरी है, तुम्हारी नही। जिसको चाहूँ एक बेर भी न दूँ, जिसको चाहूँ सब-के-सब दे दूँ। बेरी तुम्हारे हाथों बिकी हुई नही। तुम बोलने वाले हो कौन?"

हाड़ीराम—"अच्छा अब हम कौन हो गये?"

सुलक्खी (उसी तरह गुस्से से)—"मेहनत मै करती हूं। रात-दिन मै जागती हूँ, फिर सारे के सारे बेर बॉट देती हूँ। आप एक बेर भी नही खाती। इस पर भी इतना क्रोध! आखिर आदमी को कुछ सोचना भी तो चाहिए। जाओ, नही दिये न सही। जो कुछ करना हो, कर लो।"

हाड़ीराम दाँत पीसता हुआ चला गया। इधर सुलक्खी बेरी के पास जाकर उससे लिपट गई, और बोली—"बेटा! यदि तुम्हारा बाप जीता होता, तो इसकी क्या हिम्मत थी, जो यू मेरी बेइज्जती कर जाता।"

इससे तीसरे दिन सुलक्खी एक बीमार बच्चे की सेवा-सुश्रूषा कर रही थी कि एक लड़का दौड़ता हुआ आया, और हाँफता हुआ बोला—"तुम्हारी बेरी को हाड़ी ने काट दिया। कई लोगो ने मना भी किया, मगर वह कहता था मुझे सुलक्खी ने गाली दी है। सारा आंगन भर गया।"

: ७ :

सुलक्खी को ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने गोली मार दी हो। वहा से चली, तो उसे रास्ते न दिखाई देता था। उसके पांव तले से जमीन निकलती जा रही थी। उस समय उसके शरीर मे जरा भी शक्ति न थी। पैर इस तरह लड़खड़ा रहे थे, जैसे अभी गिर पड़ेगी। मार्ग के दोनो ओर लोग खड़े उसको देखते थे, और हाड़ीराम को गालिया देते थे। उस समय उन्हें सुलक्खी का विचार था, हाड़ी का भय न था। वे सुलक्खी के साथ सहानुभूति दिखाना चाहते थे, और उन्हें सिवा हाड़ी को गालियां देने के और कोई ढंग दिखाई न देता था।

उधर सुलक्खी का आगन स्त्री-पुरुषों से भरा था और मध्य में बरी कटी थी। लोग कहते थे—"कितना जालिम है, जरा-सी बात पर बेरी काट दी। काटने पर ही सब्र किया होता, तो भी खैर थी, अगले वर्ष फिर उग आती, परन्तु इसने तो जड़ें भी उखाड़ दी। आदमी काहे को है, चंडाल है!"

सहसा सुलक्खी छोटा-सा घूघट निकाले आई और आंगन मे खड़ी हो गई। इसने बेरी की डालों को जमीन पर पड़ा देखा तो उसके हृदय पर छुरियां चल गई। उसको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वृक्ष की डालियां नही, उसकी सन्तान के हाथ पांव है। उसने आगे बढकर एक-एक डाली को गले लगाया, और रो-रो कर विलाप किया। इस विलाप को सुन कर सभी रोने लगे। सुलक्खी कहती थी—"अरे! तूने मुझे बुला क्यों न लिया बच्चा! पता नही जब तुझ पर जालिम का कुल्हाड़ा चला होगा, तेरा दिल क्या कहता होगा। तड़पता होगा। सोचता होगा मां काहे को है, डायन है। यह कसाई मेरे हाथ पांव काट रहा है,

वह बाहर घूम रही है। बच्चा, मुझे क्या मालूम था, तेरे सिर पर मौत खेल रही है। अभी भला चगा छोड़ गई थी, अभी-अभी तू बाहे फैला कर खड़ी थी। तुझे देख कर जी प्रसन्न हो जाता था। इतनी जल्दी तैयारी कर ली। अब लोग तेरे बेरों को तरसेंगे। ऐसे मीठे बेर और यहां कही नही है।

"तेरे बाप ने मरते समय कहा था, जब तक जीती है, इसकी रक्षा करना, और इसके बेर लोगों मे बाटना। आज ये दोनों बातें असम्भव हो गई हैं। अब मेरा रहना वृथा है। चल, दोनों एक साथ चलें। वहां तीनों मिल कर रहेगे।"

यह कह कर उसने बेरी की डालियों की चिता-सी चुनी। नीचे ऊपर सुखी लकड़ियां डालकर उस पर घी डाला और आग लगा दी। आग की ज्वालाएं हवा मे उठने लगी। लोग पीछे हट गए, मगर सुलक्खी उसी जगह जलती हुई बेरी के पास चुपचाप खड़ी उसकी ओर देख रही थी।

सहसा वह चिता में कूद पड़ी। लोगों में हलचल मच गई। वे 'है है' करते हुए आगे बढ़े, परन्तु आग की ज्वालाओ ने उनका रास्ता रोक लिया। सुलक्खी आग मे बैठी जल रही थी, किन्तु उसके मुख पर जरा परेशानी, जरा घबराहट न थी बल्कि आत्मिक प्रकाश था, जैसे उसके लिए आग आग न थी, ठंडा जल था। इतने में ज्वालाओं में से आवाज आई—"में मरते समय वसीयत करती हूं कि मेरे कुल के लोग भविष्य मे दान न लें।

पुरुषो की आंखों से आंसू जारी थे। स्त्रियां फूट-फूट कर रो रही थी, परन्तु सुलक्खी मृत्यु के गरजते हुए शोलों में चुपचाप बैठी थी। देखते-देखते मा बेटी दोनों जल कर भस्म हो गई। कल

द न जिन्दा थे, आज कोई भी न था।

थोड़ी देर बाद सुलक्खी का भाई लछमन और गाँवों के जाट लाठियाँ लिये हाड़ीराम को ढूँढ़ते हुए फिरते थे। वे कहते थे— "आज उसको जिन्दा नही छोड़ेगे, पहले मारेगे, फिर बाँधकर आग में जला देगें।"

परन्तु हाड़ीराम जंगलो और बनों मे मुँह छिपाता फिरता था। इसके बाद उसे किसी ने नही देखा। कब मरा ? कहाँ मरा ? कैसे मरा ? यह किसी को मालूम नही।

भगवतीचरण वर्मा

: ८ :

प्रायश्चित्त

अगर कबरी बिल्ली घर भर मे किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से और अगर रामू की बहू घर भर मे किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की वहू दो महीने हुए मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की वालिका। भंडार-घर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर मे सब कुछ; सासजी ने माला लिया और पूजा-पाठ मे मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार-घर खुला है तो कभी भण्डार-घर मे बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफत मे और कबरी बिल्ली के छक्के-पजे। रामू की बहू हाडी में घी रखते-रखते ऊघ गई और बचा हुआ घी कवरी के पेट मे। रामू की बहू दूध ढककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर बात यही तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परच गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुची

और रामू जब आये तब कटोरी साफ चटी हुई। बाजार से मलाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, मलाई गायब। रामू की बहू ने तै कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया, उसमें दूध, मलाई, चूहे और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी; पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फासिले पर कि रामू की बहू उस पर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिड़कियां, और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिश्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटे गये, सोने का बर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊंचे ताक पर रखा गया जहां बिल्ली न पहुंच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे मे बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूंघा, माल अच्छा है, ताक की ऊंचाई अन्दाजी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलांग मारी, पंजा कटोरे मे लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज के साथ फर्श पर।

आवाज रामू की बहू के कान में पहुंची, सास के सामने पान

फेंककर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहु को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बांस न बजे बांसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात भर उसे नीद न आई, किस दांव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर जिन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उस दख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौका हाथ मे आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, बस एकदम उलट गई।

आवाज जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गई। रामू की बहू सर झुकाये अपराधिनी की भाति बाते सुन रही है।

महरी बोली—अरे राम, बिल्ली तो मर गई। मां जी बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।

मिसरानी बोली—मां जी, बिल्ली-हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनावेगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।

सासजी बोली—हां ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू

के सिर से हत्या न उतर जाय तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। वहू, यह क्या कर डाला!

महरी ने फिर कहा—फिर क्या हो, कहो तो पंडितजी को वुलाय लाई।

सास की जान में जान आई—अरे हां, जल्दी दौड़ के पंडित जी को वुला ला।

विल्ली की हत्या की खवर विजली की तरह पड़ोस मे फैल गई। पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताता बंध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की वहू सिर झुकाये बैठी।

पडित परमसुख को जव यह खवर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे। खवर पाते ही वे उठ पड़े—पण्डिताइन से मुसकराते हुए वोले—भोजन न वनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने विल्ली मार डाली। प्रायश्चित होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।

पण्डित परमसुख चौवे छोटे-से मोटे-से आदमी थे। लम्वाई चार फीट दस इंच और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-मटोल, मूछ वड़ी-वड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुंचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा मे जब पंसेरी खुराकवाले पंडितों को ढूंढा जाता था तो पण्डित परमसुखजी को उस लिस्ट मे प्रथम स्थान दिया जाता था।

पंडित परमसुख पहुंचे, और कोरम पूरा हुआ। पंचाइत वैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की मां, छन्नू की दादी और पंडित परमसुख! वाकी सव स्त्रिया वहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की मां ने कहा—पंडित जी, विल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है?

पडित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नही बतलाया जा सकता, वह महूरत भी जब मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है।

"यही कोई सात बजे सुबह।"—मिसरानीजी ने कहा।

पंडित परमसुख ने पन्ने के पन्ने उल्टे, अक्षरो पर उंगलियां चलाईं, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया, हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त मे बिल्ली की हत्या! घोर कुम्भी-पाक नरक का विधान है! रामू की मां, यह तो बड़ा बुरा हुआ।

रामू की मां की आंखों मे आसू आ गये—तो फिर पंडितजी; अब क्या होगा, आप ही बतलाये ?

पडित परमसुख मुसकराये—रामू की मां, चिता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिये है ? शास्त्रों में प्रायश्चित का विधान है, सो प्रायश्चित से सब कुछ ठीक हो जायगा।

रामू की मा ने कहा—पंडित जी, उसी लिये तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय।

"किया क्या जाय—यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाय—जब तक बिल्ली न दे दी जायगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाय।"

छन्नू की दादी—हां और क्या, पडितजी तो ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय।

रामू की मां ने कहा—तो पंडितजी, कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय ?

पंडित परमसुख मुसकराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाय ? अरे रामू की मां, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय। लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नही रही। सो रामू की मां, बिल्ली के तौल भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम की क्या होगी, हा, कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा !

रामू की मा ने आखें फाड़कर पंडित परमसुख को देखा—अरे बाप रे ! इक्कीस तोला सोना ! पंडित जी यह तो बहुत है, तोला भर की बिल्ली से काम निकलेगा ?

पडित परमसुख हँस पड़े—रामू की मां ! एक तोला सोने की बिल्ली ! अरे रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया ? बहू के सिर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं !

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई। पण्डित परमसुख ने कहा—उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिये हैं। रामू की मां, मैं पाठ कर दिया करूंगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा दना।

"पूजा का कितना सामान लगेगा ?"

"अरे कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिये

करीब दस मन गेहूं, एक मन चावल, एक मन दाल, मन भर तिल, पांच मन जौ, पांच मन चना, चार पसेरी घी और मन-भर नमक भी लगेगा।"

"अरे बाप रे, इतना सामान! इसमें तो सौ डेढ़-सौ रुपया खर्च हो जाएगा।"—रामू की मां ने रुआई-सी होकर कहा।

"फिर इससे कम मे तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की मां! खर्च को देखते वक्त पहिले बहू के पाप को तो देख लो! यह तो प्रायश्चित है।"

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए; किसनू की मां ने कहा—पंडित जी ठीक तो कहते है।

छन्नू की दादी ने कहा—और नही तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं। दान-पुन्न मे किफायत ठीक नही।

मिसरानी ने कहा—और फिर मांजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे। इतना खर्च क्यों आप लोगों को अखरेगा?

रामू की मां ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पडित जी के साथ। पंडित परमसुख मुसकरा रहे थे। उन्होंने कहा— रामू की मां, एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्चा है। मुह न मोडो।

एक ठंडी सांस लेते हुए रामू की मां ने कहा, अब तो जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा।

पण्डित परमसुख जरा कुछ बिगड़कर बोले—रामू की मां! यह तो खुशी की बात है, अगर तुम्हे यह अखरता है तो न करो—मैं चला। इतना कहकर पंडित जी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

"अरे प्रण्डितजी, रामू की मां को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है—बिगड़ो न।"—मिसरानी, छन्नू

की दादी और किसनू की मां ने एक स्वर मे कहा।

रामू की मा ने पडितजी के पैर पकड़े—और पंडितजी ने अब जमकर आसन जमाया।

"और क्या हो ?"

"इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाच-पांच ब्राह्मणो को भोजन करवाना पड़ेगा।" —कुछ रुककर पंडित परमसुख ने कहा—सो इसकी चिन्ता न करो,मैं अकेले दोनो समय भोजन कर लूगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायेगा।

"यह तो पडितजी ठीक कहते है, पडितजी की तोंद तो देखो"—मिसरानी ने मुसकराते हुए पंडितजी पर व्यंग्य किया।

"अच्छा, तो फिर प्रायश्चित का प्रबंध करवाओ रामू की मां, ग्यारह तोला सोना निकालो, मै उसकी बिल्ली बनवा लाऊं— दो घंटे मे मै बनवाकर लौटूगा तब तक सब पूजा का प्रबंध कर रखो—और देखो, पूजा के लिए—"

पडितजी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हांफती हुई कमरे मे घुस आई और सब लोग चौक उठे। रामू की मां ने घबडा कर कहा—अरी क्या हुआ री!

महरी ने लड़खड़ाते स्वर मे कहा—माजी, बिल्ली तो उठ कर भाग गयी।

पाण्डेय बेचनशर्मा 'उग्र'

: ९ :

उसकी माँ

दोपहर को जरा आराम करके उठा था। अपने पढने-लिखने के कमरे मे, खड़ा-खडा, धीरे-धीरे सिगार पी रहा था और बडी-बड़ी आलमारियो मे सजे पुस्तकालय की ओर निहार रहा था। किसी महान लेखक की कोई महान कृति उनमे से निकालकर देखने की वात सोच रहा था। मगर, पुस्तकालय के एक सिरे से लेकर, दूसरे तक मुझे महान ही महान नजर आये। कही गेटे, कही रूसो, कही मेजिनी, कही नित्शे, कही शेक्सपीयर, कही टॉल्सटॉय, कही ह्यूगो—मोपासाँ, कही डिकिन्स, स्पेन्सर, मेकाले, मिल्टन, मोलियर—उफ! इधर से उधर तक एक से एक महान ही तो थे। आखिर मै किसके साथ चद मिनट मन-बहलाव करूं यह निश्चय ही न हो सका। महानों के नाम ही पढते-पढते परेशान-सा हो गया।

इतने मे मोटर का भों-भो सुनाई पड़ा। खिड़की से झांका तो सुर्मई रग की कोई 'फियेट' गाड़ी दिखाई पड़ी। मै सोचने लगा—शायद कोई मित्र पधारे हैं, अच्छा ही है। महानों से जान बची।

जब नौकर ने सलाम कर आनेवाले का कार्ड दिया, तब मै कुछ घबराया। उस पर शहर के पुलिस सुपरिंटेडेंट का नाम छपा था। ऐसे बेवक्त ये कैसे आये?

पुलिस-पति भीतर आये। मैंने हाथ मिलाकर एक चक्कर खाने वाली गद्दीदार कुर्सी पर उन्हें आसन दिया। वे व्यापारिक मुस्कराहट से लैस होकर बोले—

"इस अचानक आगमन के लिए आप मुझे क्षमा करें।"

"आज्ञा हो।" मैंने भी नम्रता से कहा।

उन्होने पाकेट से डायरी निकाली, डायरी से एक तस्वीर— "देखिये इसे। जरा बताइये तो आप पहचानते है, इसको ?"

"हां, पहचानता तो हूँ।" जरा सहमते हुए मैंने बताया।

"इसके बारे में मुझे आपसे कुछ पूछना है।"

"पूछिये।"

"इसका नाम क्या है ?"

"लाल। मै इसी नाम से बचपन ही से इसे पुकारता आ रहा हूँ। मगर, यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और है, सो मुझे स्मरण नही।"

"कहां रहता है यह ?"—सुपरिंटेंडेंट ने पुलिस की धूर्त-दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा।

"मेरे बंगले के ठीक सामने, एक दोमंजिला कच्चा-पक्का घर है, उसी में वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी मां।"

"बूढ़ी का नाम क्या है ?"

"जानकी।"

"और कोई नही है क्या इसके परिवार में ? दोनों का पालन-पोषण कौन करता है ?"

"सात आठ वर्ष हुए, लाल के पिता का देहान्त हो गया। अब उस परिवार मे वह और उसकी माता ही बचे है। उसका पिता जब तक जीवित रहा बराबर मेरी जमीदारी का मुख्य मैनेजर रहा।

उसका नाम रामनाथ था। वही मेरे पास कुछ हजार रुपये जमा कर गया था, जिससे अब तक उनका खरचा-वरचा चल रहा है। लड़का कालेज में पढ़ रहा है। जानकी को आशा है, वह साल-दो-साल बाद कमाने और परिवार को संभालने लगेगा। मगर,—क्षमा कीजिये, क्या मै यह पूछ सकता हूँ कि आप उसके बारे में क्यों इतनी पूछताछ कर रहे है ?"

"यह तो मै आपको नही बता सकता, मगर इतना आप समझ ले, यह सरकारी काम है। इसीलिए आज मैंने आपको इतनी तकलीफ दी है।"

"अजी, इसमें तकलीफ की क्या बात है। हम तो सात पुश्त से सरकार के फरमाबरदार है। और कुछ, आज्ञा .... ।"

"एक बात और", पुलिस-पति ने गंभीरता से, धीरे से कहा—"मित्रता से आपसे निवेदन करता हूँ। आप इस परिवार से जरा सावधान और दूर रहें। फिलहाल इससे अधिक मुझे कुछ कहना नहीं।"

: २ :

"लाल की मां।" एक दिन जानकी को बुलाकर मैंने समझाया—"तुम्हारा लाल आजकल क्या पाजीपन करता है ? तुम उसे केवल लाड-प्यार ही करती हो न ? हूँ; भोगोगी।"

"क्या है बाबू ?" उसने कहा—"लाल क्या करता है ? मैं तो उसे कोई भी बुरा काम करते नही देखती।"

"विना किये ही तो सरकार किसी के पीछे पड़ती नही। हाँ लाल की मां, बड़ी धर्मात्मा, विवेकी और न्यायी सरकार है यह। जरूर तुम्हारा लाल कुछ करता होगा।"

"माँ ! माँ ! ! पुकारता हुआ उसी समय, लाल भी आया।

लंबा, सुडौल, सुन्दर, तेजस्वी।

"माँ!" उसने मुझे नमस्कार कर जानकी से कहा—"तू यहां भाग आई है! चल तो मेरे कई सहपाठी वहाँ खड़े हैं। उन्हे चटपट कुछ जलपान करा दो। फिर हम घूमने जायेंगे।"

"अरे!" जानकी के चेहरे की झुर्रियां चमकने लगी, वह काँपने लगी, उसे देखकर—"तू आ गया, लाल! चलती हूँ भैया! पर देख तो, तेरे चाचा क्या शिकायत कर रहे है। तू क्या पाजीपन करता है वेटा?"

"क्या है चाचाजी?" उसने सविनय सुमधुर स्वर से मुझसे पूछा—"मैने क्या अपराध किया है?"

"मै तुमसे नाराज हूँ लाल!" मैंने गंभीर स्वर मे कहा।

"क्यों चाचा जी?"

"तुम वहुत वुरा करते हो, जो सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र करने वालों के साथी हो। हाँ, हाँ—तुम हो। देखो लाल की माँ, इसके चेहरे का रंग उड़ गया। यह सोचकर कि यह खवर मुझे कैसे मिली!"

सचमुच एक वार उसका खिला हुआ रंग जरा मुरझा गया, मेरी वातों से। पर तुरंत ही वह संभला।

"आपने गलत सुना है, चाचाजी! मै किसी षड्यंत्र मे नहीं। हाँ, मेरे विचार स्वतत्र अवश्य है। मै जरूरत-वेजरूरत जिस-तिस के आगे उवल अवश्य उठता हूँ देश की दुरवस्था पर; उवल उठता हूँ, इस पशु-हृदया परतन्त्रता पर।"

"तुम्हारी ही वात सही, तुम षड्यंत्र मे नही, विद्रोह मे नहीं, पर यह वकवक क्यों? इससे फायदा? तुम्हारी इस वकवक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा

काम पढ़ना है—पढो। इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी। तुम पहले अपने घर का उद्धार तो कर लो। तव सरकार के सुधार का विचार करना!"

उसने नम्रता से कहा—"चाचाजी, क्षमा कीजिए। इस विषय मे मैं आपसे विवाद करना नही चाहता।"

"चाहना होगा, विवाद करना होगा। मै केवल चाचा जी नहीं, तुम्हारा बहुत कुछ हूँ। तुम्हे देखते ही मेरी आंखों के सामने रामनाथ नाचने लगते है। तुम्हारी बूढी माँ, घूमने लगती है। भला मै तुम्हे बे-हाथ होने दे सकता हूँ? इस भरोसे न रहना।"

"इस पराधीनता के विवाद मे, चाचाजी, मै और आप दो भिन्न सिरो पर है। आप कट्टर राज-भक्त, मै कट्टर राज-विद्रोही। आप पहली बात को उचित समझते है, कुछ कारणों से, मै दूसरी को, दूसरे कारणों से। आप अपना पथ छोड़ नही सकते—अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिए। मैं भी अपना नही छोड़ सकता।"

"तुम्हारी कल्पनाएं क्या है? सुनू भी। जरा मैं भी जान लूँ कि अब के लड़के, कालेज की गरदन तक पहुंचते-पहुंचते कैसे-कैसे हवाई किले उठाने के सपने देखने लगते है। जरा मै भी सुनूँ—बेटा!"

"मेरी कल्पना यह है कि, जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र किसी अन्य व्यक्ति समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो—उसका सर्व-नाश हो जाय।"

जानकी उठ कर बाहर चली—"अरे, तू तो जमकर चाचा से जूझने लगा। वहाँ चार बच्चे बेचारे दरवाजे पर खड़े होंगे, लड़ तू, मै जाती हूँ।" उसने मुझसे कहा—"समझा दो बाबू, मैं तो आप ही नही समझती, फिर इसे क्या समझाऊंगी।" उसने फिर

लाल की ओर देखा—"चाचा जो कहें मान जा वेटा। यह तेरे भले ही की कहेंगे।"

वह वेचारी, कमर झुकाये उस साठ वरस की वय में घूंघट संभाले, चली गईं। उस दिन उसने मेरी और लाल की वातों की गंभीरता नही समझी।

"मेरी कल्पना यह है कि ....." उत्तेजित स्वर से लाल ने कहा—"ऐसे दुष्ट, नाशक, व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के सर्वनाश में मेरा भी हाथ हो।"

"तुम्हारे हाथ दुर्वल है, उनसे, जिनसे तुम पंजा लेने जा रहे हो। चर्रर-मर्रर हो उठेंगे। नष्ट हो जायेंगे।"

"चाचाजी, नष्ट हो जाना तो यहा का नियम है। जो सँवारा गया है, वह विगड़े ही गा। हमे दुर्वलता के डर से अपना काम नही रोकना चाहिए। कर्म के समय हमारी भुजाएं दुर्वल नही, भगवान् की सहस्र भुजाओं की सखी है।"

"तो, तुम क्या करना चाहते हो?"

"जो भी मुझसे हो सकेगा करूँगा।"

"षड्यंत्र····?"

"जरूरत पड़ी तो जरूर ......।"

"विद्रोह ····?"

"हाँ, अवश्य!"

"हत्या ······ ?"

"हाँ—हाँ—हाँ—।"

"वेटा, तुम्हारा माथा, न जाने कौन किताव पढ़ते-पढ़ते विगड़ रहा है। सावधान!"

: ३ :

मेरी धर्मपत्नी और लाल की मां, एक दिन बैठी हुई बातें कर रही थी कि मै पहुंच गया। कुछ पूछने के लिए कई दिनों से मैं उसकी तलाश में था।

"क्यों लाल की मा ! लाल के साथ किसके लड़के आते है, तुम्हारे घर मे ?"

"मै क्या जानू बाबू" उसने सरलता से कहा—"मगर वे सभी मेरे लाल ही की तरह प्यारे मुझे दीखते है। सब लापरवाह। वे इतना हंसते, गाते और हो-हल्ला मचाते है कि मै मुग्ध हो जाती हूं।"

मैने एक ठंडी सांस ली—"हूं, ठीक कहती हो। वे बातें कैसी करते है ? कुछ समझ पाती हो ?"

"बाबू, वे लाल की बैठक मे बैठते है। कभी-कभी जब मै उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने जाती हूं, तब वे प्रेम से मुझे 'मां' कहते है। मेरी छाती फूल उठती है—मानो वे मेरे ही बच्चे हैं।"

"हूं ...." मैने फिर सास ली।

"एक लड़का उसमे बहुत ही हंसोड़ है। खूब तगड़ा और बली दीखता है। लाल कहता था, वह डण्डा लड़ने में, दौड़ने मे, घूसे-बाजी मे, खाने मे, छेड़खानी करने और हो-हो-हा-हा कर हंसने में समूचे कालेज में फर्द है। उसी लडके ने एक दिन, जब मै उन्हें हलवा परस रही थी मेरे मुह की ओर देखकर कहा—मां ! तू ठीक भारत-माता-सी लगती है। तू बूढी, वह बूढ़ी। उसका हिमालय उजला है, तेरे केश। हा, मै नकशे से साबित करता हूं—तू भारत-माता है। सर तेरा हिमालय, माथे की दोनो गहरी, बड़ी, रेखाए गंगा और यमुना। यह नाक विन्ध्यांचल, दाढ़ी कन्या-

कुमारी तथा छोटी-वडी झुर्रियां-रेखाएं भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियां हैं। जरा पास आ मेरे। तेरे केशों को पीछे से आगे—वाएं कन्धे पर लहरा दूँ। यह वर्मा वन जायगा। विना उसके भारत-माता का शृंगार शुद्ध न होगा।"

जानकी उस लड़के की वाते सोच गद्गद् हो उठी। "वावू, ऐसा ढीठ लड़का। सारे वच्चे हँसते रहे और उसने मुझे पकड़ मेरे वालों को वाहर कर अपना वर्मा तैयार कर लिया। कहने लगा—देख, तेरा यह दाहिना कान कच्छ की खाड़ी है—वम्वई के आगे वाली, और यह वाया—वंगाल की खाड़ी। माँ, तू सीधा मुँह कर के जरा खडी हो। मैं तेरी ठुड्डी के नीचे, उससे दो अंगुल के फासले पर, हाथ जोड़कर घुटनों पर वैठता हूँ। दाढी तेरी कन्या कुमारी–हा हा हा हा ! —और मेरे जुड़े, जरा तिरछे, हाथ सीलोन—लंका ! — हा हा हा हा ! ! ..... वोल, भारत माता की जय।"

"सव लड़के ठहाका लगा कर हँसने लगे। वह घुटने टेककर, हाथ जोड़कर, मेरे पावों के पास वैठ गया। मैं हवकी-ववकी-सी हँसने वालों का मुँह निहारने लगी। वावू, वे सभी वच्चे मेरे 'लाल' है, सभी मुझे 'माँ'—गाकर—कहते है।"

उसकी सरलता मेरी आँखो मे आंसू वनकर छा गई। मैंने पूछा—"लाल की माँ ! और भी वे कुछ वातें करते है ? लड़ने की, झगड़ने की, गोला गोली या वन्दूक की ?"

"अरे वावू" उसने मुसकराकर कहा—"उनकी वातो का कोई मतलव थोड़े ही होता है। सव जवान है, लापरवाह हैं, जो मुँह में आता है, वकते है। कभी-कभी तो पागलो-सी वाते करते है। महीना भर पहले एक दिन लड़के वहुत उत्तेजित थे। वे जव वैठक मे वैठ कर गलचौर करने लगते है, तव कभी-कभी उनका

पागलपन सुनने के लोभ से, मैं दरवाजे से सट कर और छिप कर खड़ी हो जाती हूं।"

"न जाने कहा, लड़को को सरकार पकड रही है। मालूम नहीं, पकड़ती भी है या वे यो ही गप हांकते थे। मगर उस दिन वे यही बक रहे थे। कहते थे—पुलिस वाले केवल सदेह पर भले आदमियों के बच्चो को त्रास देते है, मारते है, सताते है। यह अत्याचारी पुलिस की नीचता है। ऐसी नीच शासन-प्रणाली को स्वीकार करना अपने धर्म को, कर्म को, आत्मा को, परमात्मा को भुलाना है—धीरे-धीरे घुलाना, मिटाना है।"

"एक ने उत्तेजित भाव से कहा—अजी, ये परदेशी कौन लगते है हमारे, जो हमे बरबस, राज-भक्त बनाये रखने के लिए हमारी छाती पर तोप का मुह लगाये, अड़े और खड़े है? उफ! इस देश के लोगों की हिये की आखे मुद गई है, तभी तो इतने जुल्मों पर भी आदमी, आदमी से डरता है। ये लोग शरीर की रक्षा के लिए अपनी अपनी आत्मा की चिता सवारते फिरते हैं। नाश हो इस परतंत्रवाद का!"

"दूसरे ने कहा—लोग ज्ञानी न हो सके, इसलिए इस सरकार ने हमारे पढने-लिखने के साधनो को अज्ञान से भर रक्खा है। लोग वीर और स्वाधीन न हो सके इसलिए अपमान-जनक और मनुष्यता-नीति-मर्दक कानून गढ़े है। गरीबों को चूसकर, सेना के नाम पर, पले हुए पशुओं को शराब से, कबाब से, मोटा-ताज़ा रखती है, यह सरकार। धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे देश का धर्म, प्राण और धन चूसती चली जा रही है, यह लूटक-शासन-प्रणाली। नाश हो इस प्रणाली का! इस प्रणाली की तस्वीर सरकार का!"

"तीसरा, वही बंगड़ बोला—सब से वुरी वात यह है, जो सरकार रोव से—'सत्तावनी' रोव से—धाक से, धांधली से, धुआं से, हम पर शासन करती है! यह, आंखे खोलते ही कुचल-कुचलकर, हमे दब्बू, कायर, हतवीर्य वनाती है। और किस लिए जरा सोचो तो! मुट्ठी-भर मनुष्यों को अरुण, वरुण और कुवेर वनाये रखने के लिए। मुट्ठी-भर मनचले सारे संसार की मनुष्यता की मिट्टी पलीत करे, परमात्मा-प्रदत्त स्वाधीनता का संहार करे—छि: ! नाश हो ऐसे मनचलों का!"

"ऐसे ही अट-संट ये वातूनी वका करते है वावू! जभी चार छोकरे जुड़े, तभी यही चर्चा। लाल के साथियों का मिजाज़ भी, उसी-सा अल्हड़-विल्हड़ मुझे मालूम पड़ता है। ये लड़के ज्यों-ज्यों पढ़ते जा रहे है, त्यो-त्यों वकवक मे वढ़ते भी जा रहे है।"

"यह बुरा है, लाल की माँ!" मैंने गहरी सांस ली।

: ४ :

ज़मीदारी के कुछ ज़रूरी काम से, चार-पांच दिनों के लिए वाहर गया था। लौटने पर बंगले मे घुसने से पूर्व लाल के दरवाजे पर जो नजर पड़ी तो वहां एक भयानक सन्नाटा-सा नजर आया। जैसे घर उदास हो, रोता हो।

भीतर आने पर मेरी धर्मपत्नी मेरे सामने उदास-मुख खड़ी हो गई।

"तुमने सुना?"

"नही तो, कौन-सी वात?"

"लाल की माँ पर भयानक विपत्ति टूट पड़ी है।" मै कुछ-कुछ समझ गया, फिर भी विस्तृत विवरण जानने को उत्सुक हो उठा—"क्या हुआ? जरा साफ-साफ वताओ।"

"वही हुआ, जिस का तुम्हें भय था। कल पुलिस की एक पलटन ने लाल का घर घेर लिया था। बारह घंटे तक तलाशी हुई। लाल, उसके बारह-पन्द्रह साथी, सभी पकड़ लिये गये है। सभी लड़कों के घरों की तलाशी हुई है। सब के घर से भयानक भयानक चीजें निकली है।"

"लाल के यहां ... ?"

"उसके यहां भी दो पिस्तौल, बहुत से कारतूस और पत्र पाये गये है। सुना है, उन पर हत्या, षड्यंत्र, सरकारी राज्य उलटने की चेष्टा, आदि अपराध लगाये गये है।"

"हूं" मैंने ठंडी सांस ली—"मै तो महीनों से चिल्ला रहा था कि यह लौडा धोखा देगा। अब वह बूढी बेचारी मरी। वह कहां है? तलाशी के बाद तुम्हारे पास आई थी?"

"जानकी मेरे पास कहां आई। बुलवाने पर भी कल नकार गई। नौकर से कहलाया—पराठे बना रही हूं, हलुवा तरकारी अभी बनानी है। नही तो वे बिल्हड़ बच्चे हवालात मे मुरझा न जायँगे। जेलवाले और उत्साही बच्चों की दुश्मन यह सरकार उन्हें भूखों मार डालेगे, मगर मेरे जीते जी यह नही होने का।"

"वह पागल है, भोगेगी।" मै दुःख से टूटकर एक चारपाई पर भहरा पड़ा। मुझे लाल के कर्मो पर घोर खेद हुआ।

इसके बाद, प्रायः एक वर्ष तक वह मुकदमा चला। कोई भी अदालत के कागज उलटकर देख सकता है। सी० आई० डी० ने—और उसके मुख्य सरकारी वकील ने उन लड़कों पर बड़े-बड़े दोषारोप किये। उन्होंने चारों ओर ग्रुप समितियां स्थापित की थीं; उसके खर्चे और प्रचार के लिए डाके डाले थे, सरकारी अधिकारियों के यहाँ रात मे छापा मारकर, शस्त्र एकत्र किये थे,

पलटन में उन्होंने वगावत फैलाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने न जाने कहां, न जाने किस पुलिस के दरोगा को मारा था, और न जाने कहा, न जाने किस पुलिस सुपरिंटेंडेंट को! ये सभी वातें, सरकार की ओर से प्रमाणित की गई।

उधर उन लड़कों की पीठ पर कौन था? प्राय: कोई नही। सरकार के डर के मारे पहले तो कोई वकील ही उन्हे नही मिल रहा था, फिर एक बेचारा मिला भी; तो 'नही' का भाई। हां, उन की पैरवी में सवसे अधिक परेशान वह बूढी रहा करती। वह सुवह शाम उन वच्चों को—लोटा, थाली, जेवर आदि बेच बेचकर भोजन पहुंचाती। फिर वकीलों के यहां जाकर दांत निपोरती, गिड़गिडाती कहती—

"सव झूठ है। न जाने कहां से, पुलिस वालों ने ऐसी-ऐसी चीजे हमारे घरो से पैदा कर दी है। वे लड़के केवल वातूनी है—हां, मै भगवान का चरण छूकर कह सकती हूं। तुम जेल मे जाकर देख आओ वकील वावू! भला वे फूल से वच्चे हत्याकर सकते है?"

उसका तन सूख कर कांटा हो गया, कमर झुककर धनुष-सी हो गई, आंखें निस्तेज; मगर उन वच्चों के लिए दौड़ना, हाय-हाय करना, उसने वंद न किया। कभी-कभी सरकारी नौकर, पुलिस या वार्डर झुझलाकर उसे झिड़क देते, धकिया देते। तव वह खड़ी हो जाती छड़ी के सहारे कमर सीधी कर कहती—"अरे अरे! तुम कैसे जवान हो, कैसे आदमी हो। मै तो उन भोले वच्चों के लिए दौड़ती-मरती हूं और तुम मुझे धक्के दे रहे हो! मैने तुम्हारा क्या विगाडा है, भैया?"

उसको अंत तक यही विश्वास रहा कि यह सव पुलिस की चालवाजी है। अदालत में जव दूध का दूध और पानी का पानी

दिया जायगा, तब वे बच्चे जरूर बे-दाग छूट जायगे। वे फिर उसके घर में लाल के साथ आवेगे। हा-हा-हो-हो करेगे। उसे 'मां' कहकर पुकारेगे।

मगर, उस दिन उसकी कमर टूट गई, जिस दिन ऊंची अदालत ने भी, लाल को, उस बंगड़ लठैत को तथा दो और लड़कों को फासी और दस को दस वर्ष से सात वर्ष तक की कड़ी सजाएं दी।

वह अदालत के बाहर झुकी खड़ी थी। बच्चे बेड़ियां बजाते, मस्ती से झूमते, बाहर आये। सबसे पहले उस बगड़ की नजर उस पर पड़ी——

"मां!" वह मुस्कराया——"अरे हमे तो हलुवा खिला-खिला कर तूने गधे-सा तगड़ा कर दिया है, ऐसा कि, फांसी की रस्सी टूट जाय और हम अमर के अमर बने रहे। मगर तू स्वयं सूखकर कांटा हो गई है। क्यों पगली——तेरे लिए घर मे खाना नही ह क्या?"

"मां!" उसके लाल ने कहा——"तू भी जल्द वही आना, जहां हम लोग जा रहे हैं। यहां से थोड़ी देर का रास्ता है मां! एक सांस मे पहुंचेगी। वही, हम स्वतंत्रता से मिलेगे। तेरी गोद में खेलेगे। तुझे कंधे पर उठाकर इधर से उधर दौड़ते फिरेगे। समझती है? वहां बड़ा आनन्द है!"

"आवेगी न मां?"——बंगड़ ने पूछा।

"आवेगी न मां?" लाल ने पूछा।

"आवेगी न मां?" फांसी दण्ड-प्राप्त दो दूसरे लड़कों ने भी पूछा।

और वह बकर-बकर उनका मुह ताकती रही——"तुम कहां

जाओगे पगलो ?"

जब से लाल और उसके साथी पकड़े गये, तब से शहर या मुहल्ले का कोई आदमी लाल की मां से मिलने मे डरता था। उसे रास्ते मे देखकर जान-पहचानी वगले झांकने लगते। मेरा स्वयं अपार प्रेम था उस वेचारी बूढ़ी पर; मगर मै भी बरावर दूर ही रहा। कौन अपनी गरदन मुसीबत मे डालता, विद्रोही की मां से संबंध रखकर ?

उस दिन, व्यालू करने के बाद कुछ देर के लिए पुस्तकालय-वाले कमरे मे गया। वही, किसी महान् लेखक की कोई महान् कृति क्षण भर देखने के लालच से मैने मेजिनी की एक जिल्द निकाल कर उसे खोला। उसके पहले ही पन्ने पर पेंसिल की लिखा-वट देखकर चौका। ध्यान देने पर पता चला, लाल का वह हस्ता-क्षर था! मुझे याद पड़ गई। तीन बरस पूर्व, उस पुस्तक को मुझसे मांगकर, उस लड़के ने पढ़ा था!

एक बार मेरे मन मे बड़ा मोह उत्पन्न हुआ, उस लड़के के लिए। उसके वफादार पिता रामनाथ की दिव्य और स्वर्गीय तस्वीर मेरी आखो के आगे नाच गई। लाल की मां पर उस पाजी के सिद्धातों, विचारों या आचरण के कारण जो वज्रपात हुआ था, उसकी एक ठेस मुझे भी, उसके हस्ताक्षर को देखते ही लगी। मेरे मुह से एक गंभीर, लाचार दुर्वल सांस निकलकर रह गई।

पर, दूसरे ही क्षण पुलिस सुपरिंटेडेट का ध्यान आया। उसकी भूरी, सुहावनी, अमानवी आखे मेरी, आप सुखी तो जगसुखी, आंखों मे वैसे ही चमक गई जैसे ऊजड़ गांव के सिवान मे कभी-कभी भुतही चिनगारी चमक जाया करती है। उसके रूखे फौलादी हाथ—जिनमें लाल की तस्वीर थी—मानो मेरी गरदन चांपने

लगे। मैं मेज पर से, इरेजर, (रबर) उठाकर पुस्तक पर से उसका नाम उधेड़ने लगा।

इसी समय मेरी पत्नी के साथ लाल की मां वहां आई। उसके हाथ मे एक पत्र था।

"अरे !" मैं अपने को रोक न सका —"लाल की मा ! तुम तो बिल्कुल पीली पड़ गई हो। तुम इस तरह मेरी ओर निहारती हो, मानो कुछ देख ही नही रही हो। यह, हाथ मे क्या है ?"

उसने चुपचाप पत्र मेरे हाथ मे दे दिया। मैने देखा उस पर.... जेल की मुहर थी। सजा सुनाने के बाद वह वही भेज दिया गया था, यह मुझे मालूम था।

मै पत्र निकालकर पढने लगा। वह उसकी अंतिम चिट्ठी थी। मैने कलेजा रूखा कर, उसे पढ दिया।

"मां,

जिस दिन तुम्हे यह पत्र मिलेगा उसके ठीक सवेरे मैं, बाल अरुण के किरण-पथ पर चढकर, उस ओर चला जाऊंगा। मै चाहता तो अन्त समय तुमसे मिल सकता था, मगर इससे क्या फायदा ? मुझे विश्वास है, तुम मेरी जन्म-जन्मान्तर की जननी हो, रहोगी ! मै तुमसे दूर कहां जा सकता हूं ? मां ! जब तक पवन सांस लेता है, सूर्य चमकता है, समुद्र लहराता है, तब तक कौन मुझे तुम्हारी करुणामयी गोद से दूर खीच सकता है ?

दिवाकर थमा रहेगा; अरुण रथ लिये जमा रहेगा, मै, बंगड़, वे सभी तेरे इंतजार मे रहेगे।

हम मिले थे, मिले है, मिलेगे—हां, मां,! तेरा—लाल,।"

कांपते हाथों से, पढने के बाद पत्र को मैंने उस भयानक लिफाफे में भर दिया। मेरी पत्नी की विकलता हिचकियों पर चढ़

कर कमरे को करुणा से कंपाने लगी। मगर वह जानकी ज्यों की त्यों, लकड़ी पर झुकी, पूरी खुली और भावहीन आंखों से मेरी ओर देखती रही। मानो वह उस कमरे मे थी ही नही।

क्षण भर बाद हाथ बढाकर, मौन भाषा मे, उसने पत्र मांगा। और फिर, बिना कुछ कहे कमरे के—घर के—फाटक के बाहर हो गई, डुगुर, डुगुर लाठी टेकती हुई।

इसके बाद शून्य-सा होकर मै धम से कुर्सी पर गिर पड़ा। माथा चक्कर खाने लगा। उस पाजी लड़के के लिए नही, इस सरकार की क्रूरता के लिए भी नही—उस बेचारी, भोली, बूढ़ी जानकी—लाल की मा के लिए। आह,वह कैसी स्तब्ध थी। उतनी स्तब्धता किसी दिन प्रकृति को मिलती, तो आधी आ जाती। समुद्र पाता, तो बौखला उठता।

जब एक का घंटा बजा, मै जरा सगबगाया। ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो हरारत पैदा हो गई है—माथे में, छाती में, रग-रग मे। पत्नी ने आकर कहा—"बैठे ही रहोगे, सोओगे नही ?" मैंने इशारे से उन्हे जाने को कहा।

फिर, मेजिनी की जिल्द पर नजर गई। उसके ऊपर पड़े रबर पर भी। फिर, अपने सुखों की, जमीदारी की, धनिक-जीवन की और उस पुलिस अधिकारी की निर्दय, नीरस, निस्सार आखों की स्मृति कलेजे मे कम्पन कर गई। फिर रबर उठाकर, मैंने उस पाजी का पेंसिल-खचित नाम, पुस्तक की छाती पर से मिटा डालना चाहा।

"मांाााााां!"

मुझे सुनाई पड़ा। ऐसा लगा, गोया लाल की मां कराह रही है। मै रबर हाथ में लिये दहलते दिल से खिड़की की ओर बढ़ा,

लाल के घर की ओर देखने के लिए। पर चारों ओर अधकार था, कुछ नहीं दिखाई पड़ा। कान लगाने पर कुछ सुनाई भी न पड़ा। सोचने लगा, भ्रम होगा। वह अगर कराहती होती तो एकाध आवाज और अवश्य सुनाई पड़ती। वह कराहने वाली औरत है भी नहीं। रामनाथ के मरने पर भी उस तरह नही घिघियाई थी, जैसे साधारण स्त्रियां ऐसे अवसरों पर तड़पा करती है।

मैं पुन. उसी की बात सोचने लगा। वह उस नालायक के लिए क्या नही करती थी। खिलौने की तरह, आराध्य की तरह, उसे दुलारती और सवारती फिरती थी, पर आह रे छोकरे! ...

"मां ा ा ा ा ा!"

फिर वही आवाज! जरूर जानकी रो रही है, वैसे ही जैसे कुर्बानी के पूर्व गाय रोये। जरूर वही विकल, व्यथित, विवश बिलख रही है। हाय री मा अभागिनी, वैसे ही पुकार रही है, जैसे वह पाजी गाकर, मचलकर, स्वर को खीचकर उसे पुकारता था।

अंधेरा धूमिल हुआ, फीका पड़ा, मिट चला, ऊषा पीली हुई, लाल हुई, अरुण रथ लेकर वहा—क्षितिज के उस छोर पर—आकर, पवित्र मन से, खड़ी हो गई। मुझे लाल के पत्र की याद आ गई।

"मां ा ा ा ा ा ा!"

मानो, लाल पुकार रहा था, मानो जानकी प्रतिध्वनि की तरह उसी पुकार को गा रही थी। मेरी छाती धक् धक् करने लगी। मैंने नौकर को पुकार कर कहा—

"देखो तो, लाल की मां क्या कर रही है?"

जब वह लौटकर आया तब मै —एक बार पुनः मेज और

मेजिनी के सामने खड़ा था। हाथ मे रबर लिये —उसी—उसी उद्देश्य से। उसने घबड़ाये स्वर में कहा—

"हुजूर, उनकी तो अजीब हालत है। घर में ताला पड़ा है और वह दरवाजे पर पाव पसारे हाथ मे कोई चिट्ठी लिये मुँह खोले, मरी बैठी है। हां, सरकार! विश्वास मानिये, वह मर गई है। सास बन्द है—आखे खुली।"

वृन्दावनलाल वर्मा

: १० :

शरणागत

(१)

रज्जब जब अपना रोजगार करके ललितपुर लौट रहा था, साथ मे स्त्री थी, और गांठ मे दो-तीन सौ की बड़ी रकम। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान! ललितपुर काफी दूर था, बसेरा कही न कही लेना था ही था, इसलिए उसने मडपुरा नामक गांव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी पत्नी को बुखार हो आया था, रकम पास मे थी और बैलगाड़ी किराये पर करने मे खर्चा ज्यादा पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहां? जाति छिपाने से काम नही चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों मे चांदी की बालिया डाले थी, और पाजामा पहने थी। इसके सिवा गांव के बहुत से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गाव के बहुत से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीद कर ले जा चुका था।

अपने व्यवहारियों से उसने रात भर के बसेरे के लायक स्थान की याचना की। किसी ने भी मंजूर न किया। इन लोगो ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और लुके-छिपे

मेजिनी के सामने खड़ा था। हाथ में रवर लिये —उसी—उसी उद्देश्य से। उसने घवड़ाये स्वर मे कहा—

"हुजूर, उनकी तो अजीव हालत है। घर में ताला पड़ा है और वह दरवाजे पर पांव पसारे हाथ में कोई चिट्ठी लिये मुँह खोले, मरी बैठी है। हां, सरकार! विश्वास मानिये, वह मर गई है। सांस वन्द है—आंखे खुली।"

वृन्दावनलाल वर्मा

: १० :

शरणागत

(१)

रज्जब जब अपना रोजगार करके ललितपुर लौट रहा था, साथ में स्त्री थी, और गांठ में दो-तीन सौ की बड़ी रकम। मार्ग बीहड था, और सुनसान! ललितपुर काफी दूर था, बसेरा कही न कही लेना था ही था, इसलिए उसने मडपुरा नामक गांव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी पत्नी को बुखार हो आया था, रकम पास में थी और बैलगाड़ी किराये पर करने मे खर्चा ज्यादा पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहां? जाति छिपाने से काम नहीं चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों मे चादी की बालियां डाले थी, और पाजामा पहने थी। इसके सिवा गांव के बहुत से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गांव के बहुत से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीद कर ले जा चुका था।

अपने व्यवहारियों से उसने रात भर के बसेरे के लायक स्थान की याचना की। किसी ने भी मंजूर न किया। इन लोगो ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और लुके-छिपे

बेचे थे। ठहराने में तुरन्त ही तरह-तरह की खबरें फैलतीं इसलिए सबों ने इनकार कर दिया।

गांव में एक गरीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी जमीन थी, जिसको किसान जोते हुए थे। निजका हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो-तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेनें मे ठाकुर को किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पडता था। छोटा-सा मकान था, परन्तु उसको गांववाले 'गढी' के आदर-व्यंजक शब्द से पुकारा करते थे, और ठाकुर को डरके मारे 'राजा' शब्द से सम्बोधन करते थे।

शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के दरवाजे पर अपनी ज्वर-ग्रस्त पत्नी को लेकर पहुँचा।

ठाकुर पौर में बैठा हुक्का पी रहा था। रज्जब ने बहार से ही सलाम करके कहा—"दाऊजू, एक बिनती है।"

ठाकुर ने बिना रत्ती-भर इधर-उधर हिले-डुले पूछा—"क्या?"

रज्जब बोला—"मै दूर से आ रहा हूं। बहुत थका हुआ हूं। मेरी औरत को जोर से बुखार आ गया है। जाड़े में बहार रहने से न जाने इसकी क्या हालत हो जायेगी। इसलिए रात-भर के लिए कही दो हाथ जगह दे दी जाय।"

"कौन लोग हो?" ठाकुर ने प्रश्न किया।

"हूं तो कसाई।" रज्जब ने सीधा उत्तर दिया। चहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहाट थी।

ठाकुर की बड़ी आखों में कठोरता छा गयी। बोला—"जानता है, यह किसका घर है? यहां तक आने की हिम्मत कैसे की तूने?"

रज्जब ने आशा-भरे स्वर में कहा—"यह राजा का घर है। इसीलिये शरण मे आया हूं!"

तुरन्त ठाकुर की आंखों की कठोरता गायब हो गयी। जरा नरम स्वर में बोला—"किसी ने तुमको बसेरा नही दिया?"

"नही महाराज!" रज्जब ने उत्तर दिया—"बहुत कोशिश की, परन्तु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नही हुआ।" और वह दरवाजे के बाहर ही एक कोने से चिपट कर बैठ गया। पीछे उसकी पत्नी कराहती, कांपती हुई गठरी-सी बनकर सिमट गयी।

ठाकुर ने कहा—"तुम अपनी चिलम लिये हो?"

"हां सरकार!" रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला—"तब भीतर आ जाओ, और तमाखू अपनी चिलम से पी लो। अपनी औरत को भी भीतर कर लो। हमारी पौर के एक कोने मे पड़े रहना।"

जब वे दोनों भीतर आ गये, ठाकुर ने पूछा—"तुम कब यहां से उठकर चले जाओगे?" जवाब मिला—"अधेरे में ही महाराज! खाने के लिये रोटियां बांधे हूं, इसलिये पकाने की जरूरत न पड़ेगी।"

"तुम्हारा नाम?"

"रज्जब।"

(२)

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा—"कहां से आ रहे हो?"

रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया।

"वहा किसलिए गये थे?"

"अपने रोजगार के लिए।"

"काम तो तुम्हारा वहुत बुरा है।"

"क्या करूं, पेट के लिए करना ही पड़ता है। परमात्मा ने जिसके लिये जो रोजगार मुकर्रर किया है, वही उसको करना पड़ता है।"

"क्या नफा हुआ ?" प्रश्न करने मे ठाकुर को जरा संकोच हुआ और प्रश्न का उत्तर देने मे रज्जव को उससे वढकर।

रज्जव ने जवाव दिया—"महाराज, पेट के लायक कुछ मिल गया है। यों ही।" ठाकुर ने इस पर कोई जिद नही की।

रज्जव ने कहा—"वड़े भोर उठ कर चला जाऊंगा। तबतक घरवाली की तवीयत भी अच्छी हो जायगी।"

इसके वाद दिन-भर के थके हुए पति-पत्नी सो गये। काफी रात गये कुछ लोगों ने एक वंधे इशारे से ठाकुर को वाहर वुलाया। एक फटी-सी रजाई ओढे ठाकुर वाहर निकल आया।

आगन्तुकों मे से एक ने धीरे से कहा—"दाऊजी, आज तो खाली हाथ लौटे हैं। कल संध्या का सगुन वैठा है।"

ठाकुर ने कहा—"आज जरूरत थी। खैर, कल देखा जायगा। क्या कोई उपाय किया था ?"

"हा" आगन्तुक बोला—"एक कसाई रुपये की मोट वांधे इसी ओर आया है। परन्तु हम लोग जरा देर मे पहुंचे। वह खिसक गया। कल देखेंगे जरा जल्दी।"

ठाकुर ने घृणा-सूचक स्वर मे कहा—"कसाई का पैसा न छुएंगे।"

"क्यों ?"

"वुरी कमाई है।"

"उसके रुपयो पर कसाई थोड़े ही लिखा है ?"

"परन्तु उसके व्यवसाय से वह रुपया दूषित हो गया है।"

"रुपया तो दूसरों का ही है। कसाई के हाथ मे आने से रुपया कसाई नहीं हुआ।"

"मेरा मन नहीं मानता, वह अशुद्ध है।"

"हम अपनी तलवार से उसको शुद्ध कर लेगें।"

ज्यादा बहस नही हुई। ठाकुर ने कुछ सोचकर अपने साथियो को बाहर-का-बाहर ही टाल दिया।

भीतर देखा, कसाई सो रहा था, और उसकी पत्नी भी। ठाकुर भी सो गया।

(३)

सबेरा हो गया, परन्तु रज्जब न जा सका। उसकी पत्नी का बुखार तो हल्का हो गया था, परन्तु शरीर-भर मे पीड़ा थी, और वह एक कदम भी नहीं चल सकती थी।

ठाकुर उसे वही ठहरा हुआ देखकर कुपित हो गया। रज्जब से बोला—"मैंने खूब मेहमान इकट्ठे किये हैं। गाव-भर थोड़ी देर मे तुम लोगों को मेरी पौर में टिका हुआ देखकर तरह-तरह की बकवास करेगा। तुम बाहर जाओ। इसी समय।"

रज्जब ने बहुत विनती की, परन्तु ठाकुर न माना। यद्यपि गांव-भर उसके दबदबे को मानता था, परन्तु अव्यक्त लोकमत का दबदबा उसके भी मन पर था। इसलिये रज्जब गांव के बाहर सपत्नीक एक पेड के नीचे जा बैठा और हिन्दूमात्र को मन-ही-मन मे कोसने लगा।

उसे आशा थी कि पहर-आधा-पहर मे उसकी पत्नी की तबीयत इतनी स्वस्थ हो जायगी कि वह पैदल यात्रा कर सकेगी। परन्तु ऐसा न हुआ, तब उसने एक गाड़ी किराये पर

कर लेने का निर्णय किया।

मुश्किल से एक चमार काफी किराया लेकर ललितपुर गाड़ी ले जाने के लिये राजी हुआ। इतने में दोपहर हो गयी। उसकी पत्नी को जोर का बुखार हो आया। वह जाड़े के मारे थरथर काप रही थी, इतनी कि रज्जव की हिम्मत उसी समय ले जाने की न पड़ी। गाड़ी में अधिक हवा लगने के भय से रज्जव ने उस समय तक के लिये यात्रा को स्थगित कर दिया, जव तक कि उस वेचारी की कम-से-कम कंपकंपी वन्द न हो जाय।

घंटे-डेढ-घंटे वाद उसकी कंपकंपी वन्द हो गयी, परन्तु ज्वर वहुत तेज़ हो गया। रज्जव ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डाल दिया, और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान वोला—"दिन-भर तो यहीं लगा दिया। अव जल्दी चलने को कहते हो!"

रज्जव ने मिठास के स्वर में उससे फिर जल्दी करने के लिये कहा।

वह वोला—"इतने किराये मे काम नहीं चल सकेगा। अपना रुपया वापस लो। मैं तो घर जाता हूं।"

रज्जव ने दांत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत होकर कहने लगा—"भाई, आफत सवके ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य को सहारा देता है, जानवर तो देते नहीं। तुम्हारे भी वाल-वच्चे है। कुछ दया के साथ काम लो।"

कसाई को दया पर व्याख्यान देते सुनकर गाड़ीवान को हंसी आ गयी।

उसको टस-से-मस न होता देख कर रज्जव ने और पैसे दिये। तव उसने गाड़ी हाकी।

(४)

पाच-छः मील चलने के बाद, सन्ध्या हो गयी। गांव कोई पास मे न था। रज्जब की गाड़ी धीरे-धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुखार में बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली। रकम सुरक्षित बंधी पड़ी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार के कारण अंटी का कुछ बोझ कम कर देना पड़ा है—और स्मरण हो आया गाड़ीवान का वह हठ, जिसके कारण उसको कुछ पैसे व्यर्थ ही और दे देने पडे थे। इससे गाड़ीवान पर क्रोध था, परन्तु उसके प्रकट करने की उस समय उसके मन मे इच्छा न थी।

बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप आरम्भ किया—

"गाव तो यहा से दूर मिलेगा।"

"बहुत दूर, वही ठहरेगे।"

"किसके यहां ?"

"किसी के यहां भी नही। पेड़ के नीचे। कल सवेरें ललितपुर चलेगे।"

"कल का फिर पैसा मांग उठना।"

"कैसे मांग उठूगा ? किराया ले चुका हूं। अब फिर कैसे, मांगूगा।"

"जैसे आज गांव मे हठ करके मांगा था। बेटा, ललितपुर होता, तो बतला देता !"

"क्या बतला देते ? क्या संत-मंत की गाड़ी में बैठना चाहते थे ?"

कर लेने का निर्णय किया।

मुश्किल से एक चमार काफी किराया लेकर ललितपुर गाड़ी ले जाने के लिये राजी हुआ। इतने मे दोपहर हो गयी। उसकी पत्नी को जोर का बुखार हो आया। वह जाड़े के मारे थरथर कांप रही थी, इतनी कि रज्जव की हिम्मत उसी समय ले जाने की न पड़ी। गाड़ी मे अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिये यात्रा को स्थगित कर दिया, जब तक कि उस बेचारी की कम-से-कम कंपकपी बन्द न हो जाय।

घंटे-डेढ-घटे वाद उसकी कंपकपी वन्द हो गयी, परन्तु ज्वर वहुत तेज हो गया। रज्जव ने अपनी पत्नी को गाड़ी मे डाल दिया, और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान वोला—"दिन-भर तो यही लगा दिया। अब जल्दी चलने को कहते हो!"

रज्जव ने मिठास के स्वर मे उससे फिर जल्दी करने के लिये कहा।

वह वोला—"इतने किराये मे काम नहीं चल सकेगा। अपना रुपया वापस लो। मै तो घर जाता हूं।"

रज्जब ने दात पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत होकर कहने लगा—"भाई, आफत सबके ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य को सहारा देता है, जानवर तो देते नही। तुम्हारे भी वाल-वच्चे हैं। कुछ दया के साथ काम लो।"

कसाई को दया पर व्याख्यान देते सुनकर गाड़ीवान को हंसी आ गयी।

उसको टस-से-मस न होता देख कर रज्जब ने और पैसे दिये। तव उसने गाड़ी हांकी।

(४)

पांच-छः मील चलने के बाद, सन्ध्या हो गयी। गांव कोई पास मे न था। रज्जब की गाड़ी धीरे-धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुखार मे बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली। रकम सुरक्षित बधी पडी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार के कारण अंटी का कुछ बोझ कम कर देना पड़ा है—और स्मरण हो आया गाड़ीवान का वह हठ, जिसके कारण उसको कुछ पैसे व्यर्थ ही और दे देने पड़े थे। इससे गाड़ीवान पर क्रोध था, परन्तु उसके प्रकट करने की उस समय उसके मन में इच्छा न थी।

बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप आरम्भ किया —

"गाव तो यहां से दूर मिलेगा।"

"बहुत दूर, वही ठहरेंगे।"

"किसके यहां ?"

"किसी के यहां भी नही। पेड़ के नीचे। कल सवेरें ललितपुर चलेंगे।"

"कल का फिर पैसा मांग उठना।"

"कैसे माग उठूगा ? किराया ले चुका हूं। अब फिर कैसे, मांगूगा।"

"जैसे आज गांव में हठ करके मांगा था। बेटा, ललितपुर होता, तो बतला देता !"

"क्या बतला देते ? क्या सेंत-मेत की गाड़ी मे बैठना चाहते थे ?"

"क्यों बे, क्या रुपये देकर भी सेत-मेत का बैठना कहलाता है? जानता है, मेरा नाम रज्जब है। अगर बीच में गड़बड़ करेगा, तो साले को यहीं छुरे से काट कर कही फेंक दूगा, और गाड़ी लेकर ललितपुर चल दूगा।"

रज्जव क्रोध को प्रकट नही करना चाहता था, परन्तु शायद अकारण वह भली भाति प्रकट हो गया।

गाड़ीवान ने इधर-उधर देखा, अंधेरा हो गया था। चारों ओर सुनसान था। आस-पास झाड़ी खड़ी थी। ऐसा जान पड़ता था, कही से कोई अब निकला, अब निकला। रज्जब की वात सुनकर उसकी हड्डी काप गयी। ऐसा जान पड़ा, मानो पसलियों को उसकी ठंडी छुरी छू रही हो।

गाड़ीवान चुपचाप बैलों को हाकने लगा। उसने सोचा—"गांव के आते ही गाड़ी छोड़कर नीचे खड़ा हो जाऊंगा, और हल्लागुल्ला करके गाववालों की मदद से अपना पीछा रज्जब से छुड़ाऊंगा। रुपये-पैसे भले ही वापस कर दूगा, परन्तु और आगे न जाऊंगा। कही सचमुच मार्ग मे मार न डाले!"

(५)

गाड़ी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठककर खड़े हो गये। रज्जब सामने न देख रहा था, इसलिये जरा कड़ककर गाड़ीवान से बोला—"क्यों बे बदमाश, सो गया क्या?"

अधिक कड़क के साथ सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुकड़ी में से किसी के कठोर कण्ठ से निकला—"खबरदार, जो आगे बढा!"

रज्जव ने सामने देखा कि चार-पाच आदमी बड़े-बड़े लट्ठ बांधकर न जाने कहा से आ गये है। उनमे से तुरन्त ही एक

ने बैलों की जुंआरी पर एक लट्ठ पटका और दो दायें-बायें आकर रज्जब-पर आक्रमण करने को तैयार हो गये।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला—"मालिक, मै तो गाड़ीवान हू। मुझे कोई सरोकार नही।"

"यह कौन है?" एक ने गरज कर पूछा।

गाड़ीवान की घिग्घी बंध गयी। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गांठ को एक हाथ से सभालते हुए बहुत ही विनम्र स्वर मे कहा—"मैं बहुत ही गरीब आदमी हूं। मेरे पास कुछ नही है। मेरी औरत गाड़ी मे बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिए।"

उन लोगों मे से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी। गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुह खुला। बोला—"महाराज, मुझको छोड़ दो। मैं तो किराये से गाड़ी लिये जा रहा हूं। गाठ में खाने के लिये तीन-चार आने पैसे ही है।"

"और यह कौन है? बतला।" उन लोगो मे से एक ने पूछा।

गाड़ीवान ने तुरन्त उत्तर दिया—"ललितपुर का एक कसाई।"

रज्जब के सिर पर जो लाठी उबारी गयी थी, वह वही रह गयी। लाठी वाले के मुह से निकला—"तुम कसाई हो? सच बतलाओ।"

"हां महाराज!" रज्जब ने सहसा उत्तर दिया—"मै बहुत गरीव हूं। हाथ जोड़ता हूं, मुझको मत सताओ। मेरी औरत बहुत बीमार है।"

औरत जोर से कराही।

लाठी वाले उस आदमी ने एक साथी से कान में कहा—"इसका नाम रज्जब है। छोड़ो, चले यहां से।"

उसने न माना, बोला—"इसका खोपड़ा चकनाचूर करो दाऊजू, यदि वैसे न माने तो। कसाई-असाई हम कुछ नही मानते।"

"छोड़ना ही पड़ेगा!" उसने कहा—"इस पर हाथ नहीं पसारेंगे और न इसका पैसा छुएगे।

दूसरा बोला—"क्या कसाई होने के डर से? दाऊजू, आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये है, मै देखता हूँ।" और वह तुरंत लाठी लेकर गाड़ी मे चढ गया। लाठी का एक सिरा रज्जब की छाती में अड़ाकर उसने तुरन्त रुपया-पैसा निकाल कर दे देने का हुक्म दिया। नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने जरा तीव्र स्वर मे कहा—"नीचे उतर आओ। उससे मत बोलो। उसकी औरत बीमार है।"

"हो, मेरी बला से!" गाड़ी मे चढ़े हुए लठैत ने उत्तर दिया—"मै कसाइयों की दवा हूँ।" और उसने रज्जब को फिर धमकी दी।

नीचे खड़े हुए व्यक्ति ने कहा—"खबरदार, जो उसे छुआ। नीचे उतरो, नही तो तुम्हारा सिर चूर किये देता हूँ। वह मेरी शरण में आया था।"

गाड़ीवान लठैत झख-सी मारकर नीचे उतर आया।

नीचे वाले व्यक्ति ने कहा—"सब लोग अपने-अपने घर जाओ। राहगीरों को तंग मत करो।" फिर गाड़ीवान से बोला—"जा रे, हांक ले जा गाड़ी। ठिकाने तक पहुचा आना, तब लोटना, नही तो अपनी खैर मत समझियो। और, तुम दोनों मे से किसी ने भी कभी इस वात की चर्चा कही की, तो भूसी की आग मे जला

कर खाक कर दूगा।"

गाड़ीवान गाड़ी लेकर बढ़ गया। उन लोगों में से जिस आदमी ने गाड़ी मे चढ कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, उसने क्षुब्ध स्वर में कहा—"दाऊजू, आगे से कभी आपके साथ न आऊँगा।"

दाऊजू ने कहा—"न आना। मै अकेला ही बहुत कर गुजरता हूँ। परन्तु बुन्देला शरणागत के साथ घात नहीं करता, इस बात को गाठ बांध लेना।"

इलाचन्द्र जोशी

: ११ :

मिस्त्री

श्रीमती जी की सिगर मशीन विगड़ गई थी और उसके बिना उन्हे दिन काटना दूभर हो रहा था। वे रोज मुझ से इस बात के लिए जवाब-तलब करके परेशान कर रही थी कि मै जल्दी उसे किसी मिस्त्री के हवाले करके ठीक क्यों नहीं करा लेता। इधर मै यह सोचा रहा था कि नियमित रूप से चलने वाली मशीन की खटर-खटर से छुट्टी पाने का जो मौका दैवयोग से आ पडा है, उसे जल्दी हाथ से क्यों जाने दिया जाय। परन्तु श्रीमती जी के रिमाइण्डरों के मारे भी तो नाको-दम था। मै फिर भी कुछ समय के लिये और टालता, पर अन्त मे यह नौबत यहाँ तक पहुंच गई कि श्रीमती जी ने मुझ से छुट्टी कर लेने का निश्चय कर लिया, और यह कह धमकी दी कि नन्हे को लेकर वह शीघ्र ही मायके चली जायेगी, और वही उसके लिये 'फ्राक' सीएंगी, तो मुझे अपना विचार बदलना पड़ा और मैंने मशीन को किसी मिस्त्री के पास ले जाने का इरादा कर लिया। पर मिस्त्री कहां मिलेगा, इस बात की मुझे भी जानकारी न थी। मशीन मैंने अपने जीवन मे प्रथम बार अपनी नवोढ़ा पत्नी

के अनुरोध से कुछ ही मास पूर्व खरीदी थी। अब तक मुझे इस बात का कुछ पता नहीं था कि उसका कौन पुर्जा कैसे खराब होता है और उसे ठीक कराने के लिये किस मिस्त्री के पास जाना होगा।

अपने एक तजुर्बेकार मित्र के आगे जब मैंने अपनी दिक्कत पेश की तब उन्होंने कहा कि वे एक मिस्त्री को जानते है, जो काम मे होशियार तो अवश्य है, पर है बड़ा आलसी। जब तक उसे अपने पास बुलाकर अपने सामने ही काम को न करवाया जाय, तब तक वह कुछ नही करता। उन्होंने दो-एक दिन के भीतर उसे मेरे पास भेजने का वचन दिया।

उस दिन रविवार था। मुझे आफिस जाना नही था। इसलिये यद्यपि दस बज चुके थे, मै अभी तक नहाया धोया नही था, और बड़ी फुरसत से, आराम के साथ, बाहर के कमरे में बैठा हुआ अखबार पढ रहा था। इतने में किसी ने बाहर से 'बाबू साहब' 'बाबू साहब' कह कर पुकारा। मैंने बरामदे मे जाकर देखना चाहा। गौर से देखने से मालूम होता था कि उसकी आयु चालीस से कम ही होगी, अधिक नहीं, पर सरसरी निगाह से देखने पर उसे कोई ६० से कम न बताता होगा। उसका मुँह एकदम सखा हुआ था। उसमे स्थान-स्थान पर इतनी झुर्रियां पड़ गई थी कि उन्हे गिनना असम्भव था। सिर के बाल आधे पक गये थे। आंखो मे वह चश्मा लगाये हुए था। एक फटी और वर्षो से पड़ी मैली धोती और उसी तरह के कुर्ते के साथ ऐनक लगाने से वह व्यक्ति विचित्र स्वांग का-सा दृश्य आंखों के आगे खड़ा कर

रहा था। हाथ में वह कुछ औजार लिये था।

मैंने पूछा—"किसे खोजते हो ?"

"आपकी कोई मशीन ठीक करनी है क्या ?"

"हां, चले आओ।"

उसे वाहर के कमरे मे बैठाकर मैंने अपने नौकर से मशीन ले आने के लिए कहा।

मशीन जव लाकर उसके पास रख दी गई, तो उसने एक वार परीक्षा की दृष्टि से सरसरी तौर पर देखा और देख कर कहा—'मशीन तो आपकी नई है, पर साहव, सिगर कम्पनी अव वह माल नही देती जो पहले दिया करती थी। क्या जमाना आया है! वाबू साहव, छोटे-छोटे तिजारती तो बेईमानी करते ही थे, पर अव वड़ी-वड़ी कम्पनियों की भी नीयत वदलने लगी है। कम्पनिया ही नहीं, वड़े-वड़े वकील, वैरिस्टर, जज, कमिश्नर सभी के स्वभाव वदल गये है। और जो दरिया-दिल लोग पहले दिखाई देते थे, वे अव कतई नही दिखाई देते। और वड़े आदमियों की औरते तो ऐसी कमनीयत और कंजूस होती जाती है कि उनसे मिलने पर गुस्सा आए विना नही रहता। वात असल मे यह होती है कि वे होती है छोटे घरो की और व्याही जाती है वड़े घरों में। उनके वाप ने—कभी पैसा देखा, न उनके वावा ने, इसलिये जव वे ससुराल जाती है तव नीयत वैसी-की-वैसी वनी रहती है। अभी मैं एडवोकेट साहव के यहां से आ रहा हूं। वड़ा भारी उनका वंगला है। वड़ा भारी कारोवार है, खूव कमाते है, पैसे की कोई कमी नही है। उनकी मैहरारू की सिंगर मशीन विगड़ गई थी। मैंने उसे घर ले जाकर ठीक किया, और कुछ

पुराने पुर्जों को निकालकर उनकी जगह नये पुर्जे छोड़कर उसे दुरुस्त कर दिया। उनकी नई मशीन भी शायद उससे अच्छी नही चलती होगी जैसी अब चलने लगी है। जब मैंने मजूरी मांगी तो कहने लगी, "जो पुराने पुर्जे तुमने इसमे से निकाले है, उन्हें जब तुम हमें वापिस करोगे तब मजूरी मिलेगी।" यह है बड़े घराने की औरतो की नीयत का हाल! सच बात तो यह है बाबू साहब, कि औरत जात ही तगदिल होती है।"

मैंने देखा, आदमी बड़ा बातूनी है। बातों के चक्कर मे डालकर यह व्यर्थ ही मेरा और अपना भी काफी समय नष्ट कर डालेगा। इसलिये बीच मे ही बात काटकर मैंने कहा—"अच्छा, यह तो देखो कि इस मशीन मे खराबी कहा पर आ गई है।"

"वह तो मै पहले ही देख चुका हूं बाबू साहब! किसी मशीन को देखते और छूते ही बता सकता हू कि उसका कौनसा पुर्जा खराब हुआ है। यह तो आपकी कपड़ा सीने की मशीन है, किसी फैक्टरी की बड़ी-से-बडी मशीन की जांच सिर्फ दो मिनट के लिये करने पर मैं बता सकता हूं कि कौन पुर्जा ढीला व टेढा हुआ है। मुझे तो ऐसा लगता है कि मै पेट से ही मशीनरी का काम सीख कर आया था। पर दिल्लगी देखिये, मै पैदा हुआ जौहरी के घर। अपने कुल में मिस्त्री का पेशा करनेवाला मै ही पहला आदमी हू।"

इस विचित्र व्यक्ति के जीवन के सम्बन्ध मे मेरी दिलचस्पी अवश्य बढ रही थी, पर साथ-ही-साथ मैं घबरा रहा था कि काम में व्यर्थ देरी हुई जाती है। मैंने काम की

ओर उसका ध्यान आर्कषित करने के इरादे से कहा—"तुम्हे मालूम हो गया कि मशीन कहां पर विगड़ी है ?"

"जी हां !" कहकर उसने मशीन के जुड़े हुए टुकड़े को खोलना शुरू कर दिया और खोलते हुए कहा—"एक बर्तन मे मिट्टी का तेल मंगाइए।" मैंने नौकर से कह दिया। वह एक शिलफची मे तेल ले आया। पुर्जो को खोलकर शिलफची मे डालते हुए उसने कहा—"मेरी तो यह इच्छा थी, बाबू साहव, कि विलायत जाकर हवाई जहाज का काम सीख आऊं। पर क्या वताया जाय, सिर्फ एक वात की वजह से वहां नही जा पाता। मैंने सुना है वहां अफीम नही मिलती और अफीम के विना एक दिन भी नही जी सकता।"

"अफीम की आदत तुम्हे कब से और कैसे पड गई ?"

उसने कहा—"पन्द्रह बरस से मै बराबर अफीम खाता आया हूं। कैसे इसकी मुझे लत पड़ गई मैं आप से क्या वताऊं, पर हां, इतना मैं आपसे जरूर कहूंगा कि इस लत ने मुझे तवाह कर दिया। पर इसे भी दोष देना ठीक बात नही, सच वात तो यह है कि मेरे पिछले जन्म के करम ही ऐसे रहे है, कि इस जन्म में यह नही जाना कि सुख किसे कहते हैं। यह जरूर है कि अफीम के नशे मे मै अपने दुखों को भुला रहा हूं। आपको मालूम होना चाहिये कि यह शाही नशा है और नशे की हालत में अफीमची लाट की परवाह नही करता। पर नशा आखिर नशा है। वह कुछ समय के लिए आदमी की मति वदल देता हे, वस। इसके अलावा दुख के जो कांटे मेरे कलेजे को छेदते रहे है, वे नशे से कहा तक दवाए जा सकते है।"

मैंने देखा कि वातूनी अफीमची तव तक शान्त न होगा,

जब तक अपने हृदय के मर्मोद्गार पूरी तरह से निकाल न ले। उसकी जीवन-कथा जानने की भी उत्सुकता मेरे मन में उत्पन्न हो गई थी। मैंने उसके जीवन के संबंध में दो-एक प्रश्न और किये। अपने सम्बन्ध मे मेरा जिज्ञासु-भाव देखकर वह ऐसा उत्साहित हो उठा कि आवेश मे आकर हाथ का रिंच जमीन पर रखकर मुझे राम-कहानी सुना चला।

"अपने कुल मे मै ही पहला आदमी हूं, जिसने मिस्त्री का पेशा अख्तियार किया है। मेरे बाप-दादा जौहरी थे। पिता-जी साल में छः महीने रियासतों मे चक्कर लगा कर जवाहरात बेचते थे, बाकी छः महीने घर बैठकर रागरंग में कमाये रुपयों को उड़ाते थे। उनके पास कितनी पूजी रही है, इसका ठीक अन्दाजा कोई न लगा सका। इस वारे मे लोग तरह-तरह की बाते किया करते थे। कोई कहता था कि उनके पास पन्द्रह लाख रुपये है और कोई कहता पन्द्रह हजार। मेरा तो इस समय यह ख्याल है कि दोनों ही बातें सच थीं। पर उस समय इस बात की कोई चिन्ता ही पैदा न हुई, कि मेरे बाप के पास कितना धन है। हम दो भाई थे, दोनों ही बड़े मजे से और ठाठ से रहते थे।"

"बाबूजी ने वहुत कोशिश की कि मै लिखना-पढ़ना सीखूं, पर मै कभी एक दिन के लिये भी किताबों मे जी न लगा सका। तीन मास्टर मुझे पढ़ाने आया करते थे, पर मै उन्हें इस बात का भरोसा देकर कि मेरे न पढ़ने पर भी उन लोगों की नौकरी बरकरार रहेगी और यह जानकर कि मेरी पढाई पर जोर देने से ही उनके बरख्वास्त होने का डर है,

उन्हे धता बताकर आवारा फिरता रहा। मेरा छोटा भाई बलदेव मुझसे पांच साल छोटा था। वह पढने-लिखने मे बड़ा तेज था। मेरी हरकतों से बाबूजी और मास्टर सभी तंग आ गए थे, पर बलदेव का झुकाव किताबों की ओर देखकर सबकी जान मे जान आई।"

"मैं छुटपन से ही गंजेड़ियों और भगेड़ियों के संग मे रह कर मौजों मे बहा करता था। बाबूजी मेरे चाल-चलन और रंग-ढंग से कैसे नाराज क्यों न रहे हों, पर उन्होंने कभी मेरे लिए किसी बात की कमी न होने दी। वे खुद एयाश तबीयत आदमी थे, इसलिये उन्होंने रुपये पैसे की परवाह कभी न की, और जब मैं जो चीज उनसे चाहता, वह मुझे जरूर मिल जाती। मेरी मां मेरे बचपन ही में मर चुकी थी, इसलिए बाबूजी मेरे मां-बाप दोनों ही थे।"

"पिताजी की पूजी भीतर-ही-भीतर किस कदर खोखली होती चली है, इस बात की मुझे कुछ खबर नहीं थी। अचानक एक दिन जब दिल की बीमारी से वे इस ससार से चल बसे, तो मेरे ऊपर वज्र का पहाड़ टूट पडा। मुझे जब मालूम हुआ कि बाबूजी के ऊपर कई हजार का कर्जा चढ़ा हुआ है और अपना कहने को उनके पास कई महीनों से कुछ भी नही रह गया था, उनकी दिल की बीमारी का कारण क्या था यह समझने में मुझे देर न लगी। पर अपने जीते-जी उन्होंने हम लोगों को जरा-सी भी खबर इस बात की न होने दी कि उन पर कैसी बीत रही है। शायद वे इस आशा में थे कि किसी मौके से वे अपनी हालत संभाल लेगे।"

"कुछ भी हो, अब सारे घर का भार पड़ा मेरे ऊपर। कुछ

समय तक तो मै सब रंग-ढंग देखकर ऐसा हक्का-बक्का रह गया कि मुझे विश्वास होने लगा कि मै पागल हो जाऊगा । पर बलदेव को मै भी जी-जान से चाहता था और मै नहीं चाहता था कि वह इस कच्ची उमर मे ही पढना-लिखना छोड़ नोन-तेल-लकड़ी की चिन्ता मे लग जाय। मैने कमर कसी और प्रण कर लिया कि जिस किसी भी उपाय से हो उसे बी० ए० तक पढ़ाऊंगा, बल्कि वकील बनाकर छोड़ूगा । कल-पुर्जे के काम में मुझे पहले से ही दिलचस्पी थी । मिस्त्रियो के साथ गाजा पीकर मैंने मोटर से लेकर छोटी-से-छोटी सभी कलों का काम थोड़ा-बहुत सीख लिया था । अब अच्छी तरह से सीखना शुरू कर दिया और निश्चय कर लिया कि इस पेशे मे सबसे बाजी मारूगा । भगवान् की कृपा से हुआ भी यही । जिसने एक बार मेरा काम देखा, उसने फिर कभी दूसरे मिस्त्री को न पूछा । शहर के सभी बड़े-बड़े साहबों और रईसों की मोटरे मुझ ही को ठीक करने के लिये मिलती थी । मै खुद आधा पेट खाकर वलदेव को अच्छा खाना खिलाता । (उसके मन के मुताबिक खाना न मिलने से वह फेंक दिया करता था ।) भरसक बढिया कपड़े उसके लिए खरीदता, किताबो और फीस वगैरह का खर्च तो लगा ही था ।"

"जव वह एण्ट्रेस पास करने के बाद इण्टरमीडियट की भी पढ़ाई खतम कर चुका तो उसने लखनऊ जाकर बी० ए० मे पढने का विचार किया । मैंने कई जोड़े बढिया-बढ़िया सूट सिलवाकर चमड़े का एक 'फर्स्टक्लास' सूटकेस, दो जोडे फैशनदार जूते, एक होल-ड.ल, बिस्तर का सव नया सामान खरीद कर और कितावो और पहले महीने की फीस के लिए

उन्हें धता वताकर आवारा फिरता रहा। मेरा छोटा भाई वलदेव मुझसे पांच साल छोटा था। वह पढने-लिखने में बड़ा तेज था। मेरी हरकतों से वाबूजी और मास्टर सभी तंग आ गए थे, पर वलदेव का झुकाव किताबों की ओर देखकर सवकी जान में जान आई।"

"मै छुटपन से ही गजेड़ियो और भंगेड़ियों के संग मे रह कर मौजों मे बहा करता था। वाबूजी मेरे चाल-चलन और रंग-ढंग से कैसे नाराज क्यों न रहे हों, पर उन्होंने कभी मेरे लिए किसी वात की कमी न होने दी। वे खुद एयाश तबीयत आदमी थे, इसलिये उन्होंने रुपये पैसे की परवाह कभी न की, और जव मै जो चीज उनसे चाहता, वह मुझे जरूर मिल जाती। मेरी मा मेरे बचपन ही मे मर चुकी थी, इसलिए बाबूजी मेरे मा-बाप दोनों ही थे।"

"पिताजी की पूजी भीतर-ही-भीतर किस कदर खोखली होती चली है, इस वात की मुझे कुछ खबर नही थी। अचानक एक दिन जब दिल की बीमारी से वे इस संसार से चल बसे, तो मेरे ऊपर वज्र का पहाड़ टूट पड़ा। मुझे जब मालूम हुआ कि बाबूजी के ऊपर कई हजार का कर्जा चढ़ा हुआ है और अपना कहने को उनके पास कई महीनों से कुछ भी नहीं रह गया था, उनकी दिल की बीमारी का कारण क्या था यह समझने में मुझे देर न लगी। पर अपने जीते-जी उन्होंने हम लोगों को जरा-सी भी खबर इस बात की न होने दी कि उन पर कैसी बीत रही है। शायद वे इस आशा में थे कि किसी मौके से वे अपनी हालत संभाल लेगे।"

"कुछ भी हो, अव सारे घर का भार पडा मेरे ऊपर। कुछ

"मैंने फौरन उसके लिए एक योग्य लड़की खोजने का काम शुरू कर दिया। बड़ी दौड़-धूप के बाद बनारस मे एक ऐसी लड़की का पता चला, जिसका रंग-रूप देख उसी दम मेरे मन मे यह बात समा गई कि दोनों की जोड़ी बहुत सुन्दर रहेगी। बड़ी धूम-धाम से मैंने उसका ब्याह किया। बहू जब आई तो मुझे ऐसा मालूम होने लगा, जैसे बरसों से उजड़ा हुआ मेरा घर बस गया।"

"बलदेव सचमुच बहू को देखकर निहाल हो गया था और उसे सुखी देखकर मेरा मन मारे आनन्द के उछल पडता था। बहू जब मुझे देखकर घूघट काढकर, सर नीचा करके खडी रहती तो मेरा जी चाहता कि उसके दोनो पैरों पर गिडगिड़ा पड़ू और उस साक्षात् लक्ष्मी माता से वरदान मागू कि मेरा यह सुख जन्म-जन्म तक इसी तरह बना रहे। पर पैरों पर पड़ने की हिम्मत न पड़ती।"

"हमारा शहर छोटा होने पर भी वहां वकीलों की तादाद इतनी बढी हुई थी कि वकालत का पेशा एकदम चौपट हो गया था। बलदेव की यह हालत थी कि वह महीने में ३०-४० रुपये भी नही कमा पाता था। इतने से उसके पान-सिगरेट का खर्च भी नही चलता था, पर मुझे इस बात का कोई दु.ख नही था और मै अपने प्यारे भाई और बहूरानी को भरसक सुखी रखने की पूरी कोशिश करता। मै दिन-रात खटता था और इतना कमा लेता था जितने से सारा कुटुम्ब बिना किसी चिन्ता के सुख से रह सके।"

"ब्याह होने के डेढ साल बाद ही बहूरानी ने एक लड़के को जन्म दिया। बडा प्यारा बच्चा था, बाबू साहब! उसका

करीब डेढ़ सौ रुपया उसके हवाले करके किसी भले आदमी के लडके के साथ उसे लखनऊ भेज दिया। तब से हर माह मुझे साठ या सत्तर रुपये उसके लिए भेजने पड़ते थे। मोटरों के अलावा मै और भी तरह-तरह की मशीनों का काम अपने हाथ मे लेने लगा, और किसी तरह मर-तरकर ज्यादा-से-ज्यादा रुपया कमाने की कोशिश करता हुआ बलदेव की पढाई का खर्च जुटाने में लगा रहता। बीच-बीच मे उसे इन साठ-सत्तर रुपयों के अलावा सौ-पच्चास रुपया और भी भेजना पड़ता। कभी वह लिखता कि किसी लड़के ने उधार माग लिये, फिर नही दिये, कभी लिखता कि इस महीने तक खास चीज की पढाई के लिये कुछ फीस और देनी पड़ेगी। पर मेरे पहचान वालों मे से जो लखनऊ आते जाते, उनसे पूछने पर वे कहते कि वह बड़े ठाठ से रहता है, और सैर-सपाटे में अपने साथियों के साथ रुपये उड़ाता रहता है, सोचता कि बुरा क्या है, यही तो बेचारे के मौज के दिन हैं। मैंने नशा-पानी एकदम कम कर दिया था, क्योंकि उसमें एक तो काम कम हो पाता था दूसरे बेकार का खर्च बढ जाता था। मै चाहता था कि अपने खाने-पीने और किराये के खर्च से जितना भी बचा पाऊ, वह सब बलदेव के लिये भेज दूं।"

"कुछ भी हो, किसी तरह करते-कराते बलदेव ने बी० ए० पास कर लिया, और इसके बाद वकालत के इम्तहान मे भी वह पास हो गया। जब वह लखनऊ की पढाई खतम करके घर वापस आया, तो मै मारे खुशी के फूला न समाया। इच्छा होती थी कि उसे प्यार से गले लगा लू, पर उसका ठाठ-बाट और अपने को फटेहाल देखकर हिम्मत नही पड़ती थी।"

"मैंने फौरन उसके लिए एक योग्य लड़की खोजने का काम शुरू कर दिया। बड़ी दौड़-धूप के बाद बनारस मे एक ऐसी लड़की का पता चला, जिसका रग-रूप देख उसी दम मेरे मन मे यह बात समा गई कि दोनो की जोडी बहुत सुन्दर रहेगी। बड़ी धूम-धाम से मैंने उसका ब्याह किया। बहू जब आई तो मुझे ऐसा मालूम होने लगा, जैसे वरसों से उजड़ा हुआ मेरा घर बस गया।"

"बलदेव सचमुच बहू को देखकर निहाल हो गया था और उसे सुखी देखकर मेरा मन मारे आनन्द के उछल पड़ता था। बहू जब मुझे देखकर घूघट काढकर, सर नीचा करके खड़ी रहती तो मेरा जी चाहता कि उसके दोनो पैरों पर गिड़गिड़ा पड़ूं और उस साक्षात् लक्ष्मी माता से वरदान मागू कि मेरा यह सुख जन्म-जन्म तक इसी तरह बना रहे। पर पैरों पर पड़ने की हिम्मत न पडती।"

"हमारा शहर छोटा होने पर भी वहां वकीलो की तादाद इतनी बढ़ी हुई थी कि वकालत का पेशा एकदम चौपट हो गया था। बलदेव की यह हालत थी कि वह महीने मे ३०-४० रुपये भी नही कमा पाता था। इतने से उसके पान-सिगरेट का खर्च भी नही चलता था, पर मुझे इस बात का कोई दु ख नही था और मै अपने प्यारे भाई और बहूरानी को भरसक सुखी रखने की पूरी कोशिश करता। मै दिन-रात खटता था और इतना कमा लेता था जितने से सारा कुटुम्ब बिना किसी चिन्ता के सुख से रह सके।"

"ब्याह होने के डेढ साल बाद ही बहूरानी ने एक लड़के को जन्म दिया। बड़ा प्यारा बच्चा था, बाबू साहब! उसका

नाम रखा सुखदेव। पैदा होने के कुछ ही महीने वाद वह मुझसे ऐसा हिल-मिल गया कि क्या वताऊ। मुझे देखते ही पलने पर उछल पडता था, और मेरे चुमकारने पर अपने दोनों होठों को खोलकर ताकता और मुस्करा कर खिलखिलाने की कोशिश करता और मुंह मे उंगली डालकर अपनी तोतली बोली मे न जाने प्यार की कौन-सी वात मुझसे करता। उसने मुझे अपने माया-जाल में ऐसा जकड़ लिया, वावू साहव, कि काम से मेरा जी हटने लगा, और चौबीस घण्टे उसी को गोद में रखने को जी चाहता था। पर काम न करूं तो घर वाले खाये क्या ? लेकिन विश्वास कीजिए, काम में मेरा बिल्कुल जी न लगता था, चाहे मै किसी से वात करता होऊ, चाहे कोई काम करता होऊं, उसी का मुस्कराना, खिलखिलाना, तुतलाना, मेरे मन को अनमाना-सा वनाये रहता। क्या बताऊं, भूत की तरह उसकी याद मेरे मन को हर घडी घेरे रहती। न जाने पूर्व-जन्म का कौनसा वैर साधने वह मेरे घर आया था।"

"जव काम मे मेरा जी न लगता था, तो यह वात मानी हुई समझ लीजिए कि मेरी आमदनी भी पहले से बहुत घट गई। अव मै इस वात की चिन्ता मे लगा कि वलदेव को कही नौकरी मिल जाय।"

"मैने सोचा, मैने इतने दिनो कमाया-धमाया है और उसे पाल पोसकर पढा-लिखाकर इस लायक वना दिया है कि वह कही नौकरी करके मेरी परवरिश करे। मै अव वुड्ढा हुआ जाता हूं, इतने दिनो जी तोड़कर मेहनत की, एडी-चोटी का पसीना एक किया, अव कब तक ! अव मं अपने प्यारे भैया

सुक्खू को लेकर उसे गोद मे खिलाकर आराम से रहना चाहता हूं।"

"पर बलदेव मे इनता बूता नही था कि वह अपने लिये खुद नौकरी ढूढता। हमारे शहर मे एक पादरी साहब थे। उनकी मोटर अक्सर खराब हो जाया करती थी और मैं अक्सर बिना कुछ मजदूरी लिये ठीक कर दिया करता था।"

"वह मुझ से खुश थे। मैंने सुन रखा था कि बहुत से बड़े-बड़े अग्रेज अफसर उनको बहुत मानते है। मैंने एक दिन जाकर उनके पाव पकड़ लिये और कहा—मै तब तक नही छोड़ूगा जब तक आप मेरा उद्धार न करेगे। उन्होने मेरी प्रार्थना सुनी और उनकी सिफारिश से लखनऊ मे किसी सरकारी दफ्तर मे बलदेव को नौकरी मिल गई। एक दिन मैंने लम्बी सास ली और बोरिया बिस्तर बांध कर हम लोग लखनऊ चल पड़े। मकबूलगंज के पास एक गली मे एक छोटा-सा मकान १५) किराये पर मिल गया।"

"मैंने सोचा था कि लखनऊ जाकर अपना कारोबार नये सिरे से जमाकर खूब जोरों से उसे चलाऊंगा, पर बलदेव की नौकरी और सुक्खू के माया-मोह ने मुझे ऐसा निकम्मा और आलसी बना दिया कि मुझसे अब सुक्खू को खिलाने और गांजा और चरस की दम लगाने के और कोई काम होता ही न था। बलदेव कुछ महीने तक मुझे पांच रुपये माहवार देता रहा, बाकी सब रुपये बहू के हाथ मे रख देता था और बहू हिसाब से खर्च करती थी। इतनी रकम से मेरे नशे-पानी का खर्च नही चलता था। पर मै घर से आते समय दो-तीन सौ रुपये एक पोटली में बांधकर छिपा ले आया था। उसमें से

भी जरूरत पड़ने पर निकाल लेता था।"

"सुक्खू ज्यों-ज्यों महीने-महीने बड़ा होता गया, त्यों-त्यों मुझे वह अपने प्यार के माया-जाल मे उलझाता गया। जब वह अपनी मा के पास होता तो वही से 'दाऊ-दाऊ' कहकर मुझे आवाज देता और मेरे चुमकारने पर वात-वात में उसका वह खिलखिलाना ! अभी तक उसके खिलखिलाने की आवाज मेरे कानों में गूजती रहती है। बाबू साहब, आप सच मानिए !"

"जब वह रोता तो उसकी मा उसे मेरे पास लाकर छोड़ जाती। मेरे पास आकर वह भी शान्त हो जाता और सिसकते हुए अपनी मा की शिकायत करता—"अम्मां वडी तलाव है दाऊ ! उससे मत बोलना !" मै उसका मुह चूमते हुए उसे दिलासा देता, उसे बाहर ले जाकर घुमा लाता और एक आध सस्ता खिलौना खरीद कर उसके हाथ में दे देता। उसे गोद मे लेते ही मुझे ऐसा मालूम होने लगा, जैसे मैंने यशोदा के हाथ से बाल-गोपाल को छीन लिया है और मै अपने को सातवें स्वर्ग मे पहुंचा हुआ पाता। कृष्ण की बाल-लीला की फिल्म मैंने एक देखी थी। उसकी याद मुझे आ जाती—खास कर जिस वक्त मै चरस के नशे में या अफीम की पीनक मे होता।"

"एक दिन मैंने चरस ज्यादा पी लिया था। सुक्खू को मै बाहर टहलाने के लिये ले गया था। एक खिलौना खरीदकर उसके हाथ में देकर जब मै उसे घर लाया, तो उसे गोद में लेकर जीने के ऊपर चढने के समय मेरा सिर कुछ चकराने-सा लगा और हाथ-पाव कुछ कांपने-से लगे। पल-भर के लिये मै कुछ

अनमना-सा हुआ हूंगा। मेरा हाथ कुछ ढीला पड़ा और एका-एक मैंने देखा कि सुक्खू मेरे हाथ से गिर कर ऊपर की सीढी से नीचे की सीढी पर आ पड़ा। मै हड़बड़ाकर ज्यो ही उसे पकड़ने लगा तो मेरे पांव लड़खडाये और मै उसे पकड़कर दो सीढी और नीचे गिरा। उसके नीचे सीढ़ी नही थी। उसकी मा ऊपर से दौड़ी चली आई। सुक्खू की नाक से बुरी तरह से खून बह रहा था, और उसके घुटनो में भी चोट आई थी। वह बिलख-बिलख कर रो रहा था। उसका हाल देखकर मेरा कलेजा फटा जा रहा था, पर उसकी मां ने आते ही मुझे ऐसे बे-भाव की गालिया देनी शुरू की कि मैं मिट्टी मे गड़ा था। कहने लगी—"इस कलमुहे अफीमची का सत्यानाश हो, जिसे न अपनी सुध है न बच्चे की। निखट्ट के करने को न कोई काम है न काज, साडों की तरह अलमस्त बना फिरता है। मैं आज ही उनसे कह दूगी कि मै उसके साथ नही रह सकती, मै मायके चली जाऊगी।" उस दिन तक उस ने मेरे सामने कभी एक बात भी मुंह से न निकाली थी और हमेशा मुझसे परदा करती रही थी, पर उस दिन मौका ही ऐसा आ पड़ा कि जो बात इतने दिनो तक उसने मन मे छिपा रखी थी, वह भी निकल पडी।"

"उस दिन मुझ पर दिन भर कैसी बीती, यह भगवान् ही जानते है। शाम को जब बलदेव घर आया तब सुक्खू की मां ने उससे सब बाते कह दी। वह मुझ पर बुरी तरह बिगडा और डांट बताते हुए उसने कहा—"तुम आज ही मेरे घर से चले जाओ। मै तुम्हे अब एक दिन के लिये भी अपने यहा नही रख सकता।" सुक्खू की मां ने मुझसे पहले ही कह दिया

था, पर मैंने उसकी वात नहीं सुनी और उसका यह नतीजा हुआ। तुम जहां चाहे रह सकते हो, पर मेरे यहा तुम्हारे लिये जगह नही। जहां रहोगे वहां ५) माहवार भेज दिया करूगा।"

"मुझे जैसे काठ मार गया हो। वहुत देर तक घुटनों के नीचे मुह छिपा कर वैठा रहा। इसके वाद एकाएक उठ खड़ा हुआ और वाहर चला आया। सुक्खू ने ऊपर से पुकार कर कहा—"दाऊ मै भी तुम्हारे साथ चलूंगा।" उसे कोई गहरी चोट नही आई थी और वह चगा हो गया था। मैंने एक वार उसकी ओर देखा। मुझे रुलाई आ रही थी। आखे पोछ कर विना कुछ किसी से कहे मै वहां से चला आया।"

"दो-चार दिन धर्मशाला मे पड़ा रहा। उसके वाद गंजेड़ियों का एक अड्डा ढूढ़ कर उनके पास चला आया। गंजेड़ियों मे यह वात होती है कि उनमे आपस में वहुत जल्दी प्रेम हो जाता है, वे एक-दूसरे के दुख-सुख के साथी वन जाते हैं। उन लोगों ने एक कच्चे मकान मे मेरे पड़े रहने का उपाय कर दिया। मेरे पास जो रुपये वचे थे, उन्ही को सहेज-सहेज कर खर्च करने लगा। अगर गांजे तक की वात रह जाती तो कोई हर्ज नही था, पर अफीम की लत ने ऐसा जोर मारा कि मैं चौबीस घण्टे पीनक मे रहने लगा। खाना वाजार से ही लेकर खाता था। कभी अधपेट खाता, कभी विना खाये ही पड़ा रहता। सुक्खू सव समय ख्याल मे मेरी आंखों के आगे खड़ा मुस्कराता रहता। एक पल के लिए भी मै उसे भूल न पाता था। वीच-वीच में हिम्मत वांधकर उस गली से होकर जाता था, जहां वलदेव रहता था, सुक्खू को एक वार देखने

की इच्छा से। सिर्फ एक दिन कोठे पर वह अपनी मां के साथ दिखाई दिया। मुझे देखते ही उसने चिल्लाना शुरू किया—'दाऊ दाऊ !' मैंने एक बार लपक कर उसकी ओर देखा और विना कुछ बोले भाग कर चला गया।"

"एक दिन इसी तरह मै उस गली से होकर जा रहा था—इसी आशा से कि सुक्खू को एक बार देख लू। जब मकान के पास पहुंचा तो मैंने देखा कि बलदेव कोठे के मकान के पास खड़ा है। वह बहुत उदास दिखाई देता था। उसे देखकर मैंने तेजी से कदम बढ़ाए। मै आगे निकल जाना चाहता था, पर उसने ऊपर से पुकारा—"भैया !" पहले मैंने सोचा, मेरे कानों को धोका हुआ है। पर जब मैंने उसकी ओर देखा तो वह सचमुच हाथ के इशारे से बुला रहा था। मै घबराया हुआ सा उसके मकान की ओर लौटा। मेरे मन में शंका हो गई थी कि मामला जरूर कुछ गड़बड़ है। भीतर जाकर मैंने पूछा—"कहो कुशल तो है ? आज क्या दफ्तर मे छुट्टी है ?"

"उसने बड़ी उदासी से धीमी आवाज मे कहा—"अब पूरी छुट्टी मिल गई है। जगह की कमी के कारण हमारे दफ्तर से आठ-दस आदमी अलग कर दिये गए है। मै भी अलग हो गया हूं।"

"मै कुछ देर तक उसके मुह की ओर ताकता रहा। मेरे, सिर पर गाज-सी गिर पड़ी। उसने कहा—"इधर दो दिन से सुक्खू को भी बुखार आया हुआ है। वह हर समय 'दाऊ दाऊ !' चिल्लाया करता है जरा उसके पास हो जाओ।" मुझे चक्कर आने लगा—ठीक उसी दिन की तरह जिस दिन सुक्खू को चोट आई थी। किसी तरह मै अपने को संभालकर

से मेरे मन मे एक सूझ पैदा हुई। अपनी गठरी से दो-एक औजार निकालकर मैं इक्के और तांगे के एक अड्डे पर चला गया, और वहां सस्ते रेट पर मैंने घोड़ों की नाल बांधने का काम शुरू कर दिया। मै देख चुका था कि बलदेव के पास अपन खाने को पैसा नही रह गया था। सुक्खू की मां ने जरूर ही कुछ पैसे बचाये होंगे, पर यह जानी हुई बात थी कि उससे उस सकट की हालत मे भी पैसा निकालना मुश्किल था। औरत की जात का यह खास गुण है, बाबू साहब! खैर नौ वजे रात तक काम करके मैंने दो-ढाई रुपये कमा लिये। इसी तरह तीन-चार दिन तक मै घोड़ों की नाल बांध कर दवा का खर्च निकालता रहा। जो पैसे वचा पाता उनसे सुक्खू के लिए वढिया-बढिया खिलौने उसके पलंग पर सजा कर रख देता। वह बुखार में छटपटाने पर भी मेरे हाथ में खिलौने देखकर मुस्करा देता, और मुझे प्यार करने के लिए उतावला हो उठता। मेरा एक चरसिया साथी भी मिस्त्री का काम करता था। उसकी कोशिश से मुझे कपड़े की मशीनों का ठीक करने का काम भी मिलने लगा। मै वह काम भी करता और खाली होने पर घोड़ों की नाल भी बांधता। अफीम मैंने वहुत कम कर दी और दिन-रात काम की धुन मे रहने लगा।"

"पर सुक्खू की तबीयत अच्छी नही हो रही थी। वह छटपटाते हुए कहता—"दाऊ, सिर मे दर्द होता है, अच्छा कर दो!" उफ! क्या कहू, बाबू साहब! अपना सिर फाड़ कर भी उसका दर्द अच्छा कर सकता तो मै जरूर वैसा ही करता। सभी तरह के उपाय किये पर सभी व्यर्थ हो गये।"

मिस्त्री की आंखों से टपटप आंसू गिर रहे थे। मै स्तब्ध

होकर यह करुण-कहानी सुन रहा था। मैंने पूछा—"तुम्हारे भाई का अब क्या हाल है ?"

उसने कहा—"मैंने फिर उन्ही पादरी साहब के पैरों पर गिड़गिड़ाकर उन्हे अपना सारा हाल कह सुनाया। उनकी कोशिश से बलदेव को फिर दफ्तर में नौकरी मिल गई है, पर मै अब उन लोगों के साथ नही रहता। लेकिन मुझे यह सोच कर हंसी आती है कि एक दिन मैंने मशीन-वशीन का काम छोड़ कर आराम से रहने का विचार कर लिया था। तब मै क्या जानता था कि जिन्दगी भर मशीनों के चक्कर से मेरा पिण्ड छूटने का नही !" कहकर वह फिर रिंच पकड़कर मेरी सिगर मशीन के रहे-सहे पुर्जो को अत्यंत निर्ममता से उखाड़-उखाड़कर मिट्टी के तेल वाली शिलफची में डालता गया।

भगवती प्रसाद वाजपेयी

: १२ :

मिठाईवाला

बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता—"बच्चों को बहलाने वाला, खिलौने वाला।"

इस अधूरे वाक्य को वह ऐसे विचित्र, किन्तु मादक मधुर ढंग से गाकर कहता कि सुनने वाले एक बार अस्थिर हो उठते। उसके स्नेहाभिषिक्त कण्ठ से फूटा हुआ उपर्युक्त गान सुनकर निकट के मकानों में हल-चल मच जाती। छोटे-छोटे बच्चों को अपनी गोद में लिये हुए युवतियां चिकों को उठाकर छज्जों पर से नीचे झांकने लगती। गलियों और उनके अन्तर्व्यापी छोटे-छोटे उद्यानों मे खेलते और इठलाते हुए बच्चों का झुण्ड उसे घेर लेता। और तब वह खिलौने वाला वही कही बैठ कर खिलौनों की पेटी खोल देता।

बच्चे खिलौने देखकर पुलकित हो उठते। वे पैसे लाकर खिलौनों का मोल-भाव करने लगते। पूछते—"इछका दाम क्या है, औल इछका, औल इछका?" खिलौनेवाला बच्चों को देखता, उनकी नन्हीं-नन्ही अगुलियों और हथेलियों से पैसे ले लेता और बच्चों के इच्छानुसार उन्हे खिलौने दे देता। खिलौने लेकर फिर वच्चे उछलने-कूदने लगते और फिर खिलौने वाला उसी प्रकार

गाकर चल देता—"वच्चों को वहलाने वाला खिलौने वाला।" सागर की हिलोर की भांति उसका वह मादक गान गली भर के मकानों मे, इस ओर से उस ओर तक, लहरता हुआ पहुंचता और खिलौनेवाला आगे वढ़ जाता।

राय विजयवहादुर के वच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर आये। वे दो वच्चे थे—चुन्नू और मुन्नू। चुन्नू जव खिलौना ले आया तो बोला—"मेरा घोला कैछा छुन्दल ऐ!"

मुन्नू वोला—"और देखो मेला आती कैछा छुन्दल ऐ!"

दोनों अपने हाथी-घोड़े लेकर घर-भर में उछलने लगे। इन वच्चों की मा रोहिणी कुछ देर तक खड़े-खड़े उनका खेल निरखती रही। अन्त में दोनों वच्चों को वुलाकर उसने पूछा—"अरे ओ चुन्नू-मुन्नू, ये खिलौने तुमने कितने में लिये है?"

मुन्नू बोला—"दो पैंछे मे खिलौनेवाला दे गआ ऐ!"

रोहिणी सोचने लगी—इतने सस्ते कैसे दे गया है?

कैसे दे गया है, यह तो वही जाने। लेकिन दे तो गया ही है, इतना तो निश्चय है।

जरा-सी बात ठहरी। रोहिणी अपने काम मे लग गई। फिर कभी उसे इस पर विचार करने की आवश्यकता भला क्यों पड़ती।

: २ :

छै महीने वाद—

नगर-भर मे दो-ही चार दिनों में एक मुरलीवाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे—भाई वाह! मुरली वजाने में यह एक ही उस्ताद है। मुरली बजाकर, गाना सुनाकर, वह मुरली वेचता भी है। सो भी दो-दो पैसे में। भला इसमे क्या

मिलता होगा। मेहनत भी तो न आती होगी।

एक व्यक्ति ने पूछ लिया—"कैसा है वह मुरलीवाला, मैंने तो उसे नही देखा।"

उत्तर मिला—"उमर तो उसकी अभी अधिक न होगी, यही तीस-बत्तीस का होगा। दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकानेरी रंगीन साफा बांधता है।"

"वही तो नही, जो पहले खिलौने बेचता था ?"

"हां जो आकार-प्रकार तुमने बतलाया, उसी प्रकार का वह भीं था ?"

"तो वही होगा। पर भई, है वह एक ही उस्ताद।"

प्रतिदिन इसी प्रकार उस मुरली वाले की चर्चा होती। प्रतिदिन नगर की प्रत्येक गली में उसका मादक मृदुल स्वर सुनाई पड़ता—"बच्चों को बहलानेवाला मुरलिया वाला!"

रोहिणी ने भी मुरलीवाले का यह स्वर सुना। तुरन्त ही उसे खिलौनेवाले का स्मरण हो आया। उसने मन-ही-मन कहा—खिलौनेवाला भी इसी तरह गा गाकर खिलौने बेचा करता था।

रोहिणी उठकर अपने पति विजयबाबू के पास गई, बोली—"जरा उस मुरलीवाले को बुलाओ तो, चुन्नू-मुन्नू के लिए ले लू। क्या जाने यह फिर इधर आवे, न आवे। वे भी, जान पड़ता है, पार्क में खेलने निकल गये है।"

विजयबावू एक समाचार-पत्र पढ रहे थे। उसी तरह उसे लिए हुए वे दरवाजे पर आकर मुरलीवाले से बोले—"क्यों भाई किस तरह देते हो मुरली ?"

किसी की टोपी गली मे गिर पड़ी। किसी का जूता पार्क में ही

छूट गया और किसी की सुथनी (पायजामा) ही ढीली होकर लटक आई। इस तरह दौड़ते-हांफते हुए वच्चो का झुण्ड आ पहुंचा। एक स्वर से सव वोल उठे—"अम वी लेंदे मुल्ली, औल अम वी लेदे मुल्ली।"

मुरलीवाला हर्ष-गद्गद् हो उठा—"सवको देंगे भैया, जरा रुको, जरा ठहरो, एक-एक को लेने दो। अभी इतनी जल्दी हम कही लौट थोड़े ही जायेगें। वेचने तो आये ही हैं। और हैं भी इस समय मेरे पास एक दो नही, पूरी सत्तावन ··· हां वावूजी, क्या पूछा था आपने, कितने में दी? ···· दी तो वैसे तीन-तीन पैसे के हिसाव से है, पर आपको दो-दो पैसे में ही दे दूगा।"

विजयवावू भीतर-वाहर दोनों रूपों मे मुसकरा दिये। मन ही-मन कहने लगे—कैसा ठग है। देता सव को इसी भाव से है, पर मुझ पर उलटा एहसान लाद रहा है। फिर—"तुम लोगों की झूठ वोलने की आदत होती है। देते होगे सभी को दो-दो पैसे में पर एहसान का वोझ मेरे ऊपर लाद रहे हो।"

मुरलीवाला एकदम अप्रतिभ हो उठा। वोला—"आपको क्या पता वावूजी कि इनकी असली लागत क्या है। यह तो ग्राहकों का दस्तूर होता है कि दूकानदार चाहे हानि ही उठाकर चीज क्यों न वेचे, पर ग्राहक यही समझते हैं—दूकानदार मुझे लूट रहा है। ····आप भला काहे को विश्वास करेंगे। लेकिन सच पूछिये तो वावूजी, इनका असली दाम दो ही पैसे है। आप कही से भी दो-दो पैसे मे ये मुरलियां नही पा सकते। मैंने तो पूरी एक हजार वनवाई थीं, तव मुझे इस भाव पड़ी है।"

विजयवावू वोले—"अच्छा-अच्छा, मुझे ज्यादा वक्त नही है, जल्दी से दो ठो निकाल दो।"

दो मुरलियां लेकर विजयबाबू फिर मकान के भीतर पहुंच गये ।

मुरलीवाला देर तक बच्चों के झुण्ड मे मुरलियां बेचता रहा। उसके पास कई रंग की मुरलियां थी । बच्चे जो रंग पसन्द करते, मुरलीवाला उसी रग की मुरली निकाल देता ।

"यह बड़ी अच्छी मुरली है, तुम यही ले लो बाबू, राजाबाबू, तुम्हारे लायक तो बस यह है । . . हा भैये, तुमको वही देगे । यह लो. . . . तुमको वैसी न चाहिये, ऐसी चाहिये ?—यह नारंगी रंग की एक ?—अच्छा यही लो । . पैसे नही है ? अच्छा अम्मा से पैसे ले आओ । मै अभी बैठा हूं ।. . .तुम ले आए पैसे ?. . . अच्छा, यह लो तुम्हारे लिये मैने पहले ही से निकाल रक्खी थी।. . तुमको पैसे नही मिले ! तुमने अम्मा से ठीक तरह से न मागे होंगे ? धोती पकड़ के, पैरों मे लिपट के, अम्मा से पैसे मांगे जाते हैं, बाबू . . . हा फिर जाओ । अब की बार मिल जायेंगे । . . दुअन्नी है ? तो क्या हुआ, ये छै पैसे वापस लो । ठीक हो गया न हिसाव ? . . मिल गये पैसे ! देखो, मैने कैसी तरकीब बताई ! अच्छा, अव तो किसी को नही लेना है?—सब ले चुके ? तुम्हारी मां के पास पैसे नही है ! अच्छा, तुम भी यह लो ।. . . अच्छा, तो अव मैं चलता हूं ।"

इस तरह मुरलीवाला फिर आगे बढ गया ।

: ३ :

आज अपने मकान मे बैठी हुई रोहणी मुरलीवाले की सारी वाते सुनती रही । आज भी उसने अनुभव किया, वच्चों के साथ इतने प्यार से बातें करनेवाला पहले कभी नही आया—फिर, वह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है और आदमी कैसा भला जान

पड़ता है ! समय की बात है, जो बेचारे इस तरह मारा-मारा फिरता है। पेट जो कराये सो थोड़ा।

इसी समय मुरलीवाले का क्षीण स्वर निकट की दूसरी गली से सुनाई पड़ा---बच्चों को बहलानेवाला, मुरलीवाला !

रोहिणी इसे सुनकर मन-ही-मन कहने लगी---"स्वर कैसा मीठा है इसका !"

बहुत दिनो तक रोहिणी को मुरलीवाले का यह मीठा स्वर और उसकी बच्चों के प्रति स्नेह-सिक्त बातें याद आती रही। महीने-के-महीने आये और चले गये, पर मुरलीवाला न आया। फिर धीरे-धीरे उसकी स्मृति क्षीण होती गई।

: ४ :

आठ मास बाद---

सरदी के दिन थे। रोहिणी स्नान करके अपने मकान की छत पर चढ़कर आजानुविलम्बित केश राशि सुखा रही थी। इसी समय नीचे की गली मे सुनाई पड़ा---बच्चो को बहलाने-वाला, मिठाईवाला।

मिठाईवाला का यह स्वर परिचत था, झट से रोहिणी नीचे उतर आई। इस समय उसके पति मकान में नही थे। हा, उसकी वृद्धा दादी थी। रोहिणी उनके निकट आकर बोली---"दादी, चुन्नू के लिये मिठाई लेनी है। जरा कमरे मे चलकर ठहराओ तो। मै उधर कैसे जाऊं, कोई आता न हो। जरा हटकर मै भी चिक की ओट मे बैठी रहूंगी।"

दादी उठकर कमरे मे आकर बोली---"ए मिठाईवाले, इधर आना।"

मिठाईवाला निकट आ गया। बोला---" मां, कितनी मिठाई

दूं ? नयी तरह की मिठाइया है, रंग-बिरंगी, कुछ-कुछ खट्टी कुछ-कुछ मीठी और जायकेदार। वड़ी देर तक मुह मे टिकती है। जल्दी नही घुलती। बच्चे बड़े चाव से चूसते हैं। इन गुणों के सिवा ये खांसी को भी दूर करती है। कितनी दू ? चपटी, गोल और पहलदार गोलियां हैं। पैसे की सोलह देता हू।"

दादी बोली—"सोलह तो बहुत कम होती है, भला पच्चीस तो देते।"

मिठाईवाला—"नही दादी, अधिक नही दे सकता। इतनी भी कैसे देता हूं, यह अब मै आपको क्या . . .। खैर, मै अधिक तो न दे सकूगा।"

रोहिणी दादी के पास ही बैठी थी। बोली—"दादी, फिर भी काफी सस्ती दे रहा है, चार पैसे की ले लो। ये पैसे रहे।"

मिठाईवाला मिठाइयां गिनने लगा।

"तो चार पैसे की दे दो। अच्छा पचीस न सही, बीस ही दो। अरे हां, मै बूढी हुई, मोल-भाव मुझे अब ज्यादा करना भी नही आता।"—कहते हुए दादी के पोपले मुह की जरा-सी मुसकराहट भी फूट निकली।

रोहिणी ने दादी से कहा—"दादी इससे पूछो, तुम इस शहर मे कभी और भी आये थे, या पहली ही बार आये हो। यहा के निवासी तो तुम हो नही।"

दादी ने इस कथन को दोहराने की चेष्टा की ही थी कि मिठाईवाले ने उत्तर दिया, "पहली बार नहीं, और भी कई बार आ चुका हूं।"

रोहिणी चिक की आड़ ही से बोली—"पहले यही मिठाई बेचते हुए आये थे या और कोई चीज लेकर ?"

मिठाईवाला हर्ष, संशय और विस्मयादि भावों से डबकर बोला—"इससे पहले मुरली लेकर आया था; और उससे भी पहले खिलौने लेकर।"

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उससे और भी कुछ बाते पूछने के लिए अस्थिर-अधीर हो उठी। वह बोली—"इन व्यवसायों में भला तुम्हे क्या मिलता होगा?"

वह बोला—"मिलता तो क्या है, यही खाने भर को मिल जाता है। कभी नही भी मिलता है। पर हां, सन्तोष और धीरज और कभी-कभी असीम सुख जरूर मिलता है। और यही मै चाहता भी हू।"

"सो कैसे? वह भी बताओ।"

"अब व्यर्थ में उन बातो की चर्चा क्या करूं। उन्हे आप जाने ही दें। उन बातों को सुनकर आपको दु:ख होगा।"

"जब इतना बताया है, तब और भी बता दो। मै बहुत उत्सुक हूं। तुम्हारा हर्जा न होगा। और भी मिठाई मैं ले लूंगी।"

अतिशय गम्भीरता के साथ मिठाई वाले ने कहा—

"मै भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान, व्यवसाय, गाडी-घोडे, नौकर-चाकर सभी कुछ था। स्त्री थी, छोटे-छोटे दो बच्चे भी थे। मेरा वह सोने का संसार था। बाहर सम्पत्ति का वैभव था, भीतर सांसारिक सुख था। स्त्री, सुन्दर थी, मेरी प्राण थी। बच्चे ऐसे सुन्दर थे, जैसे सोने के सजीव खिलौने। उनकी अठखेलियों के मारे घर में कोलाहल मचा रहता था—समय की गति—विधाता की लीला! अब कोई नही है। दादी, प्राण निकाले नहीं निकले। इसीलिये अपने उन बच्चों की खोज में निकला हूं। वे सब अन्त मे होंगे तो

यही कही। आखिर कही-न-कही तो जन्मे ही होंगे। उसी तरह रहता, तो घुल-घुल कर मरता। इस तरह सुख-संतोष के साथ मरूंगा। इस तरह के जीवन मे कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक सी मिल जाती है। ऐसा जान पडता है, जैसे वे इन्ही में उछल-उछल कर हस-हंस कर खेल रहे है। पैसों की कमी थोडे ही है। आपकी दया से पैसे काफी है। जो नही हैं, इस तरह उसीको पा जाता हूं।"

रोहिणी ने अब मिठाईवाले की ओर देखा। देखा---उसकी आंखें आंसुओं से तर है।

इसी समय चुन्नू-मुन्नू आ गये। रोहिणी से लिपट कर, उसका अंचल पकड़ बोले---"अम्मा, मिठाई।"

"मुझसे लो।"---कहकर तत्काल कागज की दो पुड़ियों में मिठाइयां भरकर मिठाईवाले ने चुन्नू-मुन्नू को दे दी।

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेंक दिये।

मिठाईवाले ने पेटी उठाई और कहा---"अब इस बार ये पैसे न लूगा।"

दादी बोली---"अरे, अरे, न न, अपने पैसे लिये जा भाई।"

किन्तु तब तक आगे सुनाई पड़ा, उसी प्रकार मादक मृदुल स्वर मे---"बच्चो को बहलानेवाला मिठाईवाला।"

रामवृक्ष बेनीपुरी

: १३ :

गोशाला

उस दिन रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही थी।

आज स्कूल नही जाना होगा, गुरुजी की उस हरी-हरी खजूर की छड़ी से ही छुट्टी नही मिली, कभी आंगन में जाकर नाचूगा, नहाऊगा, कभी पानी के बुल्लों से खेलूंगा, खुश होऊगा और उसके वाद गरमागरम खिचड़ी खाकर काकी की गोद मे सोऊगा !

किन्तु उस वर्षा मे भी देखा, मेरे गांव के रामफल काका कीचड़ हेलते, सिर पर छाता ओढ़े, लेकिन ज्यादातर भीगते, वढ़े जा रहे है—मेरे पड़ोसी अक्कल के दरवाजे की ओर !

(रामफल काका मेरे गाँव के सब से धनी, किन्तु कंजूस और अक्कल एक गरीव मजदूर, किन्तु हरफनमौला।)

× × ×

रामफल—"अक्कल, जरा चलो, मेरे घर के खपड़े उघर जाने से समूचा घर पानी-पानी हो रहा है, खाना-पीना वन्द है; चलो जरा खपड़ों को दुरुस्त कर दो—बालवच्चे भूखों छटपट कर रहे हैं।"

"मेरी तवीयत ठीक नहीं—माफ कीजिए; तवीयत अच्छी

होती, तो हुकुम सिर-आंखों पर।"

अक्कल रामफल काका का काम प्रायः करता ही रहता, किन्तु उसे सबसे ज्यादा तो इस बात की चिढ थी कि कंजूसी के मारे अच्छे दिनों मे तो ये घर दुरुस्त नही कराते और इस आफत में जान लेने आये है, जैसे गरीब की देह देह ही नही ! और उसे सर्दी लग गई थी। वह रह-रहकर ढांसता था, यह बात तो हम पड़ोसी जानते ही थे।

किन्तु रामफल काका के साम-दाम, दण्ड-भेद के सामने उसे झुकना ही पड़ा। फटी काली कम्बली ओढ़े अक्कल को मैंने रामफल काका के पीछे-पीछे जाते देखा।

: २ :

अक्कल--पांच हाथ का लम्बा जवान। रंग---वही भारत के आदिम निवासियो का। विदेशी आर्यो के रक्त-मिश्रण का प्रभाव रंग पर न पड़कर आकार पर ही पड़ा था। हट्टा-कट्टा !

जिस खेत की कोड़नी में अक्कल पहुंचा, उसके खर-पात अक्कल के नाम पर रोये। उसकी कुदाल क्या थी---परशुराम और बलराम के कुठार और हल की खिचडी थी ! उसके ऐसा महीन जोतनेवाला हलवाहा कहां मिलेगा ? घर बनाने-छाने मे तो उस्ताद। गाव मे जितने अच्छे मकान हैं, चाहे उनकी दीवाल बनने में या छप्पर मे, अक्कल का कुशल हाथ जरूर है। रामफल काका का वह शानदार बंगला अक्कल की वास्तु-विद्या का अपार ज्ञान का एक उत्कृष्ट नमूना है। अपने इन गुणों के चलते अक्कल मजदूर होकर भी काफी खुशामदे पाता था---पैसे भी।

उसके दो बेटे और एक बेटी थी। बेटों का लालन-पालन

उसने औकात से ज्यादा अच्छे ढंग पर किया और बेटी को तो वह इस शान से रखता कि गाव की ववुइया भी मन-ही-मन चिढ़ती।

अक्कल की उदारता की चर्चा भी होती। गांव मे कभी साधु-सन्त आते, तो उनकी सेवा अक्कल जरूर करता! वह काम करने मे राक्षस था। उसकी आमदनी साधारण मजदूरों से ज्यादा तो थी ही, एक गाय भी पाल रक्खी थी और दो-तीन बकरियां भी। इनसे काफी पैसें आते।

: ३ :

मैं अब शहरी जीव हू। कभी-कभी मन वहलाने को अपने गांव मे चला जाता हूं।

एक दिन, अपने दरवाजे पर बैठा मै एक विलायती मैग-जिन पढ़ रहा था। एक छोटी-सी रूप-कथा थी। मैं सोचता—उफ! ये विदेशी कलाकार कैसी जीवन्त तस्वीरे खीचते है! कलम है या रंगीन कूची!

"सलाम बबुआ!"

आंखे न उठी——मै कुछ पढने मे गर्क था, कुछ गर्क होने का स्वाग भर रहा था—कुछ उपेक्षा भी थी। दिनभर इन देहा-तियों के मारे परेशान जो रहता हूं।

फिर वही आवाज—मैंने आंखें उठाई। एक लकुटिया और दो सूखे पैरों के सहारे, तीन टांग के जानवर-सा झुका, आदमी दीख पड़ा। चेहरे पर गौर किया—काले चेहरे को सफेद-सफेद बालो के ठूठ और भयानक वना रहे थे। गरदन लगातार हिल रही थी!

"मै हूं वबुआ, अक्कल!"

मैं चौक पडा। क्या वही अक्कल आज ऐसा हो गया ?

बेचारा अक्कल अब भीख मांगता है। जिसने गांव भर को घर दिया, वही बे-घरबार का है। एक बच्चा जाता रहा, दूसरा, शादी होते ही अपनी ससुराल चल दिया। बेटी तो पराए की होती है। उसकी प्यारी पत्नी बुधनी भी चल बसी है ! कोई काम-धाम उससे वन पड़ता नही। इतनी कमाई तो कभी हुई नही कि इतना संग्रह कर पाता कि इन बुरे दिनों को सुख-चैन से काटता। सिवा भीख के दूसरा चारा था ही क्या ?

और, भीख भी क्या सदा मिलती ही है ? भूख-प्यास का मारा अक्कल हड्डी का ढांचा बन रहा है !

"बबुआ, मैं आपसे भीख मांगने नही आया, एक नालिश करने आया हूं---बबुआ, तुम्ही इनसाफ करो तो हो, नही तो रामफल बाबू के खिलाफ कौन जीभ खोले ?"

अक्कल ने कथा सुनाई। किस तरह जिन्दगी के उठान के समय उसने अपनी पूरी शक्ति रामफल बाबू की मजदूरी मे दी, किस तरह कितनी ही परती जमीन को उसने उसके लिए हरा-भरा खेत बना डाला, किस तरह उसने उनके पशुधन की वृद्धि की, किस तरह उसने उनके ये मकान बनाए, जिन पर पड़ोस के बड़े-बड़े बाबुओं को ईर्ष्या होती है, लेकिन---

लेकिन, और वातें जाये जहन्नुम में, अक्कल के साथ आज एक महान् अन्याय किया गया था। जाड़े का दिन---दिन नही, रात। न घर, न कपड़ा। रामफल काका के दरवाजे पर एक बड़ा घूर लगता है। बेचारा अक्कल दिनभर भीख मागता, रात मे उनके पुआल के टाल में घुसकर सो जाता और जब कभी जाड़ा लगता, उनके घूर में जाकर आग तापता।

किन्तु आज रामफल काका ने उसे वहां से निकाल दिया है। क्यों ? क्योंकि वह रातभर ताप-तापकर आग खतम कर देता है और खांस-खांसकर चारों ओर थूक-थूक कर डालता है !

"बाबू, जिन्दगी भर उनकी सेवा की। इस बुढ़ापे में खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता, घर-दुआर देने से रहे, क्या घूर की आग से भी मुझे महरूम किया जाना चाहिये ?" यह थी उसकी दलील। मै क्या जवाब देता ? मेरी आंखों मे बचपन का बरसातवाला वह दृश्य नाच उठा ! आखों की बरसात ने शायद उत्तर देना चाहा !

. ४ :

शहर में गोशाला का उत्सव था। मै उसमें शामिल होकर, अपने गांव की ओर जा रहा था।

मुझे खशी हो रही थी, गोशाला के सम्वन्ध में मेरे गांव की भी चर्चा हुई थी। रामफल काका ने दो गाड़ी पुआल गोशाले के लिये दिया था। गोशाले के मंत्री ने इसका उल्लेख किया था।

गोशाला—बूढ़ी, अपाहिज गौओं, बैलों की रक्षा के लिए कितना सुन्दर प्रवन्ध। चाहिये भी; भला जिन गौओं ने हमें जिन्दगी भर दूध और बछवे दिए, जिन बैलों ने अपनी हड्डियां ... जमीन को जरखेज बनाया, अन्न की राशियां दीं, उनके ... प्रबन्ध होना ही चाहिये ! गोशाला, मनुष्य की ... प्रतीक !

... सोचता चला जा रहा था कि ... दीख पड़ी। यह

... जा रहा हूं, कही

माग-मूगकर खाऊगा और राम-नाम लेते`` `` ``''

अक्कल की आंखो से बड़े-बड़े बिल्लौरी दाने गिर रहे थे ! वे धंसी आंखें मानों चिर-सचित मुक्ताओं को उगल रही थी !

अक्कल अपने गाव को सदा के लिये छोड़कर जा रहा था। कहां ? जहा भी कही उसे पेट के खड्ड के लिये एक मुट्ठी अन्न और इस शरीर के लिये तीन हाथ जमीन मिल जाय।

मनुष्य ने बूढे पशुओं के लिये गोशालाएं बनवाईं, किन्तु बूढे मनुष्यों के लिए ? रामफल काका को बूढ़ी गायों से इतनी मुहब्बत और उस बूढे आदमी के लिए, जिसके ` ?

जैनेन्द्र कुमार

: १४ :

पाजेब

बाजार मे एक नई तरह की पाजेब चली है। पैरों मे पड़कर वे बड़ी अच्छी मालूम होती है। उनकी कड़ियां आपस मे लचक के साथ जुड़ी रहती है कि पाजेब का मानो निज का आकार कुछ नही है, जिस पाव मे पड़े उसी के अनुकूल हो रहती है।

पास-पड़ोस मे तो सब नन्ही-बडी के पैरों में आप वही पाजेब देख लीजिए। एक ने पहनी कि फिर दूसरी ने भी पहनी। देखा-देखी मे इस तरह उनका न पहनना मुश्किल हो गया है।

हमारी मुन्नी ने भी कहा कि बाबूजी, हम पाजेब पहनेंगे। बोलिए भला कठिनाई से चार बरस की उम्र और पाजेब पहनेगी।

मैंने कहा कि कैसी पाजेब ?

बोली कि हा, वही जैसी रुकमिन पहनती है, जैसी शीला पहनती है।

मैंने कहा कि अच्छा-अच्छा।

बोली कि मै तो आज ही मंगा लूगी।

मैंने कहा कि अच्छा भाई आज सही।

उस वक्त तो खैर मुन्नी किसी काम में बहल गई। लेकिन जब दोपहर आई मुन्नी की बूआ, तब वह मुन्नी सहज मानने

वाली न थी।

बूआ ने मुन्नी को मिठाई खिलाई और गोद मे लिया और कहा कि अच्छा, तो तेरी पाजेब अब के इतवार को जरूर लेती आऊंगी।

इतवार को बूआ आई और पाजेब ले आई। मुन्नी उन्हे पहनकर खुशी के मारे यहां-से-वहां छुमकती फिरी। रुकमिन के पास गई और कहा देख रुकमिन, मेरी पाजेब। शीला को भी अपनी पाजेब दिखाई। सबने पाजेब पहनी देखकर उसे प्यार किया और तारीफ की। सचमुच वह चांदी की सफेद दो-तीन लड़ियां-सी टखनों के चारों ओर लिपट कर, चुपचाप बिछी हुई, ऐसी सुघड़ लगती थी कि बहुत ही, और बच्चों की खुशी का ठिकाना न था।

और हमारे महाशय आशुतोष, जो मुन्नी के बड़े भाई थे, पहले तो मुन्नी को सजी-वजी देखकर बड़े खुश हुए। वह हाथ पकड़कर अपनी बढिया मुन्नी को पाजेब-सहित दिखाने के लिए आस-पास ले गये। मुन्नी की पाजेब का गौरव उन्हे अपना भी मालूम होता था। वह खूब हसे और ताली पीटी, लेकिन थोड़ी देर बाद वह ठुमकने लगे कि मुन्नी को पाजेब दी, सो हम भी बाईसिकिल लेंगे।

बूआ ने कहा कि अच्छा बेटा अबके जन्म-दिन को तुझे भी बाईसिकिल दिलवाएंगे।

आशा बाबू ने कहा कि हम तो अभी लेंगे।

बूआ ने कहा, "छी-छी तू कोई लड़की है? जिद तो लड़कियां किया करती है। और लड़किया रोती है। कही बाबू साहब लोग रोते है!"

आशुतोष बाबू ने कहा कि तो हम बाईसिकिल जरूर लेगे

जैनेन्द्र कुमार

: १४ :

पाजेब

बाजार में एक नई तरह की पाजेब चली हैं। पैरों में पड़कर वे बड़ी अच्छी मालूम होती है। उनकी कड़िया आपस मे लचक के साथ जुड़ी रहती है कि पाजेब का मानो निज का आकार कुछ नहीं है, जिस पाव मे पड़े उसी के अनुकूल हो रहती है।

पास-पड़ोस मे तो सब नन्ही-बड़ी के पैरो मे आप वही पाजेब देख लीजिए। एक ने पहनी कि फिर दूसरी ने भी पहनी। देखा-देखी में इस तरह उनका न पहनना मुश्किल हो गया है।

हमारी मुन्नी ने भी कहा कि बाबूजी, हम पाजेब पहनेंगे। बोलिए भला कठिनाई से चार बरस की उम्र और पाजेब पहनेगी।

मैंने कहा कि कैसी पाजेब ?

बोली कि हां, वही जैसी रुकमिन पहनती है, जैसी शीला पहनती है।

मैंने कहा कि अच्छा-अच्छा।

बोली कि मै तो आज ही मगा लूगी।

मैंने कहा कि अच्छा भाई आज सही।

उस वक्त तो खैर मुन्नी किसी काम मे बहल गई। लेकिन जब दोपहर आई मुन्नी की बूआ, तब वह मुन्नी सहज मानने

वाली न थी ।

बूआ ने मुन्नी को मिठाई खिलाई और गोद में लिया और कहा कि अच्छा, तो तेरी पाजेब अब के इतवार को जरूर लेती आऊंगी ।

इतवार को बूआ आई और पाजेब ले आई। मुन्नी उन्हें पहन-कर खुशी के मारे यहा-से-वहा छुमकती फिरी। रुकमिन के पास गई और कहा देख रुकमिन, मेरी पाजेब। शीला को भी अपनी पाजेब दिखाई। सबने पाजेब पहनी देखकर उसे प्यार किया और तारीफ की। सचमुच वह चादी की सफेद दो-तीन लड़ियां-सी टखनों के चारों ओर लिपट कर, चुपचाप बिछी हुई, ऐसी सुघड़ लगती थी कि बहुत ही, और बच्चो की खुशी का ठिकाना न था।

और हमारे महाशय आशुतोष, जो मुन्नी के बड़े भाई थे, पहले तो मुन्नी को सजी-वजी देखकर बडे खुश हुए। वह हाथ पकड़कर अपनी बढ़िया मुन्नी को पाजेब-सहित दिखाने के लिए आस-पास ले गये। मुन्नी की पाजेब का गौरव उन्हें अपना भी मालूम होता था। वह खूब हसे और ताली पीटी, लेकिन थोड़ी देर बाद वह ठुमकने लगे कि मुन्नी को पाजेब दी, सो हम भी बाई-सिकिल लेंगे।

बूआ ने कहा कि अच्छा बेटा अबके जन्म-दिन को तुझे भी बाईसिकिल दिलवाएगे ।

आशा बाबू ने कहा कि हम तो अभी लेंगे।

बूआ ने कहा, "छी-छी तू कोई लड़की है? जिद तो लड़कियां किया करती है। और लड़किया रोती है। कहीं बाबू साहब लोग रोते है!"

आशुतोष बाबू ने कहा कि तो हम बाईसिकिल जरूर लेंगे

जैनेन्द्र कुमार

: १४ :

पाजेब

बाजार मे एक नई तरह की पाजेब चली है। पैरों में पड़कर वे वड़ी अच्छी मालूम होती है। उनकी कड़िया आपस में लचक के साथ जुड़ी रहती हैं कि पाजेब का मानो निज का आकार कुछ नही है, जिस पाव मे पड़े उसी के अनुकूल हो रहती हैं।

पास-पड़ोस मे तो सब नन्ही-बडी के पैरों मे आप वही पाजेब देख लीजिए। एक ने पहनी कि फिर दूसरी ने भी पहनी। देखा-देखी मे इस तरह उनका न पहनना मुश्किल हो गया है।

हमारी मुन्नी ने भी कहा कि बाबूजी, हम पाजेब पहनेंगे। बोलिए भला कठिनाई से चार बरस की उम्र और पाजेब पहनेगी।

मैंने कहा कि कैसी पाजेब ?

बोली कि हां, वही जैसी रुकमिन पहनती है, जैसी शीला पहनती है।

मैंने कहा कि अच्छा-अच्छा।

बोली कि मैं तो आज ही मगा लूगी।

मैंने कहा कि अच्छा भाई आज सही।

उस वक्त तो खैर मुन्नी किसी काम मे बहल गई। लेकिन जब दोपहर आई मुन्नी की बूआ, तब वह मुन्नी सहज मानने

दोनों को अच्छी तरह सम्भाल कर उस नीचे वाले बक्स में रख दी थी। अब देखा तो एक है, दूसरी गायब है।

मैंने कहा कि तो चलकर वह इस कमरे मे कैसे आ जायगी ?

भूल हो गई होगी। एक रक्खी होगी, एक वहीं-कहीं पर छूट गई होगी। देखो मिल जायगी। कही जा नही सकती।

इस पर श्रीमती कह-सुन करने लगी कि तुम तो ऐसे ही हो। खुद लापरवाह हो, दोष उल्टे मुझे देते हो। कह तो रही हूं कि मैंने दोनों संभाल कर रक्खी थी।

मैंने कहा कि सम्भाल कर रखी थी, तो फिर यहां-वहां क्यों देख रही हो ? जहां रक्खी थी वही से ले लो न। वहां नही है तो फिर किसी ने निकाली ही होगी।

श्रीमती बोली कि मेरा भी यही खयाल हो रहा है। हो न हो, बंसी नौकर ने निकाली है। मैंने रक्खी, तब वह वहां मौजूद भी था।

मैंने कहा कि तो उससे पूछा ?

बोली कि वह तो साफ इन्कार करता है।

मैंने कहा कि तो फिर ?

श्रीमती जोर से बोलीं कि तो फिर मैं क्या बताऊं ? तुम्हें तो किसी वात की फिकर है नहीं। डांट कर कहते क्यों नही हो, उस बसी को बुलाकर ? जरूर पाजेब उसी ने ली है।

मैंने कहा कि अच्छा, तो उसे क्या कहना होगा ? यह कहूं कि ला भाई पाजेब दे दे !

श्रीमती झल्ला कर बोलीं कि हो चुका बस कुछ तुम से। तुम्ही ने तो उस नौकर की जात को शहजोर बना रखा है। डाँट न फटकार, नौकर ऐसे सिर न चढ़ेगा तो क्या होगा ?

जन्म-दिन वाले रोज।

बूआ ने कहा कि हां, यह बात पक्की रही, जन्म-दिन पर तुमको वाईसिकिल मिलेगी।

इस तरह वह इतवार का दिन हंसी-खुशी पूरा हुआ। शाम होने पर बच्चों की बूआ चली गई। पाजेब का शौक घड़ी-भर का था। वह फिर उत र कर रख-रखा दी गई, जिससे कही खो न जाय। पाजेब वह बारीक और सुबुक काम की थी और खासे दाम लग गये थे।

श्रीमती ने हमसे कहा कि क्यों जी, लगती तो अच्छी है, मैं भी एक बनवा लू।

मैंने कहा कि क्यों न बनवाओ! तुम कौन चार बरस की नहीं हो?

खैर, यह हुआ। पर मै रात को अभी अपनी मेज पर था कि श्रीमती ने आकर कहा कि तुमने पाजेब तो नही देखी।

मैंने आश्चर्य से कहा कि क्या मतलब?

बोलीं कि देखो, यहा मेज--वेज पर तो नहीं है। एक तो, उसमें की है, पर दूसरे पैर की मिलती नही है। जाने कहा गई?

मैंने कहा कि जायगी कहा? यही-कही देख लो। मिल जायगी।

उन्होंने मेरे मेज के कागज उठाने-धरने शुरू किये और अल-मारी की किताबे टटोल डालने का भी मनसूबा दिखाया।

मैंने कहा कि यह क्या कर रही हो? यहां वह कहां से आई?

जवाब मे वह मुझी से पूछने लगी कि तो फिर कहां है?

मैंने कहा कि तुमने ही तो रक्खी होगी। कहां रक्खी थी?

वतलाने लगी कि मैंने दोपहर के वाद कोई दो वजे उतार कर

मैने कहा कि खैर, छोड़ो। कल सबेरे पूछ-ताछ करेगे।

सबेरे बुलाकर मैने गम्भीरता से उससे पूछा कि क्यो बेटा, एक पाजेब नही मिल रही है, तुमने तो नही देखी ?

वह गुम हो आया। जैसे नाराज हो। उसने सिर हिलाया कि उसने नही ली। पर मुह नही खोला।

मैने कहा कि देखो बेटे, ली हो तो कोई बात नही, सच कह देना चाहिये।

उसका मुह और भी फूल आया। और वह गुम-सुम बैठ रहा।

मेरे मन में उस समय तरह-तरह के सिद्धांत आए। मैने स्थिर किया कि अपराध के प्रति करुणा ही होनी चाहिये रोष का अधिकार नही है। प्रेम से ही अपराध-वृत्ति को जीता जा सकता है। आंतक से उसे दबाना ठीक नही है। बालक का स्वभाव कोमल होता है और सदा ही उससे स्नेह से व्यवहार करना चाहिये इत्यादि।

मैने कहा कि बेटा आशुतोष, तुब घबराओ नही ? सच कहने मे घबराना नही चाहिये। ली हो तो खुल कर कह दो बेटा ! हम कोई सच कहने की सजा थोड़े ही दे सकते है ! बल्कि सच बोलने पर तो इनाम मिला करता है।

आशुतोष सब सुनता हुआ बैठा रह गया। उसका मुह सूजा था। वह सामने मेरी आखो मे नही देख रहा था। रह-रह कर उसके माथे पर बल पडते थे।

"क्यों वेटे, तुमने ली तो नही ?"

उसने सिर हिला कर, क्रोध से अस्थिर और तेज आवाज मे कहा कि मैने नहीं ली, नही ली, नही ली। यह कह कर वह रोने-का हो आया। पर रोया नही। आखों मे आसू रोक लिये।

वोलीं कि कह तो रही हूं कि किसी ने उसे वक्स में से निकाला ही है। और सोलह मे पन्द्रह आने यह बंसी है। सुनते हो न, वही है।

मैंने कहा कि मैंने बंसी से पूछा था। उसने नही ली मालूम होती।

इस पर श्रीमती ने कहा कि तुम नौकरों को नहीं जानते। वे वड़े छटे होते है। जरूर वंसी ही चोर है। नहीं तो क्या फरिश्ते लेने आते।

मैंने कहा तुमने आशुतोष से भी पूछा?

वोली पूछा था। वह तो खुद ट्रंक और बक्स के नीचे घुस-घुसकर खोज लगाने में मेरी मदद करता रहा है। वह नही ले सकता।

मैंने कहा, उसे पतंग का बड़ा शौक है।

वोली कि तुम तो उसे बताते-वरजते कुछ हो नही। उमर होती जा रही है। वह यों ही रह जायगा। तुम्ही हो उसे पतंग की शह देने वाले।

मैंने कहा कि जो कही पाजेब ही पड़ी मिल गई हो तो?

वोली कि नही, नही, नही! मिलती तो वह वता न देता?

खैर, वातों-बातों में मालूम हुआ कि उस शाम आशुतोष पतंग और एक डोर का पिन्ना नया लाया है।

श्रीमती ने कहा कि यह तुम्ही हो जिसने पतंग की उसे इजाजत दी। वस सारे दिन पतंग-पतंग। यह नही कि कभी उसे विठाकर सवक की भी कोई बात पूछो। मै सोचती हू कि एक दिन तोड़-ताड़ दू उसकी सब डोर और पतंग। हां, तो सारे वक्त वही धुन!

मैंने कहा कि खैर, छोडो। कल सबेरे पूछ-ताछ करेंगे।

सबेरे बुलाकर मैंने गम्भीरता से उससे पूछा कि क्यों बेटा, एक पाजेब नही मिल रही है, तुमने तो नही देखी ?

वह गुम हो आया। जैसे नाराज हो। उसने सिर हिलाया कि उसने नही ली। पर मुह नही खोला।

मैंने कहा कि देखो बेटे, ली हो तो कोई बात नही, सच कह देना चाहिये।

उसका मुह और भी फूल आया। और वह गुम-सुम बैठ रहा।

मेरे मन में उस समय तरह-तरह के सिद्धात आए। मैंने स्थिर किया कि अपराध के प्रति करुणा ही होनी चाहिये रोष का अधिकार नही है। प्रेम से ही अपराध-वृत्ति को जीता जा सकता है। आतक से उसे दबाना ठीक नही है। बालक का स्वभाव कोमल होता है और सदा ही उससे स्नेह से व्यवहार करना चाहिये इत्यादि।

मैंने कहा कि बेटा आशुतोष, तुब घबराओ नही ? सच कहने मे घबराना नही चाहिये। ली हो तो खुल कर कह दो बेटा ! हम कोई सच कहने की सजा थोडे ही दे सकते है ! बल्कि सच बोलने पर तो इनाम मिला करता है।

आशुतोष सब सुनता हुआ बैठा रह गया। उसका मुह सूजा था। वह सामने मेरी आंखो मे नही देख रहा था। रह-रह कर उसके माथे पर बल पड़ते थे।

"क्यों बेटे, तुमने ली तो नही ?"

उसने सिर हिला कर, क्रोध से अस्थिर और तेज आवाज मे कहा कि मैंने नही ली, नही ली, नही ली। यह कह कर वह रोने-का हो आया। पर रोया नही। आंखों मे आंसू रोक लिये।

उस वक्त मुझे प्रतीत हुआ उग्रता दोष का लक्षण है।

मैंने कहा देखो बेटा, डरो नही, अच्छा जाओ। ढूंढ़ो, शायद कही पड़ी हुई वह पाजेब मिल जाय। मिल जायेगी तो हम तुम्हें इनाम देगे।

वह चला गया और दूसरे कमरे मे जाकर पहले तो एक कोने में खड़ा हो गया। कुछ देर चुपचाप खड़े रहकर वह फिर यहां-वहां पाजेब की तलाश में लग गया।

श्रीमती आकर बोलीं आशू से तुमने पूछताछ लिया? क्या ख्याल है?

मैंने कहा कि सन्देह तो मुझे होता है। नौकर का काम तो यह है नहीं।

श्रीमती ने कहा कि नहीं जी, आशू भला क्यों लेगा?

मैं कुछ बोला नहीं। मेरा मन जाने कैसे गम्भीर प्रेम के भाव से आशुतोष के प्रति उमड़ रहा था। मुझे ऐसा मालूम होता था कि ठीक इस समय आशुतोष को हमें अपनी सहानुभूति से वंचति नहीं करना चाहिये। बल्कि कुछ अतिरिक्त स्नेह इस समय बालक को मिलना चाहिये। मुझे यह एक भारी दुर्घटना मालूम होती थी। मालूम होता था कि अगर आशुतोप ने चोरी की है तो उसका इतना दोष नहीं है; बल्कि यह हमारे ऊपर बड़ा भारी इल्जाम है। बच्चे में चोरी की आदत भयावह हो सकती है। लेकिन बच्चे के लिये वैसी लाचारी उपस्थित हो आई, यह और भी कहीं भयावह है। यह हमारी आलोचना है। हम उस चोरी से बरी नही हो सकते।

मैंने बुलाकर कहा, "अच्छा सुनो! देखो! मेरी तरफ देखो, यह बताओ कि पाजेब तुमने छुन्नू को दी है न?"

वह कुछ देर नही बोला। उसके चेहरे पर रंग आया और गया। मै एक-एक छाया ताड़ना चाहता था।

मैने आश्वासन देते हुए कहा कि कोई बात नही। हां, हा, बोलो डरो नही। ठीक बताओ बेटे! कैसा हमारा सच्चा बेटा है।

मानो बडी कठिनाई के बाद उसने अपना सिर हिलाया।

मैने बहुत खुश होकर कहा कि दी है न छुन्नू को?

उसने सिर हिला दिया।

अत्यन्त सांत्वना के स्वर मे स्नेहपूर्वक मैने कहा कि मुंह से बोलो। छुन्नू को दी है?

उसने कहा, "हा-आ।"

मैने अत्यन्त हर्ष के साथ दोनो बाहों मे लेकर उसे उठा लिया। कहा कि ऐसे ही बोल दिया करते है अच्छे लडके। आशू, हमारा राजा बेटा है। गर्व के भाव से उसे गोद में लिये-लिये मैं उसकी मा की तरफ गया। उल्लासपूर्वक बोला कि देखो हमारे बेटे ने सच कबूल किया है। पाजेब उसने छुन्नू को दी है।

सुनकर मा उसकी खुश हो आई। उन्होने उसे चूमा। बहुत शाबाशी दी और उसकी बलैया लेने लगी!

आशुतोष भी मुस्करा आया अगरचे एक उदासी भी उसके चेहरे से दूर नही हुई थी।

उसके बाद अलग ले जाकर मैने उससे बड़े प्रेम से पूछा कि पाजेब छुन्नू के पास है न? जाओ, माग ला सकते हो उससे?

आशुतोष मेरी ओर देखता हुआ बैठा रह गया। मैने कहा कि जाओ बेटे! ले आओ।

उसने जवाब मे मुह नही खोला।

मैने आग्रह किया तो वह बोला कि छुन्नू के पास नही हुई तो

वह कहां से देगा !

मैंने कहा कि तो जिसको उसने दी होगी उसका नाम बता देगा। सुनकर वह चुप हो गया। मेरे बार-बार कहने पर वह यही कहता रहा कि पाजेब छुन्नू के पास नही हुई तो वह देगा कहां से ?

अन्त मे हारकर मैंने कहा कि वह कही तो होगी। अच्छा तुमने कहां से उठाई थी ?

"पड़ी मिली थी ?"

"और फिर नीचे जा कर वह तुमने छुन्नू को दिखाई ?"

"हा !"

"फिर उसी ने कहा कि इसे बेचेगे।"

"हा ?"

"कहां बेचने को कहा ?"

"कहा मिठाई लाएगे !"

"नही पतंग लायेगे।"

"अच्छा पतंग को कहा ?"

"हां !"

"सो पाजेब छुन्नू के पास रह गई ?"

"हा !"

"तो उसी के पास होनी चाहिये न ? या पतग वाले के पास होगी। जाओ, बेटा उससे ले आओ। कहना हमारे बाबूजी तुम्हें इनाम देगे।"

वह जाना नही चाहता था। उसने फिर कहा कि छुन्नू के पास नही हुई तो कहां से देगा ?

मुझे उसकी जिद बुरी मालूम हुई। मैंने कहा कि तो कही तुमने उसे गाड दिया है ? क्या किया है ? बोलते क्यो नही ?

वह मेरी ओर देखता रहा और कुछ नही बोला।

मैंने कहा कुछ कहते क्यों नही ?

वह गुम-सुम रह गया। और नही बोला।

मैंने डपटकर कहा कि जाओ, जहा हो वहीं से पाजेब लेकर आओ।

जब वह अपनी जगह से नही उठा और नही गया तो मैंने उसे कान पकड़ कर उठाया। कहा कि सुनते हो ? जाओ पाजेब लेकर आओ। नही तो घर मे तुम्हारा काम नही है।

उस तरह उठाया जाकर वह उठ गया और कमरे से बाहर निकल गया। निकलकर बरामदे के एक कोने मे रूठा मुह बनाकर खड़ा रह गया।

मुझे बड़ा क्षोभ हो रहा था। यह लडका सच बोलकर अब किस बात से घबरा रहा है, यह मै कुछ समझ न सका। मैंने बाहर आकर जरा धीरे से कहा कि जाओ भाई, जाकर छुन्नू से कहते क्यों नही हो ?

पहले तो उसने कोई जवाब नही दिया और जब जवाब दिया तो बार-बार कहने लगा कि छुन्नू के पास नही हुई तो वह कहां से देगा ?

मैंने कहा कि जितने मे उसने बेची होगी वह दाम दे देंगे। समझे न ? जाओ, तुम कहो तो।

छुन्नू की मां तो कह रही है कि उनका लड़का ऐसा काम नही कर सकता। उसने पाजेब नही देखी।

जिस पर आशुतोष की मा ने कहा कि नही तुम्हारा छुन्नू झूठ बोलता है। क्यों रे आशुतोष तैंने दी थी न ?

आशुतोष ने धीरे से कहा कि हा, दी थी।

दूसरी ओर से छुन्नू बढकर आया और हाथ फटकार कर बोला कि मुझे नही दी। क्यों रे मुझे कब दी थी?

आशुतोष ने जिद्द बाधकर कहा कि दी तो थी। कह दो नहीं दी थी?

नतीजा यह हुआ कि छुन्नू की मां ने छुन्नू को खूब पीटा और खुद भी रोने लगी। कहती जाती कि हाय रे, अब हम चोर हो गए। यह कुलच्छिनी औलाद जाने कब मिटेगी?

बात दूर तक फैल चली। पडोस की स्त्रियों मे पवन पड़ने लगी। और श्रीमती ने घर लौटकर कहा कि छुन्नू और उसकी मां दोनों एक-से हैं।

मैंने कहा कि तुमने तेजा-तेजी क्यों कर डाली? ऐसी कोई बात भला कभी सुलझती है!

बोली कि हा मै तेज बोलती हूं। अब जाओ ना, तुम्ही उनके पास से पाजेब निकालकर लाते क्यो नही तब जानू जब पाजेब निलवा दो।

मैंने कहा कि पाजेब से बढ़कर शान्ति है। और अशान्ति से तो पाजेब मिल नहीं जायगी।

श्रीमती बुदबुदाती हुई नाराज होकर मेरे सामने से चली गई।

थोड़ी देर बाद छुन्नू की मा हमारे घर आई। श्रीमती उन्हें लाई थी। अब उनके बीच गर्मी नहीं थी। उन्होने मेरे सामने आकर कहा कि छुन्नू तो पाजेब के लिये इनकार करता है। वह पाजेब कितने की थी मै उसके दाम भर सकती हूं।

मैंने कहा, "यह आप क्या कहती है। बच्चे बच्चे हैं। आपने छुन्नू से सहूलियत से पूछा भी?"

उन्होंने उसी समय छुन्नू को बुलाकर मेरे सामने कर दिया। कहा कि क्यों रे, बता क्यों नही देता जो तैंने पाजेब देखी हो ?

छुन्नू ने जोर से सिर हिलाकर इनकार किया। और बताया कि पाजेब आशुतोष के हाथ मे मैंने देखी थी और वह पतङ्ग वाले को दे आया है। मैंने खूब देखी थी, वह चादी की थी।

"तुम्हे ठीक मालूम है ?"

"हा, वह मुझ से कह रहा था कि तू भी चल। पतङ्ग लायेंगे।"

"पाजेब कितनी बड़ी थी ? बताओ तो।"

छून्नू ने उसका आकार बताया। जो ठीक ही था।

मैंने उसकी माँ की तरफ कर कहा कि देखिये न पहले यही कहता था कि मैंने पाजेब देखी तक नही। अब कहता है कि देखी है।

मां ने मेरे सामने छुन्नू को खीचकर तभी धम्म-धम्म पीटना शुरू कर दिया। कहा कि क्यो रे, झूठ बोलता है ? तेरी चमड़ी न उधेड़ी तो मै नही।

मैंने बीच-बचाव करके छुन्नू को बचाया। वह शहीद की भाँति पिटता रहा था। रोया बिलकुल नही था और एक कोने मे खड़े आशुतोष को जाने किस भाव से वह देख रहा था।

खैर, मैंने सबको छुट्टी दी। कहा कि जाओ बेटा छुन्नू, खेलो। उसकी माँ को कहा कि आप उसे मारियेगा नही। और पाजेब कोई ऐसी बड़ी चीज नही है।

छुन्नू चला गया। तव, उसकी माँ ने पूछा कि आप उसे कसूरवार समझते हो ?

मैंने कहा कि मालूम तो होता है कि उसे कुछ पता है। और वह मामले मे शामिल है।

फिर मैने पूछा कि आशुतोष कहां है ?

उन्होंने बताया कि बाहर ही कही खेल-खाल रहा होगा।

मैने कहा कि बसी, जाकर उसे बुला तो लाओ।

बंसी गया और उसने आकर कहा कि वह अभी आते हैं।

"क्या कर रहा है ?"

"छुन्नू के साथ गिल्ली-डंडा खेल रहे है।"

थोड़ी देर में आशुतोष आया। तब मैने उसे गोद में लेकर प्यार किया। आते-आते उसका चेहरा उदास हो गया था और गोद मे लेने पर भी वह विशेष प्रसन्न नही मालूम हुआ।

उसकी मां ने खुश होकर कहा कि हमारे आशुतोष ने सब बातें अपने आप पूरी-पूरी बता दी है। हमारा आशुतोष बड़ा सच्चा लड़का है।

आशुतोष मेरी गोद मे टिका रहा। लेकिन अपनी बड़ाई सुन कर भी उसको कुछ हर्ष नही हुआ प्रतीत होता था।

मैने कहा कि आओ, चलो। अब क्या बात है। क्यों हजरत तुम को पांच ही आने तो मिले हैं न ? हमसे पांच आने मांग लेते तो क्या हम न देते ? सुना, अब से ऐसा मत करना बेटे !

कमरे मे ले जाकर मैने उससे फिर पूछताछ की, "क्यों बेटा, पतंग वाले ने पॉच आने तुम्हे दिये न ?"

"हां !"

"और वह छुन्नू के पास है ?"

"हा !"

"अभी तो उसके पास होंगे न ?"

"नही"

"खर्च कर दिए ?"

इसपर छुन्नू की माँ ने पास बैठी हुई मेरी पत्नी से कहा, "चलो बहनजी मैं तुम्हें अपना सारा घर दिखाए देती हूँ। एक-एक चीज देख लो। होगी पाजेब तो जायगी कहा ?"

मैंने कहा, "छोडिये भी। बेबात की बात बढ़ाने से क्या फायदा।" सो ज्यों-त्यो मैंने उन्हे दिलासा दिया। नही तो वह छुन्नू को पीट-पाट कर हाल-बेहाल कर डालने का प्रण ही उठाए ले रही थी। "कुलच्छन, आज उसी धरती मे नही गाड़ दिया, तो मेरा नाम नही।"

खैर, जिस-तिस भाति बखेड़ा टाला। मै इस झझट मे दफ्तर भी समय पर नही जा सका। जाते वक्त श्रीमती को कह गया कि देखो आशुतोष को धमकाना मत। प्यार से सारी बातें पूछना। धमकाने से बच्चे बिगड़ जाते है, और हाथ कुछ नही आता। समझी न ?

शाम को दफ्तर से लौटा तो श्रीमती ने सूचना दी कि आशुतोष ने सब बतला दिया है। ग्यारह आने पैसे मे वह पाजेब पतंग वाले को दे दी है। पैसे उसने थोडे-थोड़े करके देने को कहे है। पांच आने जो दिये वह छुन्नू के पास है। इस तरह रत्ती-रत्ती बात उसने कह दी है।

कहने लगी कि मैंने बड़े प्यार से पूछ-पूछकर यह-सब उसके पेट मे से निकाला है। दो-तीन घटे मैं मगज मारती रही। हाय राम, बच्चे का भी क्या जी होता है।

मै सुनकर खुश हुआ। मैंने कहा कि चलो अच्छा है, अब पांच आने भेज कर पाजेब मगा लेगे। लेकिन यह पतंग-वाला भी कितना बदमाश है, बच्चो के हाथ से ऐसी चीजे लेता है। उसे पुलिस मे दे देना चाहिये। उचक्का कही का !

फिर मैंने पूछा कि आशुतोष कहां है ?

उन्होंने बताया कि बाहर ही कही खेल-खाल रहा होगा।

मैंने कहा कि बंसी, जाकर उसे बुला तो लाओ।

बंसी गया और उसने आकर कहा कि वह अभी आते हैं।

"क्या कर रहा है ?"

"छुन्नू के साथ गिल्ली-डंडा खेल रहे हैं।"

थोड़ी देर मे आशुतोष आया। तब मैंने उसे गोद में लेकर प्यार किया। आते-आते उसका चेहरा उदास हो गया था और गोद में लेने पर भी वह विशेष प्रसन्न नहीं मालूम हुआ।

उसकी मां ने खुश होकर कहा कि हमारे आशुतोष ने सब बातें अपने आप पूरी-पूरी बता दी है। हमारा आशुतोष बड़ा सच्चा लड़का है।

आशुतोष मेरी गोद मे टिका रहा। लेकिन अपनी बड़ाई सुन कर भी उसको कुछ हर्ष नही हुआ प्रतीत होता था।

मैंने कहा कि आओ, चलो। अब क्या बात है। क्यो हजरत तुम को पांच ही आने तो मिले है न ? हमसे पांच आने मांग लेते तो क्या हम न देते ? सुना, अब से ऐसा मत करना बेटे !

कमरे में ले जाकर मैंने उससे फिर पूछताछ की, "क्यों बेटा, पतंग वाले ने पाँच आने तुम्हें दिये न ?"

"हां !"

"और वह छुन्नू के पास है ?"

"हां !"

"अभी तो उसके पास होंगे न ?"

"नही"

"खर्च कर दिए ?"

"नही"

"नही खर्च किये ?"

"हां"

"खर्च किये, कि नही खर्च किये ?"

उस ओर से प्रश्न करने पर वह मेरी ओर देखता रहा, उत्तर नही दिया।

"वताओ खर्च कर दिये कि अभी है ?"

जवाव में उसने एक वार 'हा' कहा तो दूसरी वार 'नही' कहा।

मैंने कहा कि तो यह क्यों नही कहते कि तुम्हें नहीं मालूम है ?

"हां"

"वेटा मालूम है न ?"

"हां"

पतंग वाले से पैसे छुन्नू ने लिये हैं न ?

"हा"

"तुमने क्यो नही लिये ?"

वह चुप।

"पांचों इकन्नी थी, या दुअन्नी और पैसे भी थे ?"

वह चुप।

"वतलाते क्यों नहीं हो ?"

चुप !

"इकन्नियां कितनी थी, वोलो ?"

"दो"

"वाकी पैसे थे ?"

"हां"

"दुअन्नी नहीं थी ?"

"हां"

"दुअन्नी थी ?"

"हा"

मुझे क्रोध आने लगा। डपटकर कहा कि सच क्यों नहीं बोलते जी ? सच बताओ कितनी इकन्नियां थी और कितना क्या था।

वह गुम-सुम खड़ा रहा, कुछ नही बोला।

"बोलते नही।"

वह नही बोला।

"सुनते हो ! बोलो——नही तो——"

आशुतोष डर गया। और कुछ नही बोला।

"सुनते नही मैं क्या कह रहा हूँ ?"

इस पर भी वह नही बोला तो पकड़कर उसके कान खींच लिए। वह बिना आँसू लाये गुम-सुम खड़ा रहा।

"अब भी नही बोलोगे ?"

वह डर के मारे पीला हो आया। लेकिन बोल नही सका। मैंने जोर से बुलाया, "बंसी यहां आओ, इसको ले जाकर कोठरी में बन्द कर दो।"

बंसी नौकर उसे उठाकर ले गया और कोठरी में मूंद दिया।

दस मिनट बाद मैंने फिर उसे पास बुलाया। उसका मुंह सूजा हुआ था। बिना कुछ बोले उसके होठ हिल रहे थे। कोठरी मे बद होकर भी वह रोया नही।

मैंने कहा, "क्यों रे, अब तो अकल आई ?"

वह सुनता हुआ गुम-सुम खड़ा रहा।

"अच्छा पतंग वाला कौन सा है ? दाईं तरफ का वह चौराहे

वाला ?" उसने कुछ ओठों में ही वड़बड़ा दिया। जिसे मैं कुछ न समझ सका।

"वह चौराहे वाला ? बोलो—"

"हा"

"देखो अपने चाचा को साथ ले जाओ। वता देना कि कौन-सा है। फिर उसे स्वयं भुगत लेंगे। समझते हो न ?"

यह कहकर मैंने अपने भाई को वुलाया। सव वात समझा-कर कहा, "देखो पांच आने के पैसे ले जाओ। पहले तुम दूर रहना। आशुतोष पैसे ले जाकर उसे देगा और अपनी पाजेव मागेगा। अव्वल तो वह पाजेब लौटा ही देगा। नही तो उसे डांटना और कहना कि तुझे पुलिस के सुपुर्द कर दूगा। वच्चों से माल ठगता है ? समझे ? नरमी की जरूरत नही है।"

"और आशुतोष अब जाओ, अपने चाचा के साथ जाओ।" वह अपनी जगह पर खड़ा था। सुनकर भी टस-से-मस होता दिखाई नही दिया।

"नही जाओगे ?"

उसने सिर हिला दिया कि नहीं जाऊंगा ।

मैंने तब उसे समझाकर कहा कि भैया घर की चीज है, दाम लगे हैं। भला पाच आने मे रुपयों का माल किसी के हाथ खो दोगे। जाओ, चाचा के संग जाओ। तुम्हे कुछ नहीं कहना होगा। हां पैसे दे देना और अपनी चीज वापस मांग लेना। दे दे, नही दे नहीं दे। तुम्हारा इससे सरोकार नही। सच है न बेटे! अब जाओ।

पर वह जाने को तैयार नहीं ही दीखा। मुझे उस लडके की गुस्ताखी पर बड़ा बुरा मालूम हुआ। बोलो, इसमे बात क्या है।

इसमे मुश्किल कहा है ? समझाकर बात कर रहे है सो समझता ही नही, सुनता ही नही ।

मैने कहा कि क्यों रे नही जायगा ?

उसने फिर सिर हिला दिया कि नही जाऊंगा ।

मैने प्रकाश, अपने छोटे भाई, को बुलाया । कहा, "प्रकाश, इसे पकड़ कर ले जाओ ।"

प्रकाश ने उसे पकड़ा और आशुतोष अपने हाथ-पैरों से उसका प्रतिकार करने लगा । वह साथ जाना नही चाहता था ।

मैने अपने ऊपर बहुत जब्र करके फिर आशुतोष को पुचकारा, कहा कि जाओ भाई ! डरो नही । अपनी चीज घर में आयगी । इतनी-सी बात समझते नही । प्रकाश, इसे गोदी मे ले जाओ और जो चीज मागे उसे बाजार से दिलवा देना । जाओ भाई आशुतोष ।

पर उसका मुह फूला हुआ था । जैसे-तैसे बहुत समझाने पर वह प्रकाश के साथ चला । ऐसे चला मानो पैर उठाना उसे भारी हो रहा हो । आठ बरस का यह लड़का होने आया फिर भी देखो न कि किसी भी बात की उसमे समझ नही है । मुझे जो गुस्सा आया तो क्या बतलाऊं । लेकिन यह याद करके कि गुस्से से बच्चे सम्भलने की जगह बिगड़ते हैं, मै अपने को दबाता चला गया । खैर वह गया तो मैने चैन की सास ली ।

लेकिन देखता क्या हूं कि कुछ देर मे प्रकाश लौट आया है ।

मैने पूछा "क्यो ?"

बोला कि आशुतोष भाग आया है ।

मैने कहा कि अब वह कहा है ?

"वह रूठा खड़ा है, घर में नही आता ।"

"जाओ, पकड़कर तो लाओ।"

वह पकड़ा हुआ आया। मैंने कहा, "क्यों रे, तू शरारत से बाज नहीं आयगा? बोल जायगा कि नहीं?"

वह नहीं बोला तो मैंने कसकर उसे दो चांटे दिये। थप्पड़ लगते ही वह एकदम चीखा पर फौरन चुप हो गया। वह वैसे ही मरे सामने खड़ा रहा।

मैंने उसे देख कर मारे गुस्से से कहा कि ले जाओ इसे मेरे सामने से। जाकर कोठरी में वन्द कर दो। दुष्ट!

इस वार वह आध-एक घण्टे वन्द रहा। मुझे खयाल आया कि मैं ठीक नही कर रहा हूँ, लेकिन जैसे कि दूसरा रास्ता न दीखता था। मार-पीटकर मन को ठिकाना देने की आदत पड़ गई थी, और कुछ अभ्यास न था।

खैर, मैंने इस वीच प्रकाश को कहा कि तुम दोनों पतंग-वालों के पास जाओ। मालूम करना कि किसने पाजेव ली है। होशियारी से मालूम करना। मालूम होने पर सख्ती करना। मुरव्वत की जरूरत नहीं। समझे?

प्रकाश गया पर लौटने पर वताया कि किसी के पास पाजेव नही है।

सुनकर मैं झल्ला आया, कहा कि तुमसे कुछ काम नहीं हो सकता। जरा सी वात नहीं हुई, तुमसे क्या उम्मीद रखी जाय?

वह अपनी सफाई देने लगा। मैंने कहा, "वस तुम जाओ।"

प्रकाश मेरा वहुत लिहाज मानता था। वह मुंह डालकर चला गया। कोठरी खुलवाने पर आशुतोष को फर्श पर सोता पाया। उसके चेहरे पर अव भी आंसू नही थे। सच पूछो तो मुझे उस समय वालक पर करुणा हुई। लेकिन आदमी में एक ही साथ जाने

क्या-क्या विरोधी भाव उठते है।

मैंने उसे जगाया। वह हड़बड़ाकर उठा। मैंने कहा, "कहो क्या हालत है?"

थोड़ी देर तक वह समझा ही नही। फिर शायद पिछला सिलसिला याद आया। झट उसके चेहरे पर वही जिद, अकड़ और प्रतिरोध के भाव दिखाई देने लगे।

मैंने कहा कि या तो राजी-राजी चले जाओ नही तो इस कोठरी मे फिर बन्द किए देते हैं।

आशुतोष पर इसका प्रभाव पड़ा हो ऐसा नही मालूम हुआ।

खैर, उसे पकड कर लाया और समझाने लगा। मैंने निकालकर उसे एक रुपया दिया और कहा, "बेटा, इसे पतंग वाले को देना और पाजेब माग लेना। कोई घबराने की बात नही। तुम तो समझदार लड़के हो।"

उसने कहा कि पाजेव जो उसके पास नही हुई तो वह कहां से देगा?

"इसका क्या मतलब, तुमने कहा न कि पांच आने मे पाजेब दी है! न हो छुन्नू को भी साथ ले लेना। समझे?"

वह चुप हो गया। आखिर समझाने पर जाने को तैयार हुआ। मैंने प्रेमपूर्वक उसे प्रकाश के साथ जाने को कहा। उसका मुह भारी देखकर डांटने वाला ही था कि इतने मे सामने उसकी बूआ दिखाई दी।

बुआ ने आशुतोष के सिर पर हाथ रखकर पूछा कि कहां जा रहे हो, मै तो तुम्हारे लिये केले और मिठाई लाई हूं।

आशुतोष का चेहरा रूठा ही रहा। मैंने बूआ से कहा कि उसे

रोको मत, जाने दो ।

आशुतोष रुकने को उद्यत था । वह चलने में आनाकानी दिखाने लगा ।

बूआ ने पूछा, "क्या वात है ?"

मैंने कहा, "कोई बात नही, जाने दो न उसे ।"

पर आशुतोष मचलने पर आ गया था । मैंने डांटकर कहा, "प्रकाश, इसे ले क्यों नही जाते हो ।"

बूआ ने कहा कि बात क्या है ? क्या वात है ?

मैंने पुकारा, "तू बंसी—भी साथ जा । बीच से लौटने न पावे ।" सो मेरे आदेश पर दोनों आशुतोप को जबरदस्ती उठाकर सामने से ले गए ।

बूआ ने कहा, "क्यों उसे सता रहे हो ?"

मैंने कहा कि कुछ नही, जरा यों ही—

फिर मैं उनके साथ इधर-उधर की बाते ले वैठा । राजनीति राष्ट्र की ही नही होती मुहल्ले में भी राजनीति होती है । यह भार स्त्रियों पर टिकता है । कहां क्या हुआ, क्या होना चाहिये इत्यादि चर्चा स्त्रियों को लेकर रंग फैलाती है । इसी प्रकार की कुछ वातें हुईं, फिर छोटा-सा बक्सा सरका कर वोली, इसमे वे कागज है, जो तुमने मांगे थे । और यहां—

यह कहकर उन्होंने अपनी बास्कट की जेव में हाथ डालकर पाजेव निकालकर सामने की, जैसे सामने विच्छू हो । मै भय-भीत भाव से कह उठा कि यह क्या ?

वोली कि उस रोज भूल से यह एक पाजेव मेरे साथ ही चली गई थी ।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

: १५ :

कामकाज

बाजार भर में तहलका मच गया। अधेड़ उम्र के एक सज्जन अपने एक नौजवान रिश्तेदार के सहारे अनारकली बाजार के बीचोबीच चले जा रहे थे। उनकी एक बाह बंधी हुई थी, कपड़े मैले हो गये थे और मालूम होता था कि बहुत दिनो से यह हजामत नही बना पाये है। इन सज्जन की आंखो मे इतनी गहरी निराशा और व्यथा का भाव स्पष्ट अकित था कि देखने वाले सहम कर रह जाते थे। क्वेटा के भूकम्प से बचे हुए या आहत व्यक्तियों का पहला बैच आज लाहौर पहुंचा था, और उनमें से सम्भवत. यही एक सज्जन थे, जो पैदल चलने लायक बच रहे थे।

लाला कस्तूरीमल अपनी दुकान मे खड़े होकर नए आने वाले कपड़ों के नमूने की जांच पड़ताल कर रहे थे। उनकी निगाह दूर से आते हुए उस मातमों से मजमे पर पड़ी, मगर उन्होंने उस ओर ध्यान नही दिया। दो एक मिनट मे वह सज्जन लाला कस्तूरीमल की दुकान के सामने आ पहुंचे और उन्होने अपने साथ के नौजवान से कहा—'बेटा, मुझे दो एक कपड़े न खरीद दोगे?'

'मैं भी आपसे यही प्रार्थना करने वाला था।'—कहकर नव-

युवक उन्हें लाला कस्तूरीमल की दुकान के भीतर ले गया। साथ का सारा मजमा दुकान के बाहर रुक गया।

लाला कस्तूरीमल की दुकान पर सेल्समैन की कमी नही है; मगर इन सज्जन की पोशाक मैली कुचैली होते हुए भी आकृति में कुछ ऐसा आकर्षण था कि लाला साहब ने आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हुए पूछा 'कहिये क्या हुक्म है ?'

उन सज्जन ने धीरे से कहा—'कुछ धोतियां दिखाइयेगा ?'

उसी वक्त एक आदमी को धोती लाने का हुक्म हो गया। सहसा लाला कस्तूरीमल को भी जैसे इलहाम सा हो गया कि यह सज्जन कहां से आ रहे है। उन्होंने वड़ी नम्रता के साथ पूछा— 'आप क्वेटा से आ रहे है ?'

'जी हा।'

लाला कस्तूरीमल की उत्सुकता अपनी चरम सीमा तक जा पहुंची। वे पिछले तीन दिनों मे कम से कम बारह तार क्वेटा को दे चुके थे, और उनमे से एक का भी जवाब नही मिला था। उनके बहनोई अपने सम्पूर्ण परिवार सहित क्वेटा मे ही रहते थे और उनके सबध मे उन्हें अब तक कोई खबर नही मिली थी। धोतियो के एक नए आते हुए बंडल का तागा कैंची से काटते हुए उन्होंने जरा व्यग्र भाव से पूछा। 'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट के मि० मधुसूदन को आप जानते है ?'

उन वृद्ध सज्जन ने बड़ी गभीरता के साथ कहा—'जी हां।'

'उनके घर वालों को भी।'

'जी हॉं, खूब अच्छी तरह से।'

लाला कस्तूरीमल ने लाल किनारी की एक धोती उन सज्जन के सामने खोलकर दिखाते हुए पूछा—'यह नागपुर की धोती

है।...... मि० मधुसूदन शायद उन दिनों दौरे पर थे ?'

'जी नही। २९ मई की रात को उन्हे दौरे के लिए रवाना होना था, मगर वे गये नही, दौरा उन्होंने अगले दिन के लिए मुल्तवी कर दिया था।'

एक और जोड़ा उन सज्जन के सामने फैलाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा—'यह धोती धुलने के बाद बहुत हल्की हो जाती है—ठीक गरमियों के लायक। यह भी नागपुर की। अच्छा तो वे दौरे पर नही गये ?'

'जी, नही जा सके।'

'मेरा कोई तार उन्हें नही मिला था ?'

'मुझे आपके साथ हार्दिक सहानुभूति है। मि० मधुसूदन अब इस दुनिया में नही रहे है।'

लाला कस्तूरीमल को उन वृद्ध सज्जन की बात पर जैसे रत्ती भर भी विश्वास नही आया। धोतियों के ढेर मे से एक और जोड़ा निकालते हुए उन्होने कहा—'आप किन मधुसूदन की बात कर रहे है ?'

'उन्ही मधुसूदन की जिनकी पत्नी का नाम उर्मिला है, जो पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट मे इजीनियर थे और जिनकी कोठी बाबू मोहल्ले के दक्षिण किनारे पर सरकारी हाईस्कूल के खेलने के मैदान के नजदीक थी।'

लाला कस्तूरीमल के चेहरे पर गहरे विषाद की रेखा साफ-साफ दीख पड़ी। डूबता हुआ व्यक्ति जिस तरह तिनके के आसरे को भी नही छोड़ना चाहता उसी तरह लाला कस्तूरीमल ने अपने अविश्वास को जबरदस्ती जमाए रखने की चेष्टा करते हुए कहा—'भूकम्प के बाद आप उनके यहां गये थे ?'

'नहीं जी ।'

'फिर आपको कैसे मालूम कि वे नही बच पाये ।'

'उनके छोटे भाई साहब की जबानी मालूम हुआ । आप बिना किनारे की भी कुछ धोतिया दिखलाइएगा ?'

'मदरासी धोतियां । कर्नाटक मिल । पाच सात नये डिजायन फेंको !' लाला जी ने अपने आदमियो को आवाज दी और उसके बाद कहा—'उनके भाई साहब से ? क्या उन्होंने मधुसूदन का अंतिम संस्कार किया था ?'

'जी नही ! उनकी देह मिली ही नही ! शायद कोठी की खुदाई करने पर कुछ पता चले ।'

दक्षिण के छज्जे पर से पाच सात धोतियों का एक ढेर इसी समय लाला कस्तूरीमल के ठीक सामने आकर गिरा । उस उद्विग्नता में भी लाला साहब के हाथ अपनी सहज आदत से ग्राहक के सामने जोड़ा खोलकर दिखाने लगे—'यह कर्नाटक का माल है । कर्नाटक ने नागपुर को बड़ा धक्का पहुंचाया है ।' लाला साहब ने उन वृद्ध सज्जन के अत्यन्त गंभीर बने हुए चेहरे की ओर देखते हुए कहा—'तो फिर क्या यह मुमकिन नही कि घर मे किसी को इत्तला दिये बिना ही वे दौरे पर चले गये हों ।'

'नही जी । ऐसा नही हुआ । वे लोग रात को बहुत देर तक एक साथ ताश खेलते रहे थे ।'

'ये धोतियां आप अवश्य पसन्द करेंगे । हां, उर्मिला का क्या हाल है ?'

'अस्पताल मे !' लाला कस्तूरीमल की सम्पूर्ण देह एक बारगी कांप उठी और क्षण भर के लिए उनके दोनों हाथ धोतियों के ढेर पर से उठ गये—'उनकी हालत कैसी है ?'

'चोट तो उन्हें अधिक नही लगी, जितना पति और बच्चे के देहान्त का सदमा पहुंचा है। आपको अवश्य ही स्वयं क्वेटा जाकर उन्हे लाने का प्रबन्ध करना चाहिए, इस जोड़े की कीमत क्या है?'

'चार रुपया छः आना इसकी खरीद है। मै आपसे ज्यादा चार्ज नही करूंगा। कुछ और भी नमूने दिखाऊं क्या ?'

'आपकी मेहरबानी। बनी बनाई कमीजें भी तो आपके यहां होंगी !'

'आप विदेशी कपड़ा तो नही पहनते न ?'

'जी नही। मुझे स्वदेशी कपड़ा ही चाहिये।'

'हम खुद जहां तक बन पड़ता है, स्वदेशी माल ही बेचते हैं। आपने खुद उर्मिला को अस्पताल मे देखा था ?'

'जी नही, यह भी मि० मधुसूदन के भाई साहब ने ही बताया था, मै खुद चोट खा गया था, कही आ-जा नही सका।'

'आप रेशमी कमीजे चाहते है या सूती ? दोनों ही देख लीजिये। रामलाल ३८ नम्बर की कमीजे लाना।' और उस एक ही सांस के उत्तर भाग को अत्यधिक करुण और एक दम ठंडा बनाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा—'तो क्या काशी भी इस दुनिया मे नही रहा ?'

'मुझे इस बात का हार्दिक दुःख है कि ये दारुण समाचार मैं आपको दे रहा हूं।' इस समय तक काउण्टर पर कमीजों का ढेर लग गया था। लाला कस्तूरीमल उस ढेर की कमीजे दिखाते हुए बोले—'यह मुर्शिदाबादी रेशम की कमीजे है, यह ढाके के रेशम की और यह काशी के रेशम की। मजबूती के लिहाज से यह काश्मीरी रेशम सबसे बढ़िया है। मगर यह इत्सु का सूती कपड़ा

सबको मात कर गया है। मिल ने हाल ही में कीमते भी बहुत गिरा दी है।' तब अपने हृदय के कुचले हुए अविश्वास को जबर-दस्ती जगा कर कस्तूरीमल ने कहा—मि० मधुसूदन के भाई तो चमन गये हुए थे।'

'दो एक दिन पहिले ही वे क्वेटा पहुंचे थे। उस रात वे बरामदे मे सोये थे इसी से बच गये।'

'इस कमीज की कीमत क्या है?'

'तीन रुपया छः आना। आपसे मै तीन ही लूंगा।'

'धन्यवाद! इस वक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

इसी समय एक संभ्रांत महिला उस दुकान में आई। लाला कस्तूरीमल अपने एक सहकारी को उन सज्जन के पास छोड़कर स्वयं उस महिला की ओर बढ़ गये। उनके चेहरे पर इस समय हद दर्जे की उदासी छाई हुई थी, परन्तु उनकी तत्परता पर इस उदासी का कोई प्रभाव न पड़ने पाया था।

२

रावलपिण्डी जेल का सबसे अधिक ताकतवर और कठोर चौकीदार यूसुफ मज-मजे में ग्यारह का घण्टा बजा रहा था। सर्दियों का मौसम था और मध्याह्न सूर्य की हल्की-हल्की धूप बहुत भली प्रतीत हो रही थी। इसी समय जेल के बड़े फाटक के बाहर से आवाज आई—'तार ले लो।'

ड्योढ़ी में कोई चौकीदार नही था, भीतर के सहन से यूसुफ ने तार वाले की आवाज सुनी; मगर उसने कोई परवाह न की। मजे-मजे मे उसने मुगरी अपनी जगह रक्खी और धीरे-धीरे फाटक की ओर बढा। तारवाला बहुत अधीर हो रहा था; परन्तु यूसुफ का डील-डौल देख कर उसे हिम्मत न हुई कि वह उस पर

अपना रोब डालने का प्रयत्न करे। नजदीक आकर यूसुफ ने पूछा—'किसका तार है ?'

'यूसुफ जमादार का।'

अट्टहास करके यूसुफ हंस पड़ा। जेल भर में तो कोई यूसुफ है नही। बाकी रहा वह; सो उसका तार आ ही नही सकता। पिछले कई बरसो से जिस आदमी के पास एक चिट्ठी तक नही आई, उसका तार कहां से आ सकता है ? फिर उसे तार देगा ही कौन ? सरहद के जिस अफ्रीदी प्रांत मे उसका मकान है, उसके पचास मील की परिधि तक मे एक भी डाकखाना या तार-घर नही। जी भर कर हंस लेने के बाद यूसुफ ने कहा—'कही गलती से कचहरी के यूसुफ का तार जेल के यूसुफ के पास नही ले आए ?'

मगर तार सचमुच उसी का था और बहुत शीघ्र ही उसे मालूम हो गया कि उसके ससुर साहब मरणासन्न हैं। मौत के बाद कोई और व्यक्ति ठीक तौर से उन्हे दफना सकेगा, इस बारे में उन्हें शक था इसी से उन्होंने युसूफ को बुलाने के लिए तार भिजवाया है।

इस जेल में चौकीदार नियुक्त हुए यूसुफ को पन्द्रह बरस बीत चुके हे। इन पन्द्रह बरसों मे वह एक बार भी अपने देश को नही गया। कभी किसी बात के लिये एक दिन की छुट्टी भी नहीं ली। युवावस्था के प्रारभिक दिनों मे उस अशासित प्रात मे अपने अनेक साथियों के साथ यूसुफ ने बीसों साहसिक काम किये हैं—डाके डाले हैं, चोरिया की है और छोटी छोटी लड़ाइयां भी लड़ी हैं। मगर उसके बाद जब यूसुफ का विवाह हो गया तो उसके ससुर-पक्ष का यह सबसे बड़ा उलाहना बन गया कि यूसुफ निठल्ला है—न वह खेती-बारी करता है, न वह किसी गिरोह का सरदार

है और न सरकार ही से कुछ पाता है। उन उलाहनो से तंग आकर वह अपने देश से भाग खड़ा हुआ और रावलपिण्डी में पहुंच कर जेल मे पहरेदार के पद पर नियुक्त हो गया था। पिछले पन्द्रह बरसों में प्रति माह वह कम से कम दस रुपये अपने ससुर साहब के पास भेजता रहा है, मगर न तो खुद कभी उनसे मिलने के लिए गया और न उसने अपनी पत्नी को ही अपने पास बुलवाया।

अपने ससुर का तार पाकर सहसा यूसुफ को अपनी मातृभूमि की स्मृति हो आई। वजीरिस्तान के वे नंगे पहाड़, उन पहाड़ों पर चरती हुई भेडे और उन भेड़ों के साथ-साथ स्वच्छ हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर पठान युवतियां। उन्ही सूखी-सी पहाड़ियों पर अंगूर पैदा होते है। उसी भूमि की मटियाली सी सतह पर सरदे बिछे रहते हैं और कही किशमिश, न्योजे और बादाम की बहार आती है। वहां आजादी है, वहा वीरता है और सबसे बढ़ कर वहां पुरुषत्व है। हां यूसुफ का बहिश्त वही तो है।

और इसके साथ ही साथ उसे अपने ससुर की बीमारी का स्मरण हो आया। वह बीमार हो गया है। बुड्ढा है, चल बसेगा। एक दिन जाना ही तो था। इसमे न कोई अचम्भे की बात है, न चिन्ता की और न शोक की। मगर फिर भी उसने बुलाया है। और कौन उसे ठीक तौर से दफना सकेगा? यूसुफ को जाना ही चाहिये, वह जायेगा ही।

मातृभूमि की याद से एक विशेष प्रकार की स्निग्धता का भाव यूसुफ के चेहरे पर झलक उठा और पश्तो का एक गीत गुन-गुनाता जेलर साहब के दफ्तर की ओर बढ़ गया। यूसुफ के आने से पहिले ही उसके तार की बात जेलर साहब को मालूम हो चुकी थी। एक मुस्कराहट के साथ उसकी ओर देखकर उन्होंने

कहा—'क्यों यूसुफ, पन्द्रह साल का रेकार्ड तोड़कर छुट्टी लेना चाहते हो।'

यूसुफ ने कोई ज़वाब नही दिया।

जेलर साहब ने पूछा—'तुम्हारे ससुर की उम्र कितनी है?'

'छियत्तर साल।'

'अब भी तुम चाहते हो कि वहां पहुंचकर उसे बचाने की कोशिश करो?'

यूसुफ चुप रहा।

जेलर ने अबकी बहुत ही गम्भीर बन कर कहा—'कानून के मुताबिक यहा छः जमादारों का हर वक्त मौजूद रहना लाजमी है। आठ जमादारो मे से दो पहिले ही छुट्टी पर हैं। इस हालत मे मै तुम्हे छुट्टी किस तरह दे सकता हूं।'

यूसुफ ने कहा—'अलादीन की छुट्टी कल मंजूर हो चुकी है, मगर वह गया नही है। मेरे कहने से वह अपनी छुट्टी मेरे हक मे बाद के लिए मन्सूख करवा लेगा। उसे कोई खास काम तो नही है।'

जेलर साहब ने कुछ चिढ़कर कहा—'तुम्हे कौन खास काम है? ससुर का दफनाना है? यह भी कोई काम है!'

कठोर-हृदय यूसुफ ने सिर झुका लिया—जैसे वह पराजित हो गया हो, मगर जेल के क्लार्क ने उसकी मदद की। बोला, 'वहा—शायद कोई जायदाद वायदाद का सवाल हो।'

यूसुफ चीख उठा। वह अब बरदाश्त न कर सका। उसने कहा—'मै किसी जायदाद के लालच मे नही, अपने ससुर की खिदमत के ख्याल से ही जाना चाहता हूं।'

जेलर ने जरा ऊची आवाज मे कहा, 'ससुर का भी कोई नाता

है और न सरकार ही से कुछ पाता है। उन उलाहनों से तंग आकर वह अपने देश से भाग खड़ा हुआ और रावलपिण्डो में पहुंच कर जेल में पहरेदार के पद पर नियुक्त हो गया था। पिछले पन्द्रह वरसों मे प्रति माह वह कम से कम दस रुपये अपने ससुर साहब के पास भेजता रहा है, मगर न तो खुद कभी उनसे मिलने के लिए गया और न उसने अपनी पत्नी को ही अपने पास बुलवाया।

अपने ससुर का तार पाकर सहसा यूसुफ को अपनी मातृभूमि की स्मृति हो आई। वजीरिस्तान के वे नंगे पहाड़, उन पहाड़ो पर चरती हुई भेड़े और उन भेड़ों के साथ-साथ स्वच्छ हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर पठान युवतियां। उन्ही सूखी-सी पहाड़ियो पर अगूर पैदा होते हैं। उसी भूमि की मटियाली सी सतह पर सरदे बिछे रहते हैं और कही किशमिश, न्योजे और बादाम की बहार आती है। वहां आजादी है, वहा वीरता है और सबसे बढ़ कर वहां पुरुषत्व है। हां यूसुफ का बहिश्त वही तो है।

और इसके साथ ही साथ उसे अपने ससुर की बीमारी का स्मरण हो आया। वह बीमार हो गया है। बुड्ढा है, चल बसेगा। एक दिन जाना ही तो था। इसमे न कोई अचम्भे की बात है, न चिन्ता की और न शोक की। मगर फिर भी उसने बुलाया है। और कौन उसे ठीक तौर से दफना सकेगा? यूसुफ को जाना ही चाहिये, वह जायेगा ही।

मातृभूमि की याद से एक विशेष प्रकार की स्निग्धता का भाव यूसुफ के चेहरे पर झलक उठा और पश्तो का एक गीत गुन-गुनाता जेलर साहब के दफ्तर की ओर बढ गया। यूसुफ के आने से पहिले ही उसके तार की वात जेलर साहब को मालूम हो चुकी थी। एक मुस्कराहट के साथ उसकी ओर देखकर उन्होने

कहा—'क्यो यूसुफ, पन्द्रह साल का रेकार्ड तोड़कर छुट्टी लेना चाहते हो।'

यूसुफ ने कोई जवाब नहीं दिया।

जेलर साहब ने पूछा—'तुम्हारे ससुर की उम्र कितनी है?'

'छियत्तर साल।'

'अब भी तुम चाहते हो कि वहां पहुंचकर उसे बचाने की कोशिश करो?'

यूसुफ चुप रहा।

जेलर ने अबकी बहुत ही गम्भीर बन कर कहा—'कानून के मुताबिक यहां छः जमादारो का हर वक्त मौजूद रहना लाजमी है। आठ जमादारों मे से दो पहिले ही छुट्टी पर हैं। इस हालत मे मै तुम्हे छुट्टी किस तरह दे सकता हूं।'

यूसुफ ने कहा—'अलादीन की छुट्टी कल मंज़ूर हो चुकी है, मगर वह गया नही है। मेरे कहने से वह अपनी छुट्टी मेरे हक में बाद के लिए मन्सूख करवा लेगा। उसे कोई खास काम तो नही है।'

जेलर साहब ने कुछ चिढ़कर कहा—'तुम्हें कौन खास काम है? ससुर का दफनाना है? यह भी कोई काम है!'

कठोर-हृदय यूसुफ ने सिर झुका लिया—जैसे वह पराजित हो गया हो; मगर जेल के क्लार्क ने उसकी मदद की। बोला, 'वहां—शायद कोई जायदाद वायदाद का सवाल हो।'

यूसुफ चीख उठा। वह अब बरदाश्त न कर सका। उसने कहा—'मै किसी जायदाद के लालच मे नही, अपने ससुर की खिदमत के ख्याल से ही जाना चाहता हूं।'

जेलर ने जरा ऊंची आवाज मे कहा, 'ससुर का भी कोई नाता

होता है ! एक आदमी की लड़की ले ली, इससे वह उम्र भर के लिए रिश्तेदार हो गया ? यह भी कोई रिश्ता है ?'

जेल का क्लार्क मुंह मोड़ कर हंसी छिपाने की कोशिश करने लगा। जेलर का लेक्चर अभी तक जारी था—'देखो यूसुफ, हिंदुस्तान भर मे तुम्हारा यह रिकार्ड है कि तुमने अपनी पन्द्रह साल की सरकारी नौकरी में एक भी दिन की छुट्टी कभी नही ली । एक जरा-सी बात के पीछे तुम अपना वह शानदार रिकार्ड तोड़ डालना चाहते हो ?'

दानवकाय यूसुफ से जब और कुछ न बन पड़ा, तो उसकी आंखों में आंसू भर आए। क्लार्क को अब उस पर सचमुच रहम आ गया। उसने कहा—'तो तुम जरूर छुट्टी लेना चाहते हो ?'

यूसुफ ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया।

क्लार्क ने जेलर से कहा, 'वह छुट्टी लेना चाहता है। उसकी पूरी छुट्टी बाकी है। कानूनन हम लोग उसे छुट्टी न लेने के लिए मजबूर नही कर सकते।'

जेलर ने एक बार अपने क्लार्क की ओर अग्निमय दृष्टि से देखा, परन्तु सहसा उनसे उसी समय एक भूली बात का स्मरण हो आया। करीब दो माह बाद पेशावर के जेल इंस्पेक्टर महोदय रावलपिण्डी नियुक्त होकर आने वाले थे। जेलर ने उन्हे एक भेंट भेजने के लिए सेबों की एक पेटी का आर्डर दे रक्खा था। यह पेटी दो दिन बाद काश्मीर से आने वाली थी। क्यों न वह पेटी यूसुफ के हाथ ही पेशावर भेज दी जाय।

जेलर ने जैसे एक मिनट तक सोचते रहने के उपरान्त कहा—'तुम पेशावर के रास्ते ही अपने गांव जाओगे न ?'

'जी हां।'

'तो तुम्हे दस दिनों की छुट्टी मैं दे सकता हूं। मगर आज से नही दो दिन बाद से !'

यूसुफ ने नम्रता से कहा—'उनको तो मालूम नही, वे कब चल बसे। आज रात को रवाना होकर भी जल्दी से जल्दी तीन दिन वाद ही वहां पहुच सकता हू।'

जेलर ने कहा—'तुम्हारी छुट्टी मजूर होने में दो दिन अवश्य ही लग जायेंगे।'

यूसुफ और क्लार्क दोनों ने हैरानी के साथ जेलर साहब की ओर देखा। उन दोनो के लिए यह बात अभूतपूर्व थी। क्लार्क ने कहा—'दरख्वास्त पर आप ही के दस्तखत काफी नही हैं क्या ?'

अपनी कमीनगी पर मुसकराहट का परदा डालते हुए जेलर ने कहा—'यार तुम्हे मेरी सेबों की एक पेटी पेशावर तक अपने साथ ले जानी होगी। वह पेटी परसों से पहिले यहा नहीं पहुंच सकती है।'

जेलर साहब का यह काम इतना अधिक महत्वपूर्ण था कि बेचारा यूसुफ आज ही रवाना हो जाने के लिए और अधिक आग्रह न कर सका।

३

साइकिल के पैडिलों पर तेजी के साथ पैर मारता हुआ देसराज बैंक की ओर चला जा रहा था। इस समय बारह बजकर पैतालिस मिनट हुए हैं और आज शनिवार है। एक बजे के बाद बैंक से लेनदेन न हो सकेगा। देसराज की जेब में पांच सौ रुपये के नोट पड़े हैं। बैंक में जाकर इससे अपने मालिक की एक रेलवे रसीद छुड़ानी है।

सड़क गोलबाग से होकर जहां मालरोड की ओर घूमती

. ₹ाज के मार्ग मे सहसा एक बाधा आ खड़ी हुई। सड़क के किनारे बीस-पच्चीस आदमी जमा थे। देसराज की साइकिल जब वहां पहुंची, तो दो तीन आदमियों ने हाथ बढाकर उससे कहा---'बाबूजी, जरा ठहरिये।'

देसराज को रुकना पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ कि राह चलते चलते एक आदमी को गश आ गया है। इसे क्या बीमारी है, यह किसी को नहीं मालूम; मगर बेहोशी की दशा मे भी अत्यधिक व्याकुल और क्षीण स्वर मे वह बार-बार पुकार उठता है---'पानी! पानी!!'

मगर आसपास कहीं पानी नही है।

एक ठेलेवाले ने देसराज से कहा---'बाबू जी, यहां से थोडी दूर पर यूनिवर्सिटी के लड़कों का क्लब है। यदि आप साइ-किल पर वहां जाकर एक लोटा पानी ला सकें तो इस बेचारे की जान बच जाये।'

देसराज ने पूछा---'यहां यह कब से पड़ा है?'

किसी ने बताया---'करीब पन्द्रह मिनट से।'

देसराज ने दूसरा सवाल किया---'इसे क्या बीमारी है?'

एक मुसाफिर ने जरा झुझलाकर कहा---'हम लोगों में से कोई डाक्टर तो है ही नही! जो कुछ है, वह आपके सामने है!'

देसराज शायद इस बात पर खीज उठता, परन्तु उसी समय उसी ठेलेवाले ने बड़ी नम्रता के साथ कहा---'बाबू साहब, यहां अपना सगा कोई भी नहीं है। यदि दो चार मिनट पर जाकर कहीं से पानी ला दे सकते, तो उसके ...ले पर लिटाकर इसे अस्पताल तक छोड़ ... मांगने पर पानी मिल भी जायेगा,

मगर हम गरीवो को इन बड़ी-बडी इमारतो में कोई घुसने भी नही देगा।

देसराज के जी में सचमुच दया का संचार हो आया। वह खुद भी एक गरीब बाबू है—ऐसा गरीब बाबू, जिसे अपने जीवन निर्वाह मे इन ठेलेवाले और झल्ली वाले मजदूरो से भी वढकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसका मालिक उसे दिन मे वाहर घण्टे और चार सप्ताहों मे सत्ताइस दिन (क्यों कि उसकी दुकान महीने मे एक ही दिन बन्द होती है) कसकर काम लेता है, तव जाकर उसे तीस रुपया मासिक वेतन मिलता है। वह भी यदि गरीबों के दु:ख-दर्द और उनकी असहाय अवस्था को नही समझेगा, तो और कौन समझेगा ? वह देख रहा था कि कालेज के विद्यार्थियों की साइकिल और अमीरो की कारे काफी संख्या मे उसी सड़क पर से होकर इधर-उधर निकल जाती है, किसी को इस ओर ध्यान देने की फुरसत नही है। मगर उसी समय उसकी निगाह अपनी घड़ी पर पड़ी। बारह बजकर तैतीस मिनट हो चुके है। पन्द्रह मिनट के वाद बैंक मे न तो रुपये ही जमा कराये जा सकेंगे और न रेलवे रसीद ही ली जा सकेगी। कल रविवार है। माल मिलने मे दो दिन की देर हो जायगी, और वह स्वतंत्र नही है।

हृदय की सम्पूर्ण भावुकता को कुचलकर देसराज साइकिल पर सवार हो गया और कुछ आगे वढकर वह कहता गया—वीस-पच्चीस मिनट में वापिस आता हू।

बैंक से अपना काम समाप्त करके देसराज जव गोलवाग के नजदीक पहुचा तो उसने देखा कि वहा तमाशबीनो की भीड़

बढ़ गई है कि सड़क पर राह मिलना भी कठिन है।

देसराज साईकिल से उतर पड़ा और पास ही खड़े हुए एक आदमी से उसने पूछा—'क्या बात है ?'

उसने बताया—'कुछ नही, कोई मुसाफिर राह चलते सड़क पर गिरकर मर गया है और पुलीस उसकी लाश लेने आई है।'

देसराज ने एक ठन्डी सास ली और धीरे-धीरे उस भीड़ को पार करके पुनः साइकिल पर सवार हो गया। पांच सौ रुपयो की पोमेड वेसलीन के पारसल की अत्यधिक महत्वपूर्ण रेलवे रसीद अब उसकी जेब मे पड़ी थी।

सियारामशरण गुप्त

: १६ :

कोटर और कुटीर

कोटर

दोपहरी का समय था। सूर्य अग्नि-शलाकाओं से पृथ्वी का शरीर दग्ध कर रहा था। वृक्षों के पत्ते निस्पन्द थे। मानो किसी भयंकर काण्ड की आशंका से सांस-सी साधे खड़े थे। इसी समय अपने छोटे से कोटर के भीतर बैठे हुए चातक-पुत्र ने कहा—'पिता'

बाहर की सहज स्निग्ध वनस्थली के वर्तमान रूखेपन की तरह ही वह स्वर कुछ नीरस था। चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा—'क्या है बेटा'

'है और क्या ? प्यास के मारे चोंच तक प्राण आ गये है।'

'बेटा, अधीर न हो। समय सदा एक-सा नही रहता।'

'तो यही तो मै भी कहता हूं—समय सदा एक-सा नही रहता। पुरानी बाते पुराने समय के लिये थी आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाये हुए है, जिस तरह बानरी मरे बच्चे को चिपकाये रहती है। घनश्याम की बाट जोहते रहिये। अब मुझसे यह नही सध सकता।'

'घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते। यही हमारे कुल का व्रत है। इस व्रत के कारण अपने गोत्र में न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अनर्थ।'

'आप कहते हैं—कोई अनर्थ नहीं हुआ, मैं कहता हूं, प्यास की इस यन्त्रणा से बढ़कर और अनर्थ क्या होगा। जहां से भी होगा मैं जल ग्रहण करूंगा ही।'

चातक सिहर कर पंख फड़फड़ाने लगा। मानो उसने उन अश्राव्य वचनो और कानों के बीच मे कोलाहल की परिखा-सी खड़ी कर देनी चाही! थोड़ी देर तक चुप रहकर वह बोला—'बेटा, धैर्य रख। अपने इस व्रत के कारण ही पानी बरसता है और धरती-माता की गोद हरी-भरी होती है। यह व्रत इस तरह नष्ट कर देने की वस्तु नहीं।'

लाड़ले लड़के ने कहा—'व्रत पालन करते हुए इतने दिन तो हो गये, पानी का कही चिह्न तक नही है! गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी-नाले सब सूख गये। फिर सूर्य के और निकट रहने वाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है?'

'बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवन-दान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिये थोड़ी-सी क्षुधा सहन करना अनिवार्य ही नही आवश्यक भी है।'

'पिता जी, मैं थोड़ी-सी क्षुधा से नहीं डरता। परन्तु यह भी नही चाहता कि क्षुधा ही क्षुधा सहन करता रहूं। मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूं और देवताओं का अभिशाप लेकर भी मैं इसे तोड़ दूंगा। घनश्याम को भी तो सोचना चाहिये था कि उनके बिना किसी के

प्राण निकल रहे हैं। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिये नहर, तालाव और कुओं का बदोबस्त कर लिया है। कृषि ने आपकी तरह सिर नही हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नहीं छुऊंगा। हम ही क्यों इस तरह कष्ट सहे। आप चाहे मुझे रक्खे या छोडे, मै यह झंझट न मानूगा।'

चातक ने देखा——मामला बेढब हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा–'यह बताओ, तुम जल कहा से ग्रहण करोगे?'

चातक-पुत्र चुप। उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नही किया था! वह सोचता था, जिस प्रकार लाखो जीव-जन्तु जल पीते हैं, उसी प्रकार मै भी पीऊगा। परन्तु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ मे न आया था।

लड़के को चुप देखकर पिता ने समझा——कमजोरी यही है। वह जानता था कि कमजोरी पर ऊपर से ही आक्रमण करना विजय की पहली सीढी है——'चुप कैसे रह गये? बताओ, तुम जल कहां से ग्रहण करोगे?'

हिचकिचाकर——अपनी बात स्वयं ही खण्ड खण्ड करते हुए लड़के ने कहा——'जहा से और दूसरे ग्रहण करते हैं, वही से मै भी करूगा।'

पिता ने कहा——'पडौस मे वह पोखरी है। अनेक पशु-पक्षी और आदमी भी वहां जल पीते है। तुम वहा जल पी सकोगे? बोलो, है हिम्मत?'

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आ गई। अह, उसमे कितनी गन्दगी है! पत्ते, सूखी डठलें आदि गिर-गिर कर उसमे सडती रहती है। कीडे कुलबुलाते हुए उसमे

'घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नही करते। यही हमारे कुल का व्रत है। इस व्रत के कारण अपने गोत्र मे न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अनर्थ।'

'आप कहते है—कोई अनर्थ नही हुआ, मै कहता हूं, प्यास की इस यन्त्रणा से बढकर और अनर्थ क्या होगा। जहां से भी होगा मै जल ग्रहण करूंगा ही।'

चातक सिहर कर पंख फड़फड़ाने लगा। मानो उसने उन अश्राव्य वचनों और कानों के बीच मे कोलाहल की परिखा-सी खड़ी कर देनी चाही! थोड़ी देर तक चुप रहकर वह बोला—'बेटा, धैर्य रख। अपने इस व्रत के कारण ही पानी बरसता है और धरती-माता की गोद हरी-भरी होती है। यह व्रत इस तरह नष्ट कर देने की वस्तु नही।'

लाड़ले लड़के ने कहा—'व्रत पालन करते हुए इतने दिन तो हो गये, पानी का कही चिह्न तक नही है! गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी-नाले सब सूख गये। फिर सूर्य के और निकट रहने वाले आकाश के मेघों मे पानी टिक ही कैसे सकता है?'

'बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवन-दान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिये थोड़ी-सी क्षुधा सहन करना अनिवार्य ही नहीं आवश्यक भी है।'

'पिता जी, मै थोड़ी-सी क्षुधा से नही डरता। परन्तु यह भी नही चाहता कि क्षुधा ही क्षुधा सहन करता रहूं। मै ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हू और देवताओं का अभिशाप लेकर भी मै इसे तोड़ दूगा। घनश्याम को भी तो सोचना चाहिये था कि उनके बिना किसी के

प्राण निकल रहे है। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिये नहर, तालाब और कुओं का बदोबस्त कर लिया है। कृषि ने आपकी तरह सिर नही हिलाया कि मै तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नही छुऊगा। हम ही क्यों इस तरह कष्ट सहे। आप चाहे मुझे रक्खे या छोडे, मै यह झझट न मानूगा।'

चातक ने देखा—मामला बेढब हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा—'यह बताओ, तुम जल कहा से ग्रहण करोगे?'

चातक-पुत्र चुप। उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नही किया था! वह सोचता था, जिस प्रकार लाखो जीव-जन्तु जल पीते है, उसी प्रकार मै भी पीऊंगा। परन्तु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ मे न आया था।

लड़के को चुप देखकर पिता ने समझा—कमजोरी यही है। वह जानता था कि कमजोरी पर ऊपर से ही आक्रमण करना विजय की पहली सीढी है—'चुप कैसे रह गये? बताओ, तुम जल कहां से ग्रहण करोगे?'

हिचकिचाकर—अपनी बात स्वयं ही खण्ड खण्ड करते हुए लडके ने कहा—'जहा से और दूसरे ग्रहण करते है, वही से मै भी करूगा।'

पिता ने कहा—'पडौस मे वह पोखरी है। अनेक पशु-पक्षी और आदमी भी वहा जल पीते है। तुम वहा जल पी सकोगे? बोलो, है हिम्मत?'

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आ गई। अह, उसमें कितनी गन्दगी है! पत्ते, सूखी डंठलें आदि गिर-गिर कर उसमे सड़ती रहती है। कीडे कुलबुलाते हुए उसमे

साफ दिखाई दे सकते है। लोग उसमें कपड़े निखारने आते है, या गदे करने, कई बार सोचने पर भी वह समझ न सका था। एक बार एक आदमी को अंजुली से पानी पीते देख उसने पिता से कहा था—'देखो पिता जी, ये कैसे घृणित जीव हैं। अवश्य ही उसने अपने व्रत का जिक्र उस समय नही किया था, परन्तु उसके मन मे उसी का गर्व छलक उठा था। अब इस समय वह पिता से कैसे कहे कि मै उस पोखरी का पानी पीऊंगा ?'

चातक बोला—'बेटा, अभी तुम नासमझ हो । चाहे जहां से पानी ग्रहण करना इस समय तुम आसान समझ रहे हो। परन्तु जब इसके लिये बाहर निकलोगे तब तुम्हे मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ करोडों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ो की तृप्ति। तुझ से अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा?'

चातक-पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करने वाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिता की बात बिना सुने वह बोल उठा—'मै गगा-जल ग्रहण करूगा।'

चातक ने कहा—'गंगा जी तो यहां से पांच दिन की उड़ान पर है। तू नही मानता तो जा। परन्तु यदि तूने और कही एक बूद भी ली, तो हमे मुह न दिखाना।'

चातक-पुत्र प्रणाम करके फर्र से उड़ गया।

२

कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था। छोटी-छोटी दो कोठियां, फिर उन्ही के अनुरूप आगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुक कर घर के भीतर आश्रय लेने की बात

सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के 'दत्तक' से पूरी किया चाहती थी !

उस घर में और कुछ हो या न हो, आंगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिये वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता तथा सघनता ने चातकपुत्र को अपने निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम पाकर भी उसके जी मे एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पकी निबौरी की तरह उस वेदना मे भी कुछ माधुर्य था !

नीचे वृक्ष की छाया मे बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी अभी कुछ दिन पहले तक, उसके पैरों मे जी .न-यात्रा की इतनी ही मंजिल तय करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस मे सुलह करके म नो आधे-आधे शरीर का बटवारा कर लिया ! स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर मे १५-१६ वर्ष का एक मात्र पुत्र, गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रति-दिन सध्या समय तक लौट आता था। आज अभी तक नही आया था, इसलिये बुद्धन उसके लिये छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आये थे। इधर-उधर चारो ओर सन्नाटा था और घर मे अकला बुद्धन। यद्यपि उसमें खाट के नीचे तक उतरने की शक्ति नही थी, तो भी उसका मन न जाने कहां-कहा चौकडी भर रहा था। गोकुल सवेरे थोड़े-से चने खाकर काम पर गया था। बुद्धन के लिए भी थोड़े-से चने और पीने का पानी यथास्थान रख

साफ दिखाई दे सकते है। लोग उसमें कपड़े निखारने आते है, या गंदे करने, कई बार सोचने पर भी वह समझ न सका था। एक बार एक आदमी को अंजुली से पानी पीते देख उसने पिता से कहा था---'देखो पिता जी, ये कैसे घृणित जीव हैं। अवश्य ही उसने अपने व्रत का जिक्र उस समय नही किया था, परन्तु उसके मन मे उसी का गर्व छलक उठा था। अब इस समय वह पिता से कैसे कहे कि मै उस पोखरी का पानी पीऊगा ?'

चातक बोला---'बेटा, अभी तुम नासमझ हो । चाहे जहां से पानी ग्रहण करना इस समय तुम आसान समझ रहे हो। परन्तु जब इसके लिये बाहर निकलोगे तब तुम्हे मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुझ से अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा?'

चातक-पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करने वाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिता की बात बिना सुने वह बोल उठा---'मै गंगा-जल ग्रहण करूगा।'

चातक ने कहा---'गंगा जी तो यहां से पांच दिन की उड़ान पर है। तू नही मानता तो जा। परन्तु यदि तूने और कही एक बूद भी ली, तो हमे मुह न दिखाना।'

चातक-पुत्र प्रणाम करके फर्र से उड गया।

२

कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था। छोटी-छोटी दो कोठियां, फिर उन्ही के अनुरूप आगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुक कर घर के भीतर आश्रय लेने की बात

सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के 'दत्तक' से पूरी किया चाहती थी !

उस घर मे और कुछ हो या न हो, आंगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिये वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता तथा सघनता ने चातकपुत्र को अपने निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम पाकर भी उसके जी मे एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पकी निबौरी की तरह उस वेदना मे भी कुछ माधुर्य था !

नीचे वृक्ष की छाया मे बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी अभी कुछ दिन पहले तक, उसके पैरों मे जी .न-यात्रा की इतनी ही मजिल तय करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह करके म नो आधे-आधे शरीर का बटवारा कर लिया ! स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर मे १५-१६ वर्ष का एक मात्र पुत्र, गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रति-दिन सध्या समय तक लौट आता था। आज अभी तक नही आया था, इसलिये बुद्धन उसके लिये छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आये थे। इधर-उधर चारों ओर सन्नाटा था और घर में अकला बुद्धन। यद्यपि उसमे खाट के नीचे तक उतरने की शक्ति नही थी, तो भी उसका मन न जाने कहां-कहा चौकड़ी भर रहा था। गोकुल सवेरे थ.ड़े-से चने खाव र काम पर गया था। बुद्धन के लिए भी थोडे-से चने और पीने का पानी यथास्थान रख

मना कर दिया है। मुफ्त के ये रुपये मै न लूगा।

महते के सजल नेत्र विस्मय से खुले ही रह गये। गोकुल थोडी ही देर में उस अन्धकार मे उनकी आंखों से ओझल हो गया।

× × ×

सव वृत्तान्त सुना कर गोकुल अपराधी की भांति खड़ा हो कर बोला—'बप्पा, आज खाने के लिये कुछ नही है, महते से कुछ उधार माग लाता तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नही।

बुद्धन की आंखों से झर-झर आंसू झरने लगे। गोकुल को अपनी दोनो भुजाओ मे भर कर उसने छाती से लगा लिया। आनन्दातिरेक ने उसका कण्ठावरोध कर दिया। उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर मे प्राणों का सचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा वह दो एक दिन की तो बात ही क्या जीवन भर की क्षुधा शांत कर सकती है। धन सम्पत्ति, मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ-से प्रतीत होने लगी। मानो एकाएक उसके सब दु ख-रोग दूर हो गये है। अब वह बिना किसी चिन्ता के मृत्यु का आलिगन इसी क्षण कर सकता है।

बड़ी देर मे अपने को सभाल कर बुद्धन बोला—अच्छा ही किया बेटा, जो तू महते से रुपये उधार नही लाया। वह उधार मांगना भी एक तरह का मांगना ही होता। भगवान् ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मै तो यही देखकर निहाल हो गया। दो एक दिन की भूख हमारा कुछ नही बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने का व्रत नही तोडता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना! मुझे मालूम हो गया यह तू मुझ से भी अच्छी तरह जानता है। फिर

। कहता हूँ——सदा ऐसी ही मति रखना, चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नियत न डुलाना।

× × ×

ऊपर चातक-पुत्र सुन रहा था। उसकी आंखों से भी झर-झर आसू झरने लगे। बडी कठिनता से वह रात विता सका। पौ फटते ही बड़े सवेरे वह फिर उड़ा। परन्तु आज वह विपरीत दिशा को चला, उसी दिशा को जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान पहले से तेज हो गई थी। फिर भी अपने कोटर तक पहुंचने मे उसे चार दिन की जगह सात दिन लग गये। दूसरे दिन से ही मेघों ने उठ कर ऐसी झड़ी लगा दी कि बीच-बीच मे कई जगह रुक कर ही वह वहां तक पहुंच सका।

: १७ :

रामलीला

पेशे मे कोई पेशा हुआ भी तो रामलीला का दल रखने का पेशा हुआ । दुकानदारी का पेशा होता, जमीदारी होती, महाजनी होती, कोई भी, कैसा भी पेशा होता, तो एक बात थी; मगर रामलीला का दल रखने का पेशा—सो भी यह खानदानी पेशा है । सात पुश्तों से रामलीला का दल चला आता है । और रामरतन, जरा आधुनिक बुद्धि का आदमी है, सो अपने इस पेशे को पसन्द नही करता । मगर खानदानी चीज है । रामलीला वह छोड़ नही सकता, अपना दल तोड़ नही सकता ।

मगर ये जो ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा आकर राम बनते हैं, लक्ष्मण बनते है, वशिष्ठ और विश्वामित्र बन जाते है, सो राम-रतन को पसन्द नही । यह इस प्रकार राम की पैरोडी हो जाती है, लक्ष्मण का उपहास हो जाता है, राजा दशरथ की मिट्टी-पलीद हो जाती है, और महाज्ञानी वशिष्ठ के मुह से ज्ञान के वदले अज्ञान ही ज्यादा निकलता है । सो रामरतन रामलीला के इस पुराने ढर्रे मे परिवर्तन करेगा ।

और, वह रामरतन पाच दिन से परेशान है । वह कोई ऐसा बालक खोज रहा है, जो राम का पार्ट करे । वह किसी ऐसे ही सांवले-

सलोने बालक की खोज मे घूम रहा है। तमाम ढूंढ आया, लेकिन रामरतन को ऐसा बालक नही मिलता। जो देखने में आते हैं, वे जी को जंचते नही। सब मे एक-दो त्रुटिया अवश्य आगे आ जाती है। वैसा मनचाहा बालक नही मिलता। न जाने मिलेगा भी या नही मिलेगा। पांचवें दिन रामरतन निराश हो गया। जब राम ही नही, तो रामलीला भी नही। वह थक गया, शरीर से भी, मन से भी। उसे लगा कि जैसे वह कूड़े के अन्दर शालिग्राम ढूढ रहा है। भला कहा मिलेगा? उसे लगा कि इस इतनी बड़ी धरती पर वह सबसे ज्यादा लाचार प्राणी है। उसकी परेशानी में कोई उसका सहारा नही हो सकता। भला यह रामलीला का दल क्या हुआ कि परेशानी का भण्डार हो गया। वह थककर पार्क की एक बेंच पर बैठ गया। अगर राम का काम करने वाला बालक नही मिला, तो फिर रामलीला कैसे होगी?

कि वह देखता है कि एक वैसा ही अबोध, वैसा ही भोला, निर्मल-निश्छल, सावला-सलोना बालक पार्क मे तितलियों के पीछे दौड़ रहा है। कौन लड़का है? किसका लड़का है? अगर यह राम का पार्ट करे, तब तो फिर कुछ कहना ही नही।

उसने बालक को बुलाया। अपने पास बिठाकर उससे तरह-तरह की बाते पूछने लगा। लड़के ने कहा—मेरे पिता नही, मेरी मां है। वह क्या करती है, सो मैं नही जानता। हमारे घर मे तीन गाएं है। मां उसका दूध दूहती है। एक ग्वाला आकर उसका दाम दे जाता है। हमारे एक मामा है, सो बड़ी दूर रहते है। रंगून कहा है, जानते हो? हमारे मामा वही नौकरी करते है। जब वे आवेगे, तो मेरे लिये एक दोना मिठाई लावेगे और एक रबर की गेंद लावेगे। वे मेरे लिये कोट सिला देंगे और हाफपैंट

खरीद देंगे । फिर कोई तकलीफ नही रहेगी ।

इस बालक को पाकर रामरतन ने मानो आसमान का चांद पा लिया। राम के लायक ऐसा बालक मिलना असम्भव था। थोड़ी देर के बाद वह उस बालक की मां के सामने खड़ा था और उसकी शंकाओं का समाधान कर रहा था। उसकी मा को जो हिचक थी, सो रुपयों की आवाज सुनते ही मिट गई।

रामरतन ने बालक से पूछा—'क्यो भाई, राम का पार्ट करोगे न ?'

'करूंगा !' बालक ने सरलता से जवाब दिया।

'तीर चलाकर तब तुम ताड़का को कैसे मारोगे ?'

बालक ने छोटी-सी धनुही से तीर का ऐसा सन्धान किया कि रामरतन खुशी से निहाल हो उठा। ऐसा बढ़िया बालक कभी नही मिलेगा, कही नही मिलेगा। यह बालक राम का प्रतिरूप है। राम का अभिनय इसके पास आकर सत्य और साकार हो उठा है।

और दूसरे दिन से ही रामलीला मे दर्शकों की भीड़ तिगुनी-चौगुनी होने लगी। वह बालक राम के रूप और अभिनय को सार्थक कर रहा था।

फिर बाईस वर्ष व्यतीत हो गये। इतने दिनों की बड़ी लम्बी, अनेकानेक कहानियां है। रामरतन की रामलीला-पार्टी आज भारतवर्ष मे विख्यात है। पार्टी के पास धन है, सम्मान है, प्रतिष्ठा है। मगर फिर भी रामरतन को शांति नही। अब उसकी पार्टी ग्वालियर मे आई है। महाराज ने खास तौर पर उसकी रामलीला-पार्टी को निमंत्रण दिया है। लोग उत्सुक है। मगर रामरतन जानबूझकर पद्रह दिनों से देर कर रहा है। उसके पास रावण की कमी है। जो व्यक्ति रावण का काम करता है

सलोने वालक की खोज मे घूम रहा है। तमाम ढूढ आया, लेकिन रामरतन को ऐसा वालक नही मिलता। जो देखने मे आते है, वे जी को जचते नही। सव मे एक-दो त्रुटियां अवश्य आगे आ जाती है। वैसा मनचाहा वालक नही मिलता। न जाने मिलेगा भी या नही मिलेगा। पांचवे दिन रामरतन निराश हो गया। जव राम ही नही, तो रामलीला भी नहीं। वह थक गया, शरीर से भी, मन से भी। उसे लगा कि जैसे वह कूड़े के अन्दर शालिग्राम ढूंढ रहा है। भला कहां मिलेगा? उसे लगा कि इस इतनी बड़ी धरती पर वह सबसे ज्यादा लाचार प्राणी है। उसकी परेशानी मे कोई उसका सहारा नही हो सकता। भला यह रामलीला का दल क्या हुआ कि परेशानी का भण्डार हो गया। वह थककर पार्क की एक वेच पर वैठ गया। अगर राम का काम करने वाला वालक नही मिला, तो फिर रामलीला कैसे होगी?

कि वह देखता है कि एक वैसा ही अवोध, वैसा ही भोला, निर्मल-निश्छल, सावला-सलोना वालक पार्क में तितलियों के पीछे दौड़ रहा है। कौन लड़का है? किसका लड़का है? अगर यह राम का पार्ट करे, तव तो फिर कुछ कहना ही नही।

उसने वालक को वुलाया। अपने पास विठाकर उससे तरह-तरह की वाते पूछने लगा। लड़के ने कहा—मेरे पिता नही, मेरी मां है। वह क्या करती है, सो मैं नही जानता। हमारे घर मे तीन गाएं है। मां उसका दूध दूहती है। एक ग्वाला आकर उसका दाम दे जाता है। हमारे एक मामा है, सो वड़ी दूर रहते है। रंगून कहा है, जानते हो? हमारे मामा वहीं नौकरी करते है। जव वे आवेगे, तो मेरे लिये एक दोना मिठाई लावेगे और एक रवर की गेद लावेगे। वे मेरे लिये कोट सिला देगे और हाफपैंट

खरीद देगे । फिर कोई तकलीफ नही रहेगी।

इस बालक को पाकर रामरतन ने मानो आसमान का चांद पा लिया। राम के लायक ऐसा बालक मिलना असम्भव था। थोड़ी देर के बाद वह उस बालक की मां के सामने खड़ा था और उसकी शकाओं का समाधान कर रहा था। उसकी मा को जो हिचक थी, सो रुपयों की आवाज सुनते ही मिट गई।

रामरतन ने बालक से पूछा—'क्यो भाई, राम का पार्ट करोगे न?'

'करूगा!' बालक ने सरलता से जवाब दिया।

'तीर चलाकर तब तुम ताड़का को कैसे मारोगे?'

बालक ने छोटी-सी धनुही से तीर का ऐसा सन्धान किया कि रामरतन खुशी से निहाल हो उठा। ऐसा बढ़िया बालक कभी नही मिलेगा, कही नही मिलेगा। यह बालक राम का प्रतिरूप है। राम का अभिनय इसके पास आकर सत्य और साकार हो उठा है।

और दूसरे दिन से ही रामलीला मे दर्शको की भीड़ तिगुनी-चौगुनी होने लगी। वह बालक राम के रूप और अभिनय को सार्थक कर रहा था।

फिर बाईस वर्ष व्यतीत हो गये। इतने दिनों की बड़ी लम्बी, अनेकानेक कहानियां है। रामरतन की रामलीला-पार्टी आज भारतवर्ष मे विख्यात है। पार्टी के पास धन है, सम्मान है, प्रतिष्ठा है। मगर फिर भी रामरतन को शाति नही। अब उसकी पार्टी ग्वालियर मे आई है। महाराज ने खास तौर पर उसकी रामलीला-पार्टी को निमंत्रण दिया है। लोग उत्सुक है। मगर रामरतन जानबूझकर पंद्रह दिनों से देर कर रहा है। उसके पास रावण की कमी है। जो व्यक्ति रावण का काम करता है

वह रामरतन को ही पसन्द नही, फिर उसे ग्वालियर के नरेश कैसे पसन्द करेगे ? इतनी वड़ी इस पृथ्वी पर उसे एक रावण नही मिलता। रामरतन रावण खोज रहा है और परेशान हो रहा है। रावण की प्रतिच्छवि कही दीखती नही। उस रावण के भयानक चेहरे पर क्रोध था, हिसा थी। उसके भारी गले से कर्कश आवाज निकलती थी। हा, ऐसा ही रावण होना चाहिये, ऐसा ही रावण रामलीला मे सजेगा, ऐसा ही रावण जगन्माता जानकी का हरण कर सकता है।

और, आखिर ऐसा ही एक व्यक्ति उसे एक शराबखाने में दिखलाई दिया। उसके चेहरे पर अभिमान और क्रूरता थी। कर्कश कण्ठ से गालियों की बौछार निकल रही थी। दूकानदार से वह मुफ्त मे शराव मांग रहा था, लेकिन शराब के वदले दोनों में बेशुमार गालियों का विनिमय होने लगा था। हा, यही व्यक्ति है, जो चाहे तो रावण बनकर सचमुच सज सकता है। चेहरे पर कैसी भयानकता है, आखों मे कितना कमीनापन है। यह साधु का कपट वेश धारण करके सीता के पास जायेगा तव भी मन, वाणी और रूप की भयानकता नही मिटेगी। देखते ही लोग कह देगे, यही रावग है, कपटी, वदमाश !

रामरतन आगे बढ गया और दूकानदार के सामने चवन्नी फेंक कर बोला—भाई, मेरी ओर से इन्हे पिला दो, एक बोतल !

ऐं ! रावण की प्रतिच्छवि वाला व्यक्ति बोला—तू तो बडा दयावान् है, यार ! बतला, मैं तेरा क्या काम करूं ? तू मुझसे क्या काम लेगा ?

रामरतन ने कहा—मेरी एक रामलीला-पार्टी है, मै उसमें

तुम्हे रावण का पार्ट देना चाहता हूं।

रावण—अच्छा, मै करूगा।

और, सचमुच उसके द्वारा रावण का काम सबसे अच्छा हुआ। रामलीला, समाप्त होने के बाद रामरतन ने उससे पूछा—बोलो, आज पुरस्कार मे मै तुम्हे क्या दू ?

रावण ने कहा—मै आपसे पहले भी बहुत कुछ पा चुका हूं, अब आज क्या मागू ?

पहले ? रामरतन ने आश्चर्य से कहा—मैने तो पहले तुम्हे कभी देखा भी नही !

हां, आप मुझे नही पहचान सके, लेकिन मै ने आपको पहले दिन ही पहचान लिया था। मै वही आदमी हूं, जो लड़कपन में आपके यहां राम का पार्ट किया करता था। उसके बाद मेरे मामा आकर आपसे मुझे ले गये। याद कीजिए मैं वही आदमी हूं। एक दिन आपके यहा मै राम बनता था। याद आया ?

हां, रामरतन को अब सब याद आ गया। रावण के उस भयानक चेहरे के भीतर से रामरतन को राम की वही सांवली-सलोनी निर्मल छवि फूटती हुई-सी दिखलाई पड़ी। वह आश्चर्य से चकित हो कर बोल उठा—हां, तुम वही राम हो। मुझे याद आया, तुम वही राम हो।

: १८ :

सेब और देव

प्रोफेसर गजानन पण्डित ने अपना चश्मा पोंछकर फिर आंखो पर लगाया और देखते रह गये।

मोटर पर से उतर कर और सामान डाक वंगले में भिजवाकर उन्होने सोचा था, अभी आराम करने की जरूरत तो है नहीं, जरा घूम-घामकर पहाड़ी सौन्दर्य देख लें, और इसीलिए मोटर के अड्डे के धक्कम-धक्के से अलग होकर वे इस पहाड़ी रास्ते पर हो लिये थे। छाया मे जव चश्मे का कांच ठण्डा हो गया और उस पर उनके गर्म वदन से उठी हुई भाप जमने लगी, तव उन्होने चश्मा उतारकर रूमाल से मुह पोंछा, फिर चश्मा साफ करके आंखों पर चढ़ाया और फिर देखते रह गये।

पहाड़ी रास्ता आगे एकाएक खुल गया था। चीड़ के वृक्ष समाप्त हो गये। रास्ते को पार करता हुआ एक झरना वह रहा था। उसका जितना अंश समतल भूमि में था उस पर तो छाया थी, लेकिन जहां वह मार्ग के एक ओर नीचे गिरता था, वहां प्रपात के फेन पर सूर्य की किरणें पड़ रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि अन्धकार की कोख से चांदी का प्रवाह फूट पड़ा है—या प्रकृति-नायिका की कजरारी आंखों से स्नेह-गद्‌गद् आंसुओं की

झड़ी···और उसके पार एक चट्टान के सहारे एक पहाड़ी राजपूत बाला खड़ी थी, उसकी चौकी हुई भोली शक्ल से साफ दीखता था कि प्रोफेसर साहब का वहां अकस्मात् आ जाना उसे एकदम अनधिकार-प्रवेश मालूम हो रहा है।

प्रोफेसर साहब देहली के एक कालेज में प्राचीन इतिहास और पुरातत्त्व के अध्यापक है। वे उन थोडे से लोगों मे से हैं, जिनका पेशा और मनोरंजन एक ही है—मनोरजन के लिये भी वे पुरातत्त्व की ओर ही जाते है। यहां कुलू पहाड़ की सुरम्य उपत्यकाओं में भी वे यही सोचते हुए आये है कि यहां भारत की प्राचीनतम सभ्यता के अवशेष उन्हे मिलेगे, और हिन्दू-काल की शिल्प-कला के नमूने, और धातु या प्रस्तर या सुधा की मूर्तियां और न जाने क्या-क्या...लेकिन इतना सब होते हुए भी सौंदर्य के प्रति—जीते-जागते स्पन्दन-युक्त क्षणभंगुर सौंदर्य के प्रति—उनकी आखे अन्धी नही है। बाला को वहां खड़ी देखकर, उसके पैरो के पास बहते झरने का शब्द सुनते हुए उन्हे पहले तो एक हंसिनी का ख्याल आया, फिर सरस्वती का (यद्यपि बाला के हाथ मे वीणा नही, एक छोटी-सी छड़ी थी)। उन्होंने अपने स्वर को यथासम्भव कोमल बनाकर पूछा—तुम कहा रहती हो?

बाला ने उत्तर नही दिया, ससम्भ्रम दृष्टि से उनकी ओर देखकर जल्दी-जल्दी पहाड़ी पर चलने लगी।

प्रोफेसर साहब मुस्कराकर आगे चल दिये। बालिका का भोलापन उन्हे अच्छा-अच्छा लगा। सोचने लगे, कितने सीधे-सादे सरल स्वभाव के होते है यहां के लोग! प्रकृति की सुखद गोद मे खेलते हुए इन्हें न फिक्र है, न खटका है, न लोभ-लालच है। अपने खाने-पीने, ढोर चराने, गाने-बजाने मे दिन विता देते

हैं। तभी तो बाहर से आने वाले आदमी को देखकर संकोच होता है। अपने-आप मे लीन रहने वाले इन भोले प्राणियों को बाहर वालो से क्या सरोकार ?

आगे बढ़ते-बढ़ते प्रोफेसर साहब सोचने लगे, ऐसे भले लोग न होते तो प्राचीन सभ्यता के जो अवशेष बचे है, ये भी क्या रह जाते ? खुदा-न-खासता ये लोग यूरोपियन सभ्यता को सीखे हुए होते तो एक दूसरे को नोचकर खा जाते, उसकी राख भी न बची रहने देते। लेकिन यहा तो फाहियान के जमाने का ही आदर्श है, सबको अपने काम से मतलब है, दूसरे के काम में दखल देना, दूसरे के मुनाफे की ओर दृष्टि डालना यहां महापाप है। लोग ढोर चरने छोड़ देते हैं, शाम को ले आते है। कभी चोरी नही, शिकायत नहीं। खेती खड़ी है, और पहरेदार नही। मजाल क्या कि एक भुट्टा भी चोरी हो जाय। मेरे ख्याल मे तो अगर मै एक चवन्नी यहां राह में फेंक दूं, तो कोई उठायेगा भी नही कि न जाने किस की है और कौन लेने आये ?

रास्ता अब फिर घिर गया था, लेकिन चीड़ के दीर्घकाय वृक्षों से नही, अब उसके दोनों ओर सेब के छोटे-छोटे लचीले गात वाले पेड़, डार-डार पर लदे हुए फलों के कारण मानो विनय से झुके हुए—क्यों कि जहां सार होता है, वहां विनय अवश्य होती है, क्षुद्र व्यक्ति ही अविनयी हो सकता है—और कभी-कभी हवा से झूम-से जाते हुए। कुलू के जगत्प्रसिद्ध सेबों की प्रशंसा प्रोफेसर साहब ने सुन ही रखी थी, कई बार मंगाकर सेब खाये भी थे, लेकिन आज इस प्रकार पेड़ पर लगे हुए, असंख्य फलो को देखकर उनकी तबीयत खुश हो गई। और इससे भी अधिक खुशी हुई इस बात की कि गन्ध और स्वाद और रस की उस

विपुल राशि का न कोई रक्षक देखने आता है, न बचाव के लिये बाड़ तक लगाई गई है। पहाड़ी सभ्यता के प्रति उनका आदरभाव और भी बढ़ गया। क्या शहर मे इस तरह बाग रह सकता ? फलों के कभी पकने की नौबत न आती। और नही तो स्कूल-कालेजों के लड़के ही टिड्डी-दल की तरह आकर सब साफ कर देते और जितना खाते नही, उतना बिगाड़ देते। वहां तो कोई बाग लगाये तो दस-एक भोज पुरिये लठैत पहरेदार रखे, और चारो ओर जेल की-सी दीवार खड़ी करके कि कोई लुक-छिपकर न भागे, तब कही जाकर चैन से रह सके। और यहां——बाग की सीमा बनाने के लिये एक तार का जंगला तक नही है। पेड़ों के नीचे जो लम्बी-लम्बी घास लग रही है, वही रास्ते के पास आकर रुक जाती है, वही तक बाग की सीमा समझ लो तो समझ लो। यहा तो . . .

प्रोफेसर साहब के पास ही धम्म से कुछ गिरा। उन्होने चौक कर देखा, उन्हे आते देख एक लड़का पेड़ पर से कूदा है और उसकी अपर्याप्त आड़ मे छिपने की कोशिश कर रहा है। उसके हाथ मे दो सेब है, जिन्हे वह अपने फटे हुए भूरे कोट मे किसी तरह छिपा लेना चाहता है।

उसकी झेपी हुई आंखे और चेहरा साफ कह रहा था कि वह चोरी कर रहा है।

साधारणतया ऐसी दशा मे प्रोफेसर साहब किंचित् ग्लानि से उसकी ओर देखते और आगे चल देते, लेकिन इस समय वैसा नही कर सके। उन्हे जान पड़ा कि यह लडका उस सारी प्राचीन आर्य-सभ्यता को एक साथ ही नष्ट-भ्रष्ट किये दे रहा है जो फाहि-यान के समय से सदियो पहले से अक्षुण्ण बनी चली आई है।

वे लपककर उस लड़के के पास पहुंचे और बोले—क्यों वे वद-माश, चोरी कर रहा है ? शर्म नही आती दूसरे का माल खाते हुए ?

लड़का घवराया-सा खड़ा रहा, बोल नही सका। प्रोफेसर साहव और भड़क उठे। एक तमाचा उसके मुह पर जमाया, सेब छीनकर घास मे फेक दिये जहा वे ओझल हो गये और फिर गर्दन पकड़ कर लडके को ढकेलते हुए रास्ते की ओर ले आये।

'पाजी कही का ! चोरी करता है ? तेरे जैसों के कारण तो पहाड़ी लोग बदनाम हो गये। क्यों चुराये थे सेव ? यहां तो पैसे के दो मिलते होंगे, एक पैसे के खरीद लेता। ईमान क्यों विगाड़ता है ?'

रास्ते पर लड़के को उन्होंने छोड़ दिया। वह वही खड़ा आंसू-भरी आंखों से उधर देखता रहा जहा घास मे उसके तोड़े हुए सेव गिरकर आंखों से ओझल हो गये थे।

प्रोफेसर साहव आगे वढते हुए सोच रहे थे, खड़ा देख रहा होगा कि चोरी भी की, तो भी फल नही मिला। वहुत अच्छा हुआ। सेबो का सड़ जाना अच्छा, चोर को मिलना अच्छा नही। सड़ें, चोर को क्या हक है कि खाये ?

२

प्रोफेसर साहव एक गांव के पास आ रुके। अन्दाज से उन्होंने जाना कि यह मनाली गांव होगा और उन्हे याद आया कि यहां पर एक दर्शनीय प्राचीन मन्दिर है। गांव के लोगो से पता पूछते हुए वे मनु के मन्दिर पर पहुंच ही गये। मन्दिर छोटा था सुन्दर भी नही था, लेकिन संसार भर में मनु का एकमात्र मन्दिर होने के नाते वह अलग महत्त्व रखता था। प्रोफेसर साहव

कितनी ही देर तक एकटक होकर उसकी ओर देखते रहे, यहां तक कि देहरी पर बैठे हुए बूढ़े पुजारी का ध्यान भी उनकी ओर आकृष्ट हो गया, आने-जाने वाले तो खैर देखते ही थे।

प्रोफेसर साहब ने गद्गद् स्वर में पूछा—आस-पास और भी कोई मन्दिर है ?

पास खडे हुए एक आदमी ने कहा—नही बाबूजी, यहां कहां मन्दिर ?

'यहां मन्दिर नही ? अरे भले आदमी, यहां तो सैकड़ों मन्दिर होने चाहिये। यहा पर—'

'बाबूजी, यहां तो लोग मन्दिर देखने आते नही। कभी-कभी कोई आता है तो यह मनूरिखि का मन्दिर देख जाता है, बस और तो हम जानते नही।'

पुजारी ने खांसते हुए पूछा—कौन-सा मन्दिर देखियेगा बाबू ?

'कोई मन्दिर हो, आस-पास के सब मन्दिर-मूर्तियां मैं देखना चाहता हूं।'

पुजारी ने थोड़ी देर सोचकर कहा–और तो कोई नही, उस चोटी के ऊपर जगल मे एक देवी का स्थान है। वहा पहले कभी एक किला भी था, जिसके अन्दर देवी के थान मे पूजा होती थी, पर अब तो उसके कुछ पत्थर ही पड़े है। वहां कोई जाता नही। अब उसमें भूत वसते हैं।

प्रोफेसर साहब कुछ मुस्कराये, लेकिन बोले—'कैसे भूत? '

'कहते हैं कि पुराने राजाओं के भूत रहते हैं—वे राजा बड़े परतापी थे।'

'अरे उन भूतों से मेरी दोस्ती है ! '—कहकर प्रोफेसर साहब

ने रास्ता पूछा, और क्षण भर सोचकर पहाड़ पर चढ़ने लगे। पुजारी ने 'पास' ही बताया था, तो मील भर से अधिक नहीं होगा, और अभी तीन बजे हैं, शाम होने तक मजे मे बंगले पर पहुंच जाऊंगा।

जगल का रूप बदलने लगा। बड़े-बड़े पेड़ समाप्त हो गये, अब छोटी-छोटी झाड़िया ही दीख पड़ने लगी। यह पहाड़ का वह मुख था, जो हवा के थपेड़ों से सदा पिटता रहता था—जाड़ों मे तो बर्फ की चोटें यहा लगे हुए पेड़-पौधों को कुचल डालती। प्रोफेसर साहब की समझ मे आने लगा कि यह ऊंचा शिखर किले के लिए बहुत उपयुक्त जगह है और यह भी जान गये कि यहां बना हुआ किला उजड़ कर कितनी जल्दी निरवशेष हो जायगा।

झाडियां भी छोटी होती चली। घास के बजाय अब पथरीली जमीन आई, जिसमे किसी तरफ कोई बनी हुई पगडण्डी नही थी, जिधर चले जाओ वही मार्ग। कही-कही लाल पत्थर के भी कुछ टुकडे दीख जाते थे, जो शायद किले की इमारत में कही लगे होंगे, नही तो उधर लाल पत्थर नही होता। कही-कही पत्थर और मिट्टी के स्तूपाकार टीले की आड़ मे कोई गाढे रग के पत्तों वाली झाड़ी लगी हुई दीख जाती, तो वह आस-पास के उजाड़ सूनेपन को भी गहरा कर देती। सांझ के धुधले में ऐसी झाड़ी को देख-कर स्तूप मे से धूम्रवत् निकलते हुए किसी प्रेत की कल्पना होना कोई असम्भव बात नही थी।

एक ऐसे स्तूप की आड़ मे प्रोफेसर साहब ने देखा, एक गड्ढे मे कीच भरी है जिसकी नमी से पोसे जाते हुए दो वृक्ष खड़े हैं और उनके नीचे पत्थर का एक छोटा-सा मन्दिर है, जिसका द्वार

बन्द पड़ा है।

प्रोफेसर साहब ने कुण्डे मे अटकी हुई कील निकाली तो द्वार खुलने के बजाय आगे गिर पड़ा—उसके कब्जे उखड़े हुए थे। उन्होंने किवाड़ को उठाकर एक ओर धर दिया, थोड़ी देर पीछे हटकर खड़े रहे कि बन्द और सील के कारण बदबूदार हवा बाहर निकल जाय, फिर भीतर झाकने लगे।

मन्दिर की बुरी हालत थी। भीतर न जाने कब के बलि-पशुओं के सीग—बकरे के और हिरन के—पड़े हुए थे जो सूखकर धूल रग के हो गये थे—उन पर कीड़े भी चल रहे थे। फर्श के पत्थरो के जोड़ों मे से काही उग आई थी। उन सीगों के ढेर से परे देवी के काले पत्थर की मूर्ति एक ओर को लुढक गई थी। पास में पड़ी हुई गणेश की पीतल की मूर्ति जंग से विकृत हो रही थी। केवल दूसरी ओर खड़ा श्वेत पत्थर का शिवलिग अब भी साफ, चिकना और सधे हुए सिपाही की तरह शान्त खडा था। आस-पास की जर्जर अवस्था मे उसके उस दर्पोन्नत भाव से ऐसा जान पड़ता था, मानो क्रुद्ध होकर कह रहा हो, मेरी इस निभृत अन्तःशाला मे आकर मेरे कुटुम्ब की शान्ति भंग करने वाले तुम कौन ?

दो-एक मिनट प्रोफेसर साहब देहरी पर खड़े-खड़े ही इस दृश्य को देखते रहे। फिर उन्होने बाह पर टंगा हुआ अपना ओवरकोट नीचे रखा, एक बार चारों ओर देखकर निर्जन पाकर भी जूते खोल देना ही उचित समझा और भीतर जाकर देवी की मूर्ति उठाकर देखने लगे।

मूर्ति अत्यन्त सुन्दर थी। पांच सौ वर्ष से कम पुरानी नहीं थी। इस लम्बी अवधि का उस पर जरा भी प्रभाव नही पड़ा

था—या पडा था तो पत्थर को और चिकना करके मूर्ति को सुन्दर ही बना गया था। मूर्ति कही बिकती तो तीन-चार हजार से कम की न होती—किसी अच्छे पारखी के पास हो तो दस हजार भी कुछ अधिक मूल्य न होता और यह यहां ऐसी उपेक्षित हालत में पड़ी है। न जाने कब से कोई इस मन्दिर तक आया भी नही है।

प्रोफेसर साहब ने मूर्ति ठीक स्थान पर करके सीधी रख दी और फिर देहरी पर आकर उसका सौन्दर्य देखने लगे।

पाच सौ वर्ष! पांच सौ वर्ष से यह यहीं पड़ी होगी? न जाने कितनी पूजा इसने पाई होगी, कितनी बलियों के ताजे, गर्म, पूत रक्त से स्नान करके अपना दैवी सौदर्य निखारा होगा, और अब कितने बरसों से इन रेंगते हुए कीड़ों की लम्बी-लम्बी जिज्ञासु मूछों की ग्लानिजनक गुदगुदाहट सह रही होगी· · ·उफ, देवत्व की कितनी उपेक्षा! मानव नश्वर है, यह मर जाय और उसकी अस्थियो पर कीडे रहें, यह समझ मे आता है, लेकिन देवता· · · पत्थर जड़ है, उसका महत्त्व कुछ नही! लेकिन मूर्ति तो देवता की ही है, देवत्व की, चिरन्तनता की निशानी तो है। एक भावना है, पर भावना आदरणीय है। क्या यह मूर्ति यही पड़े रहने के काबिल है? इन कीड़ों के लिए जिनके पास श्रद्धा को दिल नही, पूजने को हाथ नही, देखने को आंखें नही, छूने को त्वचा नही, टटोलने को ये हिलती हुई गन्दी मूछें है· · यह मूर्ति कही ठिकाने से होती—

न जाने क्यों प्रोफेसर साहब ने एकाएक मंदिर द्वार से हटकर चारों ओर घूमकर देखा, फिर देखा। न जाने क्यों आसपास निर्जन पाकर तसल्ली की सांस ली और फिर वहां आ खड़े हुए।

मूर्ति गणेश की भी बुरी नही, लेकिन वह उतनी पुरानी नहीं, न इतनी सुन्दर शैली पर निर्मित है। पीतल की मूर्त्ति मे कभी वह बात आ ही नही सकती जो पत्थर मे होती है। देवी की उस मूर्ति को देखते-देखते प्रोफेसर साहब के हृदय की स्पन्दन गति तीव्र होने लगी——इतनी सुन्दर जो थी वह! वे फिर आगे बढकर उसे उठाने को हुए, लेकिन फिर उन्होंने बाहर झाककर देखा, पर वहां कोई नहीं था, कोई आता ही नही उस बेचारे उजडे हुए मन्दिर के पास——किसे परवाह थी निर्जन को अपनी दीप्ति से जगमग करती हुई उस देवी की! देवी के प्रति दया और सहानुभूति से गद्‌गद् होकर प्रोफेसर साहब फिर भीतर आये, लपक कर मूर्ति को उठाया और अपने धड़कते हुए हृदय को शांत करने की कोशिश करते हुए एकटक उसे देखने लगे।

दिल इतना धड़क क्यों रहा है? प्रोफेसर साहब को ऐसा लगा जैसे वे डर रहे है। फिर उन्हे इस विचार पर हसी-सी आ गई। डर किससे रहा हूं मै? प्रेतों से? मै भी क्या यहां के लोगों की तरह अन्ध-विश्वासी हूं जो प्रेतों को मानूगा? कविता के लिहाज से भले ही मुझे यह सोचना अच्छा लगे कि यहां प्रेत बसते है, और रात को जब अधेरा हो जाता है, तब इस बंद मंदिर में आकर देवी के आस-पास नाचते होगे · · · देवी है, शिव है, उनके गण भी तो होने चाहिएं। रात को मूर्तियों को घेर-घेर कर नाचते होगे और इन न जाने कब के वलि-पशुओं के भस्मीभूत सीगों से प्रेतोचित प्रसाद पाते होंगे! और दिन मे——मन्दिर की कन्दराओ में, दरारों मे छिपकर अपनी उपास्य मूर्तियो की रक्षा करते होंगे देखते होगे कि कौन आता है, क्या करता है · · ·

उन्होंने फिर मूर्ति को रख लिया और लौटकर देखा। उन्हें

एकाएक लगा जैसे उस अखण्ड नीरवता मे कोई छाया-सा आकर उनके पीछे भागकर कही छिप गया है। प्रेत! वे फिर एक रुकती-सी हंसी हसकर बाहर निकल आये। इस घोर निर्जन ने मेरे शहर के शोर से उलझे स्नायुओ को और उलझा दिया है! इसी नतीजे पर वे पहुचे और फिर मदिर की ओर देखने लगे।

दिन ढल रहा था। मन्दिर की लम्बी पड़ती हुई छाया को देखकर प्रोफेसर साहब को ऐसा लगा, मानो वह दूर हटती-हटती भी मन्दिर से अलग होना नही चाहती, उससे चिपटी हुई है, मानो उसकी रक्षा करना चाहती हो, मानो यह मन्दिर और उसकी मूर्तियां उस छाया की गोद के शिशु हों। प्रोफेसर साहब का मन भटकने लगा।

इजिप्ट के पिरामिड भी इतने ही उपेक्षित पड़े थे। यह मंदिर आकार मे बहुत छोटा है, वे विराट थे; लेकिन उपेक्षा तो वही थी। उनमे भी न जाने क्या-क्या बाते फैला रखी थीं, भूत-प्रेतो की। अन्त मे यूरोप के पुरातत्वविद् साहस करके वहां गये, उन्होंने उनमें प्रवेश किया, और अब संसार के बड़े-बड़े संग्रहालयों मे वे खजाने पड़े है और महत्व के अनुरूप सम्मान पाते है। फिला-डेलफिया के अजायबघर मे नूतां खामेन की वह स्वर्णमूर्ति—उस नौ सेर खरे सोने का ही मूल्य तीस हजार रुपये होगा—फिर प्राचीनता का मूल्य अलग और उसमे जड़े हुए हीरे-जवाहरात का अलग ··· कुल मिलाकर लाखों रुपये की चीज है वह ···

वे फिर भीतर गये। मूर्ति उठाई और रखकर बाहर आ गये। उन्होंने फिर सब ओर देखा। कोई नही था। सूर्य भी एक छोटे-से बादल के पीछे छिप गया था।

एकाएक उनकी घबराहट का कारण स्पष्ट हो गया। कुछ

ठण्ड-सी जानकर उन्होंने जल्दी से ओवरकोट पहना और फिर भीतर चले गये।

मूर्ति के उपयुक्त यह स्थान कदापि नही है। मन्दिर है, पर जहां पूजा ही नही होती वह कैसा मन्दिर ? और क्या गाव वाले परवाह करते है ? यहां मंदिर भी गिर जाय तो शायद महीनों उन्हें पता ही न लगे—कभी किसी भटकी हुई भेड़-बकरी की खोज में आया हुआ गड़रिया आकर देखे तो देखे। यहा मूर्ति का पड़ा रहने देना भूल ही नही, पाप है।

इस निश्चय पर आकर भी उन्होंने एक बार बाहर आकर तसल्ली की कि कही कोई देख तो नही रहा है, तब लौटकर मूर्ति उठाकर जल्दी से कोट के भीतर छुपाई, किवाड को यथास्थान खड़ा किया, बूट एक हाथ में उठाये और बिना लौटकर देखे हुए उतरने लगे।

जब देवी का स्थान और उसके ऊपर खडे दोनों पेड़ों की फुनगी तक आखों की ओट हो गई, तब उन्होने रुककर बूट पहने और फिर धीरे-धीरे उतरते हुए ऐसा मार्ग खोजने लगे जिससे गांव में से होकर न जाना पड़े, शिखर के दूसरे मुख से ही वे उतर सके।

गाव मील भर पीछे छूट गया था। सेबों के बगीचे फिर शुरू हो गये थे। कही कोई मधु पीकर अघाया हुआ मोटा-सा काला भौरा प्रोफेसर साहब के कोट से टकरा जाता था, कभी कोई तितली उनका रास्ता काट जाती थी। सूर्य की धूप लाल हो गई थी—वे सब अपना-अपना ठिकाना खोज रहे थे। प्रोफेसर साहब भी अपने ठिकाने को जा रहे थे। उनका हृदय आह्लाद से भर रहा था। उनका पहला ही दिन कितना सफल हुआ था ? कितना

सौदर्य उन्होंने देखा था—और कितना सौदर्य, बहुमूल्य सौंदर्य उन्होंने पाया था। कुलू का अनिर्वचनीय सौदर्य ! वास्तव में वह देवताओं का अंचल है . . .

उस समय प्रोफेसर साहब के भीतर जो कुलू-प्रेम का ही नही, मानव-प्रेम का, संसार-भर की शुभेच्छा का रस उमड़ रहा था, उसकी बराबरी कुलू के रस-भरे सेब भी क्या करते ! प्रोफेसर साहब की स्नेह उंडेलती हुई दृष्टि के नीचे वे मानो और पककर और रस से भर जाते थे, उनका रंग कुछ और लाल हो आता था। कितने रस गद्-गद् हो रहे थे प्रोफेसर साहब !

सेब के बाग में फिर कही धमाका हुआ। प्रोफेसर साहब ने देखा, एक लड़का उन्हे देखकर शाख से कूदा है, उसके कूदने के धक्के से फलों की लदी हुई शाखा टूटकर आ गिरी है।

प्रोफेसर साहब ने रोब के स्वर में कहा—क्या कर रहा है ?

लडके ने सहमकर उनकी ओर देखा—वही लड़का था ! हाथ का थोडा-सा खाया हुआ सेब वह कोट के गुलूबंद के भीतर छिपा रहा था।

प्रोफेसर साहब के तन मे आग लग गई। लपककर बालक के कोट का गला उन्होने पकड़ा, झटका देकर बाहर गिराया, दो तमाचे उसके मुह पर लगाते हुए कहा—बदमाश, फिर चोरी करता है ! अभी मैं डांट के गया था, बेशर्म को शर्म भी नहीं आती।

उन्होंने लड़के को छाती में धक्का दिया। वह लड़खड़ाकर कुछ दूर जा पड़ा, गिरने को हुआ, संभल गया, फिर एक हाथ से कोट को वही से थामकर जहां प्रोफेसर ने धक्का दिया था, एक दर्दभरी चीख मार कर रो उठा।

चीख सुनकर प्रोफेसर साहब को कुछ शांति हुई, कुछ आनन्द-

सा हुआ। विद्रुप से उन्होंने कहा—क्यों, दुखती है छाती? और छिपाओ सेब वहां पर!

बात मे भरे हुए तिरस्कार को और तीखा बनाने के लिए उनके हाथ ने उनका अनुकरण किया, उठकर तेजी से प्रोफेसर साहब के ओवरकोट के कालर मे घुसा।

एकाएक प्रोफेसर साहब पर मानो गाज गिरी। एक चौंधिया देने वाला आलोक क्षण-भर उनके आगे जलकर एक वाक्य लिख गया—इसने तो सेब चुराया है, तुम देवस्थान लूट लाये!

सहमे हुए स्तभित-से प्रोफेसर साहब क्षण भर खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे उलटे पांव गांव की ओर चल पड़े।

तर्क उन्हे सुझाने लगा कि यह बेवकूफी है, उनकी दलील बिल्कुल गलत है, तुलना आधारहीन है; लेकिन वे न जाने कैसे इस सब बुद्धि की प्रेरणा के प्रति बहरे हो गये थे। जैसे कोलाहल बढ़ने लगा, उसे रोक रखने के लिए उनकी गति भी तीव्रतर होती गई। जब व आंधी की तरह गांव मे से गुजरे, तब घर जाता हुआ प्रत्येक व्यक्ति कुछ विस्मय से उनकी ओर देखता और उन्हे लगता कि वे उनकी छाती की ओर ही देख रहे है, जैसे उस काले ओवर-कोट मे छिपी हुई देव-मूर्ति को और उसके पीछे भी प्रोफेसर साहब के दिल में बसे हुए पाप को वे खूब अच्छी तरह जानते हैं।

अधेरा होते-होते वे मन्दिर पर पहुंचे। किवाड़ एक ओर पटककर उन्होंने मूर्ति को यथास्थान रखा। लौटकर चलने लगे तो आसपास के वृक्ष अंधेरे मे और भयानक हो गये थे। सुनसान ने उन्हें फिर सुझाया कि वे एक निधि को नष्ट कर रहे है, लेकिन जाने क्यो उनके मन मे शांति उमड़ आई। उन्हे लगा कि दुनियां बहुत ठीक है, बहुत अच्छी है।

: १९ :

दुःख

जिसे मनुष्य सर्वापेक्षा अपना समझ भरोसा करता है, जब उसी से अपमान और तिरस्कार प्राप्त हो मन वितृष्णा से भर जाता है; एकदम मर जाने की इच्छा होने लगती है; इसे शब्दों में बता सकना सम्भव नही।

दिलीप ने हेमा को पूर्ण स्वतन्त्रता दी थी। वह उसका कितना आदर करता था; कितनी आन्तरिकता से वह उसके प्रति अनुरक्त था! बहुत से लोग इसे 'अति' कहेगे। इस पर भी जब वह हेमा को सतुष्ट न कर सका और हेमा केवल दिलीप के उसकी सहेली के साथ दूसरे 'शो' मे सिनेमा देख आने के कारण रात भर रूठी रहकर सुबह उठते ही मां के घर चली गई, तब दिलीप के मन में क्षोभ का अत न रहा।

सितम्बर का अन्तिम सप्ताह था। वर्षा की ऋतु बीत जाने पर भी दिन भर पानी बरसता रहा। दिलीप बैठक की खिड़की और दरवाजों पर पर्दे डाले बैठा था। वितृष्णा और ग्लानि में समय स्वय यातना बन जाता है। एक मिनट गुजरना मुश्किल हो जाता है। समय को बीतता न देख दिलीप खीझ कर सो जाने का यत्न करने लगा। इसी समय जीने पर से छोटे भाई के धम-धमकर

उतरते चले आने का शब्द सुनाई दिया। अलसाई हुई आंख को आधा खोल उसने दरवाजे की ओर देखा।

छोटे भाई ने पर्दे को हटाकर पूछा—'भाई जी, आपको कहीं जाना न हो तो मै मोटर-साइकिल ले जाऊं ?'

इस विघ्न से शीघ्र छुटकारा पाने के लिए दिलीप ने हाथ के इशारे से उसे इजाजत्त दे, आंख बन्द कर ली।

दीवार पर टंगे क्लाक ने कमरे को गुजाते हुए छ बज जाने की सूचना दी। दिलीप को अनुभव हुआ—क्या वह यों ही कैद में पड़ा रहेगा। उठकर खिड़की का पर्दा हटाकर देखा, बारिश थम गई थी। अब उसे दूसरा भय हुआ, कोई आ बैठेगा और अप्रिय चर्चा चला देगा।

वह उठा। भाई का साइकिल ले, गली के कीचड से बचता हुआ और उससे अधिक लोगों की निगाहों से छिपता हुआ वह मोरी दरवाजे से बाहर निकल, शहर की पुरानी फसील के बाग से होता हुआ मिटो पार्क जा पहुचा। उस लबे चौड़े मैदान में पानी से भरी घास पर पछवा के तेज झोकों मे ठिठुरने के लिए उस समय कौन आता ?

उस एकात मे एक बेच के सहारे साइकिल खड़ा कर वह बैठ गया। सिर से टोपी उतार बेच पर रख दी। सिर में ठण्ड लगने से मस्तिष्क की व्याकुलता कुछ कम हुई।

ख्याल आया, यदि ठण्ड लग जाने से वह बीमार हो जाए, उसकी हालत खराब हो जाये तो वह चुपचाप शहीद की तरह अपने दु.ख को अकेला ही सहेगा। 'किसी को' अपने दुःख का भाग लेने के लिए न बुलायेगा। जो उस पर विश्वास नही कर सकता, उसे क्या अधिकार कि उसके दु ख का भाग बंटाने आये। एक दिन

मृत्यु दबे पांव आयेगी और उसके रोग के कारण, हृदय की व्यथा और रोग को ले, उसके सिर पर सांत्वना का हाथ फेर उसे शांत कर चली जायेगी। उस दिन जो लोग रोने बैठेंगे, उनमें हेमा भी होगी। उस दिन उसे खोकर हेमा अपने नुकसान का अन्दाजा कर अपने व्यवहार के लिए पछतायेगी। यही बदला होगा दिलीप के चुपचाप दुःख सहते जाने का। निश्चय कर उसने सन्तोष का एक दीर्घ निश्वास लिया। करवट बदल ठण्डी हवा खाने के लिए वह बैठ गया।

समीप तीन फर्लांग पर मुख्य रेलवे लाइन से कितनी ही गाड़िया गुजर चुकी थीं। उधर दिलीप का ध्यान न गया था। अब जव फ्रंटियरमेल तूफान वेग से, तीव्र कोलाहल करती हुई, गुजरी तो दिलीप ने उस ओर देखा। लगातार फर्स्ट और सैकण्ड के डिब्बों से निकलने वाले तीव्र प्रकाश से वह समझ गया—फ्रंटियर मेल जा रहा है, साढ़े नौ बज गये।

स्वयं सहे अन्याय के प्रतिकार की एक सम्भावना देख उसका मन कुछ हलका हो गया था। वह लौटने के लिए उठा। शरीर में शैथिल्य की मात्रा वाकी रहने के कारण साइकल पर न चढ वह पैदल-पैदल बागोबाग, बादशाही मसजिद से टकसाली दरवाजे और टकसाली से भाटी दरवाजे पहुचा। मार्ग मे शायद ही कोई व्यक्ति दिखाई दिया हो। सड़क किनारे स्तब्ध खड़े बिजली के लैम्प निष्काम और निर्विकार भाव से अपना प्रकाश सड़क पर डाल रहे थे। मनुष्यों के अभाव की कुछ भी परवाह न कर, लाखों पतंगे गोले बांध-बाध कर, इन लम्पों के चारों ओर नृत्य कर रहे थे। और जगत के यह अद्‌भुत नमूने थे। प्रत्येक पतंगा एक नक्षत्र की भांति अपने मार्ग पर चक्कर काट रहा था। कोई छोटा, कोई

बड़ा दायरा बना रहा था। कोई दांये को, कोई बांये को, कोई आगे को, कोई विपरीत गति में, निरन्तर चक्कर काटते चले जा रहे थे। कोई किसी से टकराता नही। वृक्षो के भीगे पत्ते विजली के प्रकाश मे चमचमा रहे थे।

एक लैम्प के नीचे से आगे बढ़ने पर उसकी छोटी परछाईं उसके आगे फैलती चलती। ज्यों-ज्यों वह लैम्प से आगे बढता, परछाईं पलट कर पीछे हो जाती। बीच-बीच मे वृक्षों की टहनियों की परछाई उसके ऊपर से होकर निकल जाती। सड़क पर पड़ा प्रत्येक भीगा पत्ता लैम्पों की किरणों का उत्तर दे रहा था। दिलीप सोच रहा था—मनुष्य के बिना भी संसार कितना व्यस्त और रोचक है?

कुछ कदम आगे बढने पर सड़क किनारे नीबू के वृक्षों की छाया मे कोई श्वेत सी चीज दिखाई दी। कुछ और बढ़ने पर मालूम हुआ, कोई छोटा-सा लड़का सफेद कुर्ता-पायजामा पहिरे, एक थाली सामने रखे कुछ बेच रहा है।

बचपन मे गली मुहल्ले के लड़कों के साथ उसने अक्सर खोमचे वाले से सौदा खरीद कर खाया था। अब वह इन बातों को भूल चुका था। परन्तु इस सर्दी में सुनसान सड़क पर, जहां कोई आने-जाने वाला नही, यह खोमचा बेचने वाला कैसे बैठा है?

खोमचे वाले के क्षुद्र शरीर और आयु ने भी उसका ध्यान आर्कषित किया। उसने देखा, रात मे सौदा बेचने निकलने वाले इस सौदागर के पास मिट्टी के तेल की ढिवरी तक नही। समीप आकर उसने देखा, वह लडका सर्द हवा मे सिकुड कर बैठा था। दिलीप के समीप आने पर उसने आशा की एक निगाह उसकी ओर डाली और फिर आखें झुका ली।

दिलीप ने और ध्यान से देखा लड़के के मुख पर खोमचा बचन वालो की सी चतुरता न थी बल्कि उसकी जगह थी एक कातरता। उसकी थाली भी खोमचे का थाल न होकर घरेलू व्यवहार की एक मामूली हल्की मुरादाबादी थाली थी। तराजू भी न था। थाली मे कागज के आठ टुकड़ों पर पकौड़ों की बराबर-बराबर ढेरियां लगाकर रख दी गई थीं।

दिलीप ने सोचा इस ठण्डी रात में हमी दो व्यक्ति बाहर है। वह उसके पास जाकर ठिठक गया। मनुष्य-मनुष्य में कितना भेद होता है ? परन्तु मनुष्यत्व एक चीज है जो कभी-कभी भेद की सब दीवारों को लांघ जाती है। दिलीप को समीप खड़े होते देख लड़के ने कहा—

'एक-एक पैसे में एक-एक ढेरी।'

एक क्षण चुप रह कर दिलीप ने पूछा—'सबके कितने पैसे?'

बच्चे ने उगली से ढेरियों को गिन कर जवाब दिया—'आठ पैसे।'

दिलीप ने केवल बात बढ़ाने के लिए पूछा—'कुछ कम नहीं लेगा ?'

सौदा बिक जाने की आशा से जो प्रफुल्लता बालक के चेहरे पर आ गई थी, वह दिलीप के इस प्रश्न से उड़ गई। उसने उत्तर दिया—'मा बिगड़ेगी।'

इस उत्तर से दिलीप द्रवित हो गया और बोला—'क्या पैसे मां को देगा ?' बच्चे ने हामी भरी।

दिलीप ने कहा—'अच्छा सब दे दो।'

लड़के की व्यस्तता देख दिलीप ने अपना रूमाल निकालकर दे दिया और पकौडे उसमें बंधवा लिये।

आठ पैसे का खोमचा बेचने जो इस सर्दी मे निकला है उसके घर की क्या अवस्था होगी ? यह सोचकर दिलीप सिहर उठा। उसने जेब से एक रुपया निकाल लड़के की थाली मे डाल दिया। रुपये की खनखनाहट से वह सुनसान रात गूज उठी। रुपये को देख लड़के ने कहा—'मेरे पास तो पैसे नही है ?'

दिलीप ने पूछा—'तेरा घर कहा है ?'

'पास ही गली मे है'—लड़के ने जवाब दिया।

दिलीप के मन मे उसका घर देखने का कौतूहल जाग उठा। बोला—'चलो मुझे भी उधर से ही जाना है। रास्ते में तुम्हारे घर से पैसे ले लूगा।'

बच्चे ने घबराकर कहा—'पैसे तो घर पर भी न होंगे।'

दिलीप सुनकर सिहर उठा परन्तु उत्तर दिया—'होंगे, तुम चलो।'

लड़का खाली थाली को छाती से चिपटा आगे-आगे चला और उसके पीछे बाईसिकल को थामे दिलीप।

दिलीप ने पूछा—'तेरा बाप क्या करता है ?'

लड़के ने उत्तर दिया—'बाप मर गया है।'

दिलीप चुप हो गया। कुछ और दूर जा उसने पूछा—'तुम्हारी मा क्या करती है ?'

लड़के ने उत्तर दिया—'मां एक बाबू के यहा चौका-बर्तन करती थी, अब बाबू ने हटा दिया।'

दिलीप ने पूछा—'क्यों हटा दिया बाबू ने ?'

लड़के ने जवाब दिया—'मां अढ़ाई रुपया महीना लेती थी, जगतू की मा ने बाबू से कहा कि वह दो रुपये मे सब काम कर देगी। इसलिए बाबू की घर वाली ने मां को हटा कर जगतू की

मां को रख लिया।

दिलीप फिर चुप हो गया। लडका नंगे पैर गली के कीचड़ मे छप-छप करता चला जा रहा था। दिलीप को कीचड़ से बच कर चलने मे असुविधा हो रही थी। लड़के की चाल की गति को कम करने के लिए दिलीप ने फिर प्रश्न किया—'तुम्हे जाड़ा नही मालूम होता ?'

लड़के ने शरीर को गरम करने के लिए चाल को और तेज करते हुए उत्तर दिया—'नहीं।'

दिलीप ने फिर प्रश्न किया—'जगतू की मां क्या करती थी ?'

लडके ने कहा—'जगतू की मां स्कूल मे लड़कियों को घर से बुला लाती थी। स्कूल वालों ने लड़कियों को घर से लाने के लिए मोटर रख ली है, उसे निकाल दिया।'

गली के मुख पर कमेटी का बिजली का लैम्प जल रहा था। ऊपर की मजिल की खिड़कियों से भी गली में कुछ प्रकाश पड़ रहा था। उससे गली का कीचड़ चमक कर किसी कदर मार्ग दिखाई दे रहा था।

संकरी गली मे एक बड़ी खिड़की के आकार का दरवाजा खुला था। उसका धुधला लाल सा प्रकाश सामने पुरानी ईंटों की दीवार पर पड़ रहा था इसी दरवाजे मे लड़का चला गया।

दिलीप ने झांक कर देखा मुश्किल से आदमी के कद की ऊंचाई की कोठरी में—जैसी प्राय: शहरों मे ईंधन रखने के लिए बनी रहती हैं—धुआं उगलती मिट्टी के तेल की एक ढिबरी अपना धुधला लाल प्रकाश फैला रही थी। एक छोटी चार-पाई, जैसी कि श्राद्ध में महाब्राह्मणो को दान दी जाती है, काली

दीवार के सहारे खड़ी थी। उसके पाये से दो-एक मैले कपड़े लटक रहे थे। एक क्षीणकाय, आधी उम्र की स्त्री मैली-सी धोती मे शरीर लपेटे बैठी थी।

बेटे को देख स्त्री ने पूछा—'सौदा बिका बेटा ?'
लड़के ने उत्तर दिया—'हा मां', और रुपया मा के हाथ में देकर कहा—'बाकी पैसे बाबू को देने है।'

रुपया हाथ मे ले मा ने विस्मय से पूछा—'कौन बाबू, बेटा?'

बच्चे ने उत्साह से कहा—'बाईसिकल वाले बाबू ने सब सौदा लिया है। उसके पास छुट्टे पैसे नही थे। बाबू गली में खड़ा है।'

घबरा कर मां बोली—'रुपये के पैसे कहा मिलेगे बच्चा ?'
सिर क कपड़े को संभाल दिलीप को सुनाने के अभिप्राय से मां ने कहा—'बेटा, रुपया बाबूजी को लौटा कर घर का पता पूछ ले, पैसे कल ले आना।'

लड़का रुपया ले दिलीप को लौटाने आया। दिलीप ने ऊंचे स्वर से, ताकि मा सुन ले, कहा—'रहने दो रुपया, कोई परवाह नही, फिर आ जायगा।'

सिर के कपडे को आगे खीच स्त्री ने कहा—'नही जी, आप रुपया लेते जाइये, बच्चा पैसे कल ले आयगा।'

दिलीप ने शरमाते हुए कहा—'रहने दीजिये, यह पैसे मेरी तरफ से बच्चे को मिठाई खाने के लिए रहने दीजिये।'

स्त्री नही-नही करती रह गई। दिलीप अंधेरे मे पीछे हट गया।

स्त्री के मुर्झाये, कुम्हलाये, पीले चेहरे पर कृतज्ञता और प्रसन्नता की झलक छा गई। रुपया अपनी चादर की खूंट में

बांध, एक ईंट पर रखे पीतल के लोटे से बांह के इशारे से पानी ले उसने हाथ धो लिया और पीतल के एक बेले के नीचे से मैले अंगोछे मे लिपटी रोटी निकाल, बेटे का हाथ धुला उसे खाने को दे दी।

बेटा तुरत की कमाई से पुलकित हो रहा था। मुह बना कर कहा—'ऊ-ऊ रूखी रोटी!'

मा ने पुचकारकर कहा—'नमक डाला हुआ है बेटा।'

बच्चे ने रोटी जमीन पर डाल दी और ऐंठ गया—'सुवह भी रूखी रोटी हां, रोज-रोज रूखी।'

हाथ आखों पर रख बच्चा मुह फैलाकर रोना ही चाहता था, मां ने उसे गोद मे खीच लिया और कहा—'मेरा राजा बेटा, सुवह जरूर दाल खिलाऊगी। देख, बाबू तेरे लिए रुपया दे गये हैं। शाबाश?'

'सुबह मै तुझे खूब सौदा बना दूगी फिर तू रोज दाल खाना।'

बेटा रीझ गया। उसने पूछा—'मा तूने रोटी खा ली?'

खाली अंगोछे को तहाते हुए मा ने उत्तर दिया—'हां बेटा, अब मुझे भूख नही है, तू खा ले!'

भूखी मां का वेटा बचपन के कारण रूठा था परन्तु मां की बात के बावजूद घर की हालत से परिचित था उसने अनिच्छा से एक रोटी मां की ओर बढा कर कहा—'एक रोटी तू खा ले।'

मां ने स्नेह से पुचकार कर कहा—'ना बेटा, मैंने सुबह देर से खाई थी, मुझे अभी भूख नही है, तू खा।'

दिलीप के लिए और देख सकना सम्भव न था। दांतों से होठ दवा वह पीछे हट गया।

× × ×

मकान पर आकर वह बैठा ही था, नौकर ने आ, दो भद्रपुरुषों के नाम बताकर कहा, आये थे बैठकर चले गये। खाना तैयार होने की सूचना दी। दिलीप ने उसकी ओर बिना देखे ही कहा—'भूख नही।' उसी समय उसे लड़के की मा का 'भूख नही' कहना याद आ गया।

नौकर ने विनीत स्वर मे पूछा—'थोड़ा दूध ले आऊं?'

दिलीप को गुस्सा आ गया। उसने विद्रूप से कहा—'क्यों, भूख न हो तो दूध पिया जाता है? ···· दूध ऐसी फालतू चीज है?'

नौकर कुछ न समझ विस्मित खड़ा रहा।

दिलीप ने खीझकर कहा—'जाओ जी।'

मिट्टी के तेल की ढिबरी के प्रकाश मे देखा वह दृश्य, उसकी आंखों के सामने से हटना न चाहता था।

छोटे भाई ने आकर कहा—'भाभी ने यह पत्र भेजा है' और लिफाफा दिलीप की ओर बढ़ा दिया।

दिलीप ने पत्र खोला। पत्र की पहली लाइन में लिखा था—

"मै इस जीवन मे दुःख ही देखने के लिए पैदा हुई हूं···"

दिलीप ने आगे न पढ, पत्र फाड़ कर फेक दिया। उसके माथे पर बल पड गये। उसके मुह से निकला—

'काश! तुम जानती दु.ख किसे कहते है। ···· तुम्हारा यह रसीला दु.ख तुम्हे न मिले तो जिन्दगी दूभर हो जाय।'

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

: २० :

टेबल-लैंड

"आप ज़रा उदार विचारों के है, इसलिए मैने यह पूछा है!" सेठ साहब ने कहा।

"जी, आप निश्चय रखें। यह सब मै पंजाब के हिन्दू-शरणार्थियो ही को भेजूगा।" सेठ साहब की अंशका के उत्तर में दीनानाथ बोला।

"एक कम्बल आपके विचार मे कितने का आता है?" सेठ साहब ने पूछा।

"यों तो आप ऐसे सेठ को सौ रुपये का भी कम्वल शायद अच्छा न लगे", तनिक उत्साह पाकर दीनानाथ ने कहा, "लेकिन वे लोग तो मुसीबत के मारे है। नर्मी की अपेक्षा उन्हें गर्मी की अधिक आवश्यकता है। जब मै इधर सेनेटोरियम ही में था तो वार्डब्वाय नारायण दस रुपये मे कम्बल लाया था, उतना नर्म तो नही, पर गर्म खूब था।"

"तो तीन कम्बलों के पैसे आप मेरे नाम लिख लीजिए।"

तीन कम्बलों के—अर्थात् तीस रुपये! – प्रसन्नता से दीनानाथ का चेहरा खिल-सा उठा।

सब से पहले जब उसने सेठ हीरामल वीरामल अडवानी की

स्पेशल कॉटेज मे जाने का निश्चय किया था तो उसका ख्याल था कि वे पांच रुपये तो कम से कम देंगे ही और लिस्ट में सब से ऊपर पांच रुपये देख कर दूसरे रोगी भी रुपया आठ आना दे ही देंगे। इस प्रकार वह दो चार कम्बलों के पैसे पजाब के शरणार्थियों की सहायता के लिए भेज सकेगा। सेनेटोरियम के थोड़े से अनुभव ने उसे बता दिया था कि सैर-तमाशा या ह्विस्ट अथवा रम्मी ड्राइव हो तो रोगी खुले से चदा देते हैं (मेजों पर स्त्रियों के साथ बैठ कर खेल सकने का सुअवसर पाने की गर्ज से) लेकिन यदि किसी भले काम के लिए चंदा देने को कहा जाये तो कुछेक को छोड़कर सब बहाने बना देते है।

सेठ हीरामल धर्म-परायण, दानी आदमी थे। इसीलिए उस ने लिस्ट मे सब से पहले उनका नाम रखा था। वे इतने रुपये दे देंगे, इस बात की उसने कल्पना न की थी। परन्तु जब सेठ साहब ने दस-दस के तीन नोट निकाल कर दीनानाथ के हाथ पर रख दिये तो उसने कापी पर सबसे पहले उनका नाम लिखते हुए कहा—आप से मुझे ऐसी ही आशा थी। इसीलिए तो मै सबसे पहले आपके पास आया।"

"कहिए, आपके भाई और दूसरे सगे-सम्बन्धी तो पाकिस्तान से आ गये ?" सेठ साहब ने पूछा।

"घर-बार छोड़ बेसरोसामानी की दशा में दिल्ली पहुच गए है", दीनानाथ ने तनिक उदास होकर कहा—"घर दोनों जल गए और सामान लुट गया। इतनी गनीमत है कि जाने बच गयी।"

"इस टी० बी० ने हमे तो कही का न रखा", सेठ हीरामल ने खास कर और बलगम स्पिटून में थूक कर कहा—"नही तो पचास-सौ मुसलमानों को हम स्वयं अपने हाथ से यम-लोक

पहुंचाते ।"

यह कहते हुए उनके म्रियमान, पीत, क्षीण मुख पर एक तिक्त मुस्कान फैल गयी और इतनी वात-चीत ही से थक कर वे चारपाई पर लेट गये ।

सेठ साहव की यह भयानक आकांक्षा पिछले कई दिनों से स्वयं दीनानाथ के मन में निरंतर उठ रही थी। सेठ साहव तो हिन्दू महासभा के प्रधान रहे थे, मुसलमानों को सदा से यवन और असुर समझते थे, पर दीनानाथ तो कभी हिन्दू-मुसलमान में कोई अन्तर न मानता था । वह पजावी था और पंजावियों में जहा तक रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा और बोल-चाल का सम्वन्ध है, मुसलमान-हिन्दू में कोई विशेष अन्तर न था। वम्वई में भी वह स्वन्त्र रूप से फिलम कम्पनियों में काम करता था और यद्यपि साम्प्रदायिकता के इस जमाने में फिलम कम्पनियों मे भी यह वीमारी फैल गयी थी, पर दीनानाथ के मित्रों में मुसलमानों की संख्या कम न थी। उसे मुसलमान डाइरेक्टरों की फिल्मों में निरन्तर काम मिलता था। वीमार होकर जव वह पंचगनी आया और छः महीने सेनेटोरियम मे रहा तो यहां भी उसकी घनिष्टता कासिम भाई के अतिरिक्त कई दूसरे मुसलमानों से हो गयी ।

कासिम भाई तो खैर उसी की तरह आर्टिस्ट था, पर दीनानाथ के मित्रों मे तो कई दूसरे मुसलमान थे । आज वही दीनानाथ इतना कटु हो गया था कि सेठ हीरामल की ही भाँन्ति चाहता था---वस चले तो पंजाव जाय और स्त्रियों तथा वच्चों पर पाशविक अत्याचार तोड़ने वाले मुसलमानों को यथा-शक्ति यम-लोक पहुंचाये । दो महीने पहले स्वास्थ्य सुधर जाने और

कुछ हाथ तंग हो जाने से वह बाहर आकर रहने लगा था। तभी से पंजाब की खबरे सुन सुन कर कई बार उसका खून खौल-खौल उठा था और कई बार सपनों मे वह कभी तलवार और कभी पिस्तौल लिये आततायी मुसलमानों का संहार करता रहा था।

दीनानाथ के खून मे यह खौलाव पिछले दो महीने ही से पैदा हुआ था, नही साम्प्रदायिक दगे तो साल भर से हो रहे थे। साल भर पहले मुस्लिम लीग के डाइरेक्ट-एक्शन के दिन जो आग कलकत्ता में लगी थी, यद्यपि उसकी लपटें बम्बई तक पहुंच गयी थी, पर दीनानाथ ने कभी इस ओर ध्यान न दिया था। लम्बी बीमारी के प्रति बीमार और तीमारदार जैसे दोनों उदासीन हो जाते हैं, इसी प्रकार दीनानाथ भी साम्प्रदायिकता की इस लम्बी बीमारी के प्रति उदासीन था। फिर वह मलाड में रहता था और मलाड बम्बई के फिसादी इलाकों से बीस मील दूर था। इसके अतिरिक्त उधर ध्यान देने के लिए दीनानाथ के पास तनिक भी अवकाश न था। वह स्वतन्त्र-रूप से फिल्म कम्पनियों में काम करता था और यद्यपि एकस्ट्रा की स्टेज को पार कर अभिनेता बन गया था, पर वह कोई प्रसिद्ध अभिनेता न था। एक पार्टी को पाकर दूसरी को ढूढ़ने और सिनेमा की प्रतिक्षण नीचे से खिसकती हुई धरती को पाव के नीचे बनाये रखने के प्रयास में उसे इतना समय न मिलता था कि वह इस मूर्खता (दगे-फिसाद को दीनानाथ इसी नाम से पुकारता था) की ओर ध्यान दे। फिर सब से बड़ी बात यह थी कि वह दंगा-फिसाद कलकत्ता मे हुआ था, नोआखली मे हुआ था, बिहार, बम्बई और पश्चिमी पंजाब के कुछ नगरों मे भी हुआ था, पर उसका जन्म स्थान—उसका लाहौर—इसकी लपटों से सर्वथा

सुरक्षित था और जहां तक दीनानाथ का सम्बन्ध है, उसे हिन्दुस्तान का कोई नगर लाहौर से अधिक प्रिय न था और न किसी और नगर से उसे दिलचस्पी थी। लाहौर तटस्थ बना हुआ था, इसलिए दीनानाथ भी तटस्थ था।

लेकिन तभी बम्बई के अधिक काम, कम आराम और अस्वास्थ्यकर भोजन के कारण फेफड़ों की बीमारी लेकर वह पंचगनी आ गया और न वह उसकी व्यस्तता रही, न तटस्थता।

देश की परिस्थिति दिन-प्रति-दिन बिगड़ रही थी। सेनेटोरियम के रोगी भी यद्यपि खेल-तमाशे 'ह्विस्ट' अथवा 'रम्मी' ड्राइवों में इकट्ठे योग देते थे, पर जब पाकिस्तान अथवा हिन्दुस्तान के सम्बन्ध मे कोई विवाद-ग्रस्त बात आ जाती तो रोगियों को चुप सी लग जाती। एक कासिम भाई ही था जो इस सारे दंगे-फिसाद की तह मे प्रतिक्रियावादी शक्तियों का हाथ देखता और उन्हें कोसता।

दीनानाथ निरन्तर यह वाद-विवाद सुनता और जब लेटता तो यही सब बातें उसके मस्तिष्क में घूमा करती।

परन्तु उधर दो महीने पहले उसने सेनेटोरियम छोड़ा और इधर लाहौर में भयानक विस्फोट हो उठा—इतना भयानक कि कलकत्ता, नोआखाली, बिहार और बम्बई के दगे उसके सामने मात्र पटाखों से रह गये।

दीनानाथ की तटस्थता भी समाप्त हो गयी। आग की लपटें उसके प्रिय लाहौर तक जा पहुंची थी, बल्कि उन्होंने एक तरह से सब कुछ, जो वहां उसे प्रिय था, उस से छीन लिया था। इधर बाउंडरी-कमीशन के बैठने की घोषणा हुई, उधर मुसलमानों ने अकबरी मंडी जला डाली। दीनानाथ अपने घर

और भाई-बांधवों के लिए चिन्तित हो उठा। उसके तार के उत्तर में उसके भाई का पत्र आया था :—

मैं तुम्हें पत्र लिख रहा हूं और लाहौर जल रहा है। मुहल्ला सिरीन, कटड़ा पूरबियां, भाटी और दिल्ली दरवाजे के अन्दर हिन्दुओ के मकान, शाहआलमी दरवाजा और पापड़ मंडी—सब जल कर राख हो चुके हैं। पापड़ मंडी की आग में सौ से अधिक मकान जल गये। आग रात के अढाई बजे—ऐन करफ्यू के समय लगायी गयी। जो बुझाने आया, वह पुलिस की गोली का शिकार बना। इतनी बड़ी आग लाहौर ने कभी नहीं देखी। अकबरी मडी, लाहौर की सबसे बड़ी गेहूं की मार्केट—पहले ही जल चुकी है।

'रहा पुराने शहर के बाहर का इलाका, सो अनारकली में उल्लू बोलते हैं। सिविल लाइन सहमी सी लगती है। अमन है पर वैसा ही जैसा तूफान से पहले होता है। मैजिस्ट्रेट से लेकर मामूली सिपाही तक फिरकापरस्त हो गये है। लाहौर का काम-काज सब खत्म हो गया है। सोचता हूं, किसी तरह दोनों मकान बेच-बाचकर भागू, लेकिन जायदादे पड़ी है और खरीदने वाला कोई नही। लोग भाग रहे है—शहर से, सिविल लाइन से, संत नगर से, ऋषि नगर से, राम और कृष्ण नगर, से, भारत नगर और माडल टाउन तक से। लगता है चन्द दिन मे लाहौर हिन्दुओं से बिलकुल खाली हो जायगा।'

पत्र पढ़कर दीनानाथ के हृदय में बबूला सा उठा था। उसे लगता था, जैसे लाहौर को नही उसके हृदय को ही आग लग रही है। शाहआलमी के भरे-पूरे बाजार उसकी आखों के आगे घूम गये। संत नगर, कृष्ण नगर, राम नगर, ऋषि नगर और न

जाने हिन्दुओं की कितनी बस्तियां लाहौर के आचल में सितारो सी टंकी हुई थी। दीनानाथ को लगा जैसे बर्बरता का क्रूर हाथ एक के बाद एक ये सितारे नोच रहा है। उसके भाई के इस पत्र के बाद उसे कोई खत न मिला, लेकिन लाहौर की तबाही, भगदड़ और पश्चिमीय पंजाब में हिन्दू स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों पर होने वाले कल्पनातीत पाशविक अत्याचारों की खबरों ने उसका दिन का चैन और रात की नीद हराम कर दी। तभी जब वह भाई को एयर-मेल से चिट्ठियां लिख-लिखकर और तार भेज-भेजकर हार गया था, उसे दिल्ली से उसके भाई का पत्र मिला—

'पिछले दिनों मै इतना परेशान रहा हूं कि लिख नहीं सकता। तुम बीमार हो इसलिए तुम्हे परेशान करना उचित नही समझा। अब कुछ शान्त हुआ हूं तो तुम्हें पत्र लिख रहा हूं। शान्ति का कारण यह नही कि मुसीबते कम हो गयी हैं। उनका तो अभी श्री-गणेश हुआ है, परन्तु उन का पहला हमला सह जाने के बाद जब देखता हूं कि इस मुसीबत मे मै अकेला नही हू, मेरे साथ लाखो आदमी है, जिन पर मेरे ऐसी ही, बल्कि मुझ से भी कही ज्यादा, मुसीबतें टूटी हैं तो कुछ साहस बंधता है।

'बर्बरता-जनित इस विपत्ति मे बहुत से सदा के लिए खत्म हो गये। शायद वे दूसरों से अच्छे ही रहे हों। बहुत से गिर गये, उनमे बैठने की शक्ति नही। बहुत से ऐसे है जो बैठ तो सकते है, पर खड़े नही हो सकते। जो खड़े हो सकते है, वे चल नहीं सकते। मै अपने आप को उन लोगों मे पाता हूं जो खड़े है और चलने की शक्ति रखते है।

'यहां महात्मा गांधी, जवाहरलाल और दूसरे नेता इस

कोशिश मे है कि अधिक-से-अधिक शरणार्थियों को खड़े होकर चलने के योग्य बनाये। कम्बलों के लिए, धन के लिए अपीलें हो रही हैं, लेकिन मोटे पेट वाले इस दुखद परिस्थिति से भी अपने पेट को कुछ और बढ़ाने की फिक्र में है। इसीलिये कीमतें आकाश को छू रही है। हर चीज मंहगी है और दिल्ली का जीवन भी आसान नही, परन्तु तुम चिन्ता न करना। हम सब बच कर आ गये है। इन्सान काफी ढीठ सिद्ध हुआ है। दुखद से दुखद परिस्थिति मे वह जीने का मोह नही छोड़ता और हम सब आज-कल इसी ढीठपने का सबूत दे रहे है।'

खत को पढ़ते-पढ़ते उसकी अन्तिम पक्तियों की कटुता दीनानाथ के हृदय को बेध गयी। भाई-बांधवों के बचने की खुशी और असंख्य अपाहिजों के गम से उसकी आंखे डबडबा आयीं। तभी यह विचार उसके मन मे उत्पन्न हुआ कि यदि वह उन असंख्य अपाहिजों मे से कुछ-एक को भी इस योग्य बना सके कि वह उठकर जीवन के पथ पर चलने लगे तो कितना अच्छा हो। 'एक कम्बल एक शरणार्थी का जीवन बचाता है'— हिन्द सरकार की यह अपील उसके कानों में गूज गयी और उसने फैसला किया कि वह न केवल अपने पास से एक कम्बल उन अभागे शरणार्थियो के लिए भेजेगा, बल्कि सेनेटोरियम के अपन परिचित हिन्दुओं से भी रुपये इकट्ठे करेगा। मुसलमानों से चंदा मांगने का उसे ध्यान नही आया, क्योकि अब उसकी तटस्थता समाप्त हो चुकी थी और जब सेठ हीरामल ने तीस रुपये देते हुए मुसलमानों को खत्म करने की भयानक आकांक्षा प्रकट की तो दीनानाथ को कुछ भी बुरा न लगा, बल्कि उनकी यह हसरत उसे अपने ही दिल के अरमान की गूज लगी।

"कहो भाई, यह कापी-पेंसिल उठाये किधर जा रहे हो ?"

सेठ हीरामल की स्पेशल काटेज से निकल कर दीनानाथ कापी में लिखे हुए तीस के अंक को गर्व-स्फीत दृष्टि से देखता हुआ जुवली वार्ड की ओर चला जा रहा था कि कासिम की आवाज सुन कर चौंका। उसके प्रश्न का क्या उत्तर दे, वह सहसा तय न कर पाया। बोला—"यही कुछ पंजाव के शरणार्थियों के लिए चन्दा इकट्ठा कर रहा हूं।"

"यह वड़ा नेक काम कर रहे हो तुम," कासिम वोला—"अभी चार दिन पहले वम्बई में लेखकों और आर्टस्टों ने सारे नगर में रैली की। तुम ने शायद पढ़ा हो, पृथ्वी और नवाव सव से पहले ट्रक में हाथ मे हाथ दिये खड़े थे और उनके पीछे वारह-तेरह ट्रकों मे वम्वई के दूसरे प्रसिद्ध अभिनेता, लेखक, आर्टिस्ट—'वे हिन्दू और मुसलमान दोनों इलाकों मे गये। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उनका स्वागत किया और दगें-फिसाद के खिलाफ उनके भाषण और नारे सुने। मैं तो आप चाहता था कि 'एण्टी-रायट-फंड' के लिए यहां से कुछ चन्दा इकट्ठा करके वम्वई के आर्टिस्टों का उत्साह वढाने को उन्हें भेजूं क्योंकि शरणार्थियों को वचाने की अपेक्षा शांति-पूर्वक वसते हुए गृहस्थों को शरणार्थी होने से वचाना भी कम महत्त्व नहीं रखता। लकिन यहां के लोग नहीं माने। उन्होंने दीवाली पर मौज मनाने को अभी से तीन सौ रुपया इकट्ठा किया है, हमने भी यह कहा—महात्मा गांधी का आदेश है कि ऐसे समय में जव लाखों आदमी वेघर-वेदर भटक रहे है, दीवाली की खुशियां मनाना अच्छा नहीं लगता, क्यों न वह सव रुपया वम्वई को दंगे फिसाद से वचाने या शरणार्थियों की सहायता के लिये भेज दिया जाये ?—लेकिन

भाई, मुझे एक पंजाबी दोस्त ने तुम्हारे देश की एक मसल सुनायी थी—"कोई मरे कोई जिये, सुथरा* घोल बताशे पिये।" यहां के लोग उस सुथरे से किसी तरह भिन्न नही। तुम ने बड़ा अच्छा काम किया जो चुप नही बैठे। तुमने सेनेटोरियम छोड़ दिया है। तुम बिना आर० एम० ओ०* की आज्ञा लिए मित्रता के नाते चन्दा इकट्ठा कर सकते हो। चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं। पांच रुपये तुम मेरे नाम लिख लो।"

एक ही सास मे यह सब कह कर कासिम उसे अपने साथ अपने वार्ड की ओर ले चला।

"लेकिन भाई, मै तुम्हें साफ कह दूं, मै पंजाब के शरणार्थियों के लिए रुपये इकट्ठे कर रहा हूं।" दीनानाथ ने कुछ झिझकते हुए कहा।

"तो मुझे कब आपत्ति है?" कासिम बोला—"पंजाब से आने वाले हिन्दू-सिख बड़े कटु होंगे। जब तक व दुखी रहेंगे, उनका साम्प्रदायिक क्रोध शान्त न होगा। और जब तक उनका साम्प्रदायिक क्रोध शान्त न होगा वे अपने ही ऐसे निर्दोष मुसलमानों की हत्या करने से बाज न आयेंगे। उनकी मदद करना तो मेरे लिए अपने भाइयों की मदद करने के बराबर है।"

अब दीनानाथ क्या उत्तर दे? चुप-चाप वह कासिम के साथ उसके वार्ड की ओर चल पड़ा।

कासिम दीनानाथ को अपने बिस्तर पर ले गया और चाबी से आलमारी खोल कर उसने पांच का एक नोट दीनानाथ के हाथ पर रख दिया।

---

*सुथरा—एक विशेष सम्प्रदाय का साधु।

*आर० एम० ओ०—Residential Medical Officer.

नोट लेने के अतिरिक्त दीनानाथ के लिए कोई चारा न था। उसने धन्यवाद दिया और चलने के विचार से हाथ वढ़ाया।

उसका हाथ अपने हाथ मे लेते हुए उसे तनिक रोक कर कासिम भाई ने कहा—"देखो दोस्त, मेरी मानो तो अपनी अपील को जरा सा वदल लो। यह क्यों नही कहते कि हिन्दू-मुसलमान दोनों शरणार्थियों केलिए इकट्ठा कर रहा हूं।"

"मुसलमान शरणार्थी तो पाकिस्तान चले गए।"

"फिर क्या हुआ, अभी तो वहुत से वाकी है।"

"लेकिन भाई, मैं तो हिन्दुओं ही के लिए इकट्ठा कर रहा हूं। तुम मुझे इस साफगोई के लिए माफ करना। तुम मेरे मित्र हो, साफ साफ कह दिया। चाहो तो तुम अपने पांच रुपये वापस ले लो।"

यह कहते हुए दीनानाथ ने नोट वाला हाथ आगे वढ़ा दिया।

कासिम हसा—"शायद साधारण हिन्दुओं की भांति तुम्हे भी मुसलमानों से कोई हमदर्दी नही और उनकी मुसीवतों को तुम उन्ही के गुनाहों का फल समझते हो। लेकिन मेरे दोस्त, उनका दोष उन वच्चों के दोष ऐसा ही है जो नही समझते कि उनके वड़े उन्हे क्या सिखाते हैं। साधारण लोगों—खास कर अपने देश के साधारण लोगों और वच्चों में कोई अन्तर नही। मुसलमान-जनता की वात छोड़ो। तुम हिन्दुओं की वात लो। एक जमाना था जव महात्मा गांधी की ठीक इच्छा क्या है, इसे न जानते हुए जनता ने सुभाष वावू को दूसरी वार कांग्रेस का प्रधान चुना, लेकिन जव महात्मा गाधी ने पट्टाभि की हार को अपनी हार कहा तो वही सुभाष दूध की मक्खी की तरह निकाल वाहर किये गये। वही लोग उनकी निन्दा करने लगे जिन्होंने उन्हे

राष्ट्रपति चुना था। देश में अपमानित होकर सुभाष बाबू, जान की बाजी लगा कर, बाहर चले गये। उन्होंने आई० एन० ए० को जन्म दिया और वही जनता उनके गुण-गान करने लगी। फिर वह समय भी आया कि सुभाष बाबू के प्रति जनता के प्रेम को दख कर उसी काग्रेस को चुनाव जीतने के लिए उनका और उनकी सेना का डिड्डम पीटना पड़ा। तुम यदि जन-साधारण में जाओ तो उनकी सरलता को देखकर चकित रह जाओ। अधिकांश यह नही जानते कि उन पर जो यह विपत्ति टूटी है, उसमे ईसा के अनुयायी अंग्रेजों का कितना हाथ है। वे नही जानते कि १९०९ में अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमानों में नफरत का जो बीज बोया था, वही आज विष-वृक्ष बन हमारी इस धरती की जड़ों को विषैला बना रहा है। नही जानते कि पंजाब का यह हत्याकाण्ड मुसलमान को हिन्दू से लड़ाने की उस कूट-नीति की चरम परा-काष्ठा है। यदि कोई निष्पक्ष ट्रिब्यूनल इस भयानक रक्तपात की छानबीन करे तो संसार को पता चल जाय कि शांति के पुजारी महात्मा ईसा के इन अनुयायियों ने अपने साम्राज्य की आवश्यक-ताओं के लिए किस हृदयहीन कूट-नीति से लाखो की हत्या कर डाली है। लेकिन जो हो गया, उसे वापस नही लाया जा सकता। हमारा कर्तव्य तो यही है कि अग्रेज द्वारा लगाये गये इस विष-वृक्ष को जड़ से उखाड़ फेके। ताकि नये राष्ट्रों के पौधे इसके विषैले प्रभाव से मुक्त होकर स्वतन्त्रता से बढे, फले और फूलें। यह काम इतना सुगम नही, यह मै जानता हूं, लेकिन हमे यह मालूम तो होना चाहिए कि इस मुसीबत के समय हमारा कर्तव्य क्या है। —लेकिन मै तो भाषण झाड़ने लगा", सहसा रुककर कासिम भाई ने कहा—"तुम भाई, यह रुपये अपने ही पास रखो। मैंने

तो केवल इसलिए कहा था कि सेनेटोरियम मे मुसलमान, पारसी और ईसाई अधिक है और हिन्दू कम। अपनी अपील को जरा विस्तार दे लेते तो रुपया ज्यादा इकट्ठा हो जाता। फिर चाहे तुम हिन्दू शरणार्थियों को भेजते, चाहे मुसलमानों को।

दीनानाथ को कासिम की बातें उसी तरह ठीक लगीं जैसे सेठ हीरामल की। कासिम भाई के स्वर में भी उसे अपने अन्दर के स्वर की गूँज सुनाई दी। पर कौन स्वर ठीक है और कौन गलत वह तय न कर पाया। उसने हारते हुए से स्वर में केवल इतना कहा—"मुझ से यह न होगा कि मै मुसलमानों से चन्दा इकट्ठा करूँ और हिन्दुओं को भेज दूँ।"

"देखो, ऐसा करो कि तुम 'एण्टी-रायट-फंड' के नाम पर चन्दा इकट्ठा करो। हिन्दू शरणार्थियों की मदद करना भी दंगे को बढ़ने से रोकना ही है। जैसा कि मैंने अभी कहा, वे जब तक पहले की तरह बसेंगे नहीं, अपने दुःख का बदला मुसलमानों से लेना छोड़ेंगे नही। उनकी मदद मुसलमानों की मदद है। चलो, मै तुम्हारे साथ चलता हूँ । हमारी अपील होगी—दंगे को रोकना और शरणार्थियों की सहायता करना।"

और दीनानाथ की खामोशी को नीम-रजा समझ कर कासिम उसके साथ चल पड़ा।

जब तीन घंटे के बाद सेनेटोरियम के दरवाजे पर कासिम भाई को धन्यवाद करते हुए दीनानाथ ने उससे हाथ मिलाया तो उसकी जेब मे दो सौ रुपये थे।

सात दिन तक दीनानाथ निरन्तर चन्दा इकट्ठा करता रहा। कासिम भाई की सहायता से, पहले ही दिन उसे अपने काम मे जो सफलता मिली, उससे उसका साहस बढ़ गया था और जहा

वह दस-बीस रुपये इकट्ठे कर पाने का विचार लेकर घर से निकला था, वहाँ अब उसने पाँच सौ रुपया इकट्ठा कर भेजने का निश्चय कर लिया था। वह बीमार था। इससे पहले वह केवल सांझ-सवेरे बाजार तक आया करता था, परन्तु इन सात दिनो में वह टैक्सी लेकर पारसी, खोजा और हिन्दू आदि सेनेटोरियमों तक हो आया था। आस-पास के मकान, बँगले और बाजार उस ने मथ डाले और आज आठवे रोज वह मेनरोड़, पर चला जा रहा था और उसकी जेब में दस कम पाँच सौ रुपये थे। उसने सुना था कि डाक्टर मरचेंट का अपना नर्सिङ्ग-होम है जहाँ वे कुछ रोगी रखते हैं और उसका विचार था कि दस की कमी वह उनके नर्सिङ्ग-होम से पूरी करेगा और रुपये भेजकर तब एक सप्ताह तक पूरा आराम करके जो वजन घट गया है, उसे पूरा करेगा।

दायी ओर रिंग रोड और उसके बॅगलों के ऊपर, ढलवान पर उगे हुए गगनचुम्बी सिलवर ओक के पेड़ों की फुगनियों के साथ-साथ, एक काली चट्टानी दीवार चली गयी थी। एक दिन दीनानाथ चन्द मित्रों के साथ टेबल-लैंड की इस दीवार को देखने गया था, जब उनकी टैक्सी कान्वेंट स्कूल के पास से होती हुई, सांप की भांति बल खाती-सी सडक पर चढ़, इस काली दीवार के ऊपर पहुंची तो दीनानाथ यह देखकर चकित रह गया था कि काली-काली चट्टानी दीवार दीवार नही, बल्कि मीलों तक समतल फैली हुई धरती का एक किनारा है। इस ऊचाई के ऊपर, किस प्रकार इतनी लम्बी-चौड़ी समतल धरती चारों ओर काली चट्टानी दीवारों पर टिकी रह गयी, वह सोचने लगा। पर तब यह सोच-विचार छोड़कर यह टेबल-लैंड के सौन्दर्य का रस लेने लगा

था—सामने, दृष्टि सीमा तक, समतल धरती फैली थी जिस पर घास शीत से झुलसकर मटमैली वन गयी थी। ऊपर नीला आकाश किसी उल्टे प्याले की भाति टेवल-लैंड को ढके हुए दिखायी देता था। और श्वेत-श्वेत वादल—लगता था जैसे प्याले की मदिरा के गिर जाने से फेन उसके तले से लगी रह गयी है।

दीनानाथ इसी रिंग रोड वाले किनारे पर आ खड़ा हुआ। तव इस किनारे से आस-पास की लाल-लाल, मटमैली, रुण्ड-मुण्ड पहाड़ियों मे, अनन्त मरुभूमि के छोटे से शाव्दल सी, यह हरी-भरी पंचगनी उसे वड़ी सुन्दर लगी थी। टेवल-लैंड की उस ऊंचाई से, लम्वे-लम्वे सिलवर के वृक्षों से ढकी हुई नन्हीं-नन्ही सड़कें, नन्हे-नन्हें वाग वगीचे, नन्हें खिलौनों से वंगले और वौनों से स्त्री-पुरुप उसे वहुत ही भले लग रहे थे। उस का जी चाह रहा था कि उस किनारे पर खड़ा निरन्तर पंचगनी की इस स्वर्गिक सुन्दरता को देखता रहे।

लेकिन वह सात दिन से पंगचनी के इन सुन्दर वाग-वगीचों और बंगलों मे घूम रहा था और उसे पता चला था कि टेवल-लैंड से इतनी सुन्दर दिखायी देने वाली पंचगनी वास्तव में कितनी कुरूप है। सात दिन से घर-घर घूमने पर उसे मालूम हुआ था कि चार सेनेटोरियमों के अतिरिक्त (जहां खुले आम दिल के रोगी रह सकते हैं) स्थायी निवासियों के निवास-स्थानों को छोड़कर, कम ही ऐसे बंगले अथवा घर होंगे जहां यक्ष्मा से पीड़ित अथवा उनके दु:ख से दु.खी सगे-सम्वन्धी नही रहते।

चलते-चलते टेवल-लैंड के नीचे, सिलवर के पेड़ों से ढके, इन सुन्दर बंगलों को देखते-देखते दीनानाथ के हृदय से एक दीर्घ-निश्वास निकल गया। इन वगलों और इनमें स्वास्थ्य-लाभ करने

वाले रोगियों की श्री-सम्पन्नता का ध्यान आते ही बाजार के नीचे चैसेन रोड़ तक बने हुए बगला-नुमा-दड़बों मे इस मूजी रोग से जूझने वालों की विपन्नता उस के सामने घूम गयी। साथ ही दो घटनाएं और दो आकृतियां उसकी आंखों में कौद गयी।

चैसेन रोड़ के एक दड़बे के दरवाजे पर उसने दस्तक दी थी। किसी ने खांसते हुए झीण स्वर मे उत्तर दिया—"आ जाइए !"

दरवाजा बन्द था। वह अन्दर चला गया था। एक बहुत छोटा कमरा था, जिस मे एक चारपाई, एक मैली-सी कुर्सी और तिपाई पड़ी थी। इससे अधिक फर्नीचर कमरे मे रखा ही न जा सकता था। चारपाई पर एक अत्यधिक क्षीण रोगी कंठ तक लिहाफ ओढ़े और गर्दन और गले को गलूबन्द से पूरी तरह लपेटे पड़ा था। दीनानाथ ने अपना मन्तव्य प्रकट किया और अपनी बीमारी के बावजूद देश की इस विपत्ति मे अपना कर्तव्य निभाने की बात कही तो उस रोगी की आंखें चमक उठी । बड़े कष्ट के साथ कापते हुए हाथों से तकिये के नीचे से टटोल कर उसने एक छोटा सा बटुआ निकाला और रुपये रुपये के दो नोट उसकी ओर बढाते हुए कहा—

"आप बडा नेक काम कर रहे है। मुझे तो बैठने तक की मनाही है। दोनों फेफडे खराब है, नही मै स्वयं आपके साथ चल कर चन्दा इकट्ठा करता। गरीब आदमी हूँ। इतनी रकम के लिए क्षमा कीजिएगा।"

दीनानाथ के गले में गोला सा अटक गया। आर्द्र होकर उस ने कहा—"जी, आपके यह दो रुपये दो सौ के बराबर हैं। बूंद-बूंद ही से तालाब भरता है। आपके इन दो शब्दों से मुझ जितना प्रोत्साहन मिला है, वह भी तो अपना मूल्य रखता है।"

था—सामने, दृष्टि सीमा तक, समतल धरती फैली थी जिस पर घास शीत से झुलसकर मटमैली बन गयी थी। ऊपर नीला आकाश किसी उल्टे प्याले की भाति टेबल-लैंड को ढके हुए दिखायी देता था। और श्वेत-श्वेत वादल—लगता था जैसे प्याले की मदिरा के गिर जाने से फेन उसके तले से लगी रह गयी है।

दीनानाथ इसी रिग रोड वाले किनारे पर आ खड़ा हुआ। तब इस किनारे से आस-पास की लाल-लाल, मटमैली, रुण्ड-मुण्ड पहाड़ियों मे, अनन्त मरुभूमि के छोटे से शाव्दल सी, यह हरी-भरी पंचगनी उसे बड़ी सुन्दर लगी थी। टेवल-लैंड की उस ऊंचाई से, लम्बे-लम्बे सिलवर के वृक्षों से ढकी हुई नन्हीं-नन्ही सड़कें, नन्हें-नन्हें बाग बगीचे, नन्हें खिलौनों से बंगले और बौनों से स्त्री-पुरुष उसे वहुत ही भले लग रहे थे। उस का जी चाह रहा था कि उस किनारे पर खड़ा निरन्तर पंचगनी की इस स्वर्गिक सुन्दरता को देखता रहे।

लेकिन वह सात दिन से पंगचनी के इन सुन्दर बाग-बगीचों और बंगलों मे घूम रहा था और उसे पता चला था कि टेवल-लैंड से इतनी सुन्दर दिखायी देने वाली पंचगनी वास्तव में कितनी कुरूप है। सात दिन से घर-घर घूमने पर उसे मालूम हुआ था कि चार सेनेटोरियमों के अतिरिक्त (जहां खुले आम दिल के रोगी रह सकते हैं) स्थायी निवासियों के निवास-स्थानों को छोड़कर, कम ही ऐसे बगले अथवा घर होंगे जहां यक्ष्मा से पीड़ित अथवा उनके दुःख से दु.खी सगे-सम्वन्धी नहीं रहते।

चलते-चलते टेबल-लैंड के नीचे, सिलवर के पेड़ों से ढके, इन सुन्दर बंगलों को देखते-देखते दीनानाथ के हृदय से एक दीर्घ-निश्वास निकल गया। इन बगलों और इनमे स्वास्थ्य-लाभ करने

वाले रोगियों की श्री-सम्पन्नता का ध्यान आते ही बाजार के नीचे चैसेन रोड़ तक बने हुए बंगला-नुमा-दड़बों में इस मूजी रोग से जूझने वालों की विपन्नता उस के सामने घूम गयी। साथ ही दो घटनाएं और दो आकृतिया उसकी आखों में कौद गयी।

चैसेन रोड़ के एक दड़बे के दरवाजे पर उसने दस्तक दी थी। किसी ने खांसते हुए झीण स्वर मे उत्तर दिया—"आ जाइए !"

दरवाजा बन्द था। वह अन्दर चला गया था। एक बहुत छोटा कमरा था, जिस में एक चारपाई, एक मैली-सी कुर्सी और तिपाई पड़ी थी। इससे अधिक फर्नीचर कमरे मे रखा ही न जा सकता था। चारपाई पर एक अत्यधिक क्षीण रोगी कठ तक लिहाफ ओढ़े और गर्दन और गले को गलूबन्द से पूरी तरह लपेटे पड़ा था। दीनानाथ ने अपना मन्तव्य प्रकट किया और अपनी बीमारी के बावजूद देश की इस विपत्ति मे अपना कर्तव्य निभाने की बात कही तो उस रोगी की आखें चमक उठी। बड़े कष्ट के साथ कांपते हुए हाथों से तकिये के नीचे से टटोल कर उसने एक छोटा सा बटुआ निकाला और रुपये रुपये के दो नोट उसकी ओर बढाते हुए कहा—

"आप बडा नेक काम कर रहे है। मुझे तो बैठनें तक की मनाही है। दोनों फेफड़े खराब है, नही मै स्वय आपके साथ चल कर चन्दा इकट्ठा करता। गरीब आदमी हूँ। इतनी रकम के लिए क्षमा कीजिएगा।"

दीनानाथ के गले मे गोला सा अटक गया। आर्द्र होकर उस ने कहा—"जी, आपके यह दो रुपये दो सौ के बरावर हैं। बूँद-बूँद ही से तालाब भरता है। आपके इन दो शब्दों से मुझ जितना प्रोत्साहन मिला है, वह भी तो अपना मूल्य रखता है।"

और उसने उनका नाम पूछा।

"दो रुपये के लिए नाम—?" रोगी ने कहना चाहा।

दीनानाथ ने वात काट कर कहा—"आप नाम लिखा दीजिए। मुझे तसल्ली हो जायेगी कि मै सव जगह गया और उन्हें तसल्ली होगी कि सव सम्प्रदाय इस विपत्ति में उनके साथ है।"

"नासिर एम० आवूवाला।" रोगी ने विवशता से कहा।

नासिर भाई की पीली पीली मुरझाई हुई आकृति के ऊपर दीनानाथ की आंखों मे चम्पक लाल राम-रत्न पटेल की हृष्ट-पुष्ट चमचमाती सूरत घूम गयी थी।

पंचगनी मे उनकी वड़ी दूकान है। वह सुवह उनके यहाँ गया तो जो महाशय काऊंटर पर खड़े थे, उन्होंने कहा कि हमारे साझीदार आयें तो उनसे पूछ कर देंगे। दीनानाथ ने कहा—"आपको जो भी देना हो, दे दीजिए। मैं बीमार आदमी हूँ। वार-वार आने में मुझे कठिनाई होगी।"

"जी, विना पूछे हम कैसे दे सकते है। साझीदारी का मामला है। आप संध्या को आइए।"

दीनानाथ संध्या को फिर उनके यहॉ पहुँचा। काऊंटर पर दूसरे वुजुर्ग थे। उन्होने संन्यासियों के से अन्दाज मे वताया कि वे तो सव माया-मोह से किनारा कर वैठे है और दूकान में उनके हिस्से का वाली उनका वेटा चम्पक है। दीनानाथ चन्दे के सम्वन्ध में उन्हीं से पूछे।

आज वह सुवह उनके उत्तराधिकारी चम्पक लाल से मिला था। सौभाग्य से दोनों साझीदार स्टोर पर थे। चम्पकलाल सूट-वूट से लैस गोरे रंग और मंझले कद का युवक था। गाल उसके

छोटी-छोटी डबल रोटियों की भांति फूले हुए थे, क्रीम से चमचमा रहे थे और उसकी आकृति पर अपूर्व पुष्टि का आभास था। दीनानाथ ने जब उससे अपना मतव्य प्रकट किया तो उसने पूछा, "आपके पास किसी का अधिकार-पत्र है? क्या प्रमाण है कि रुपया आप शरणार्थियो को पहुंचा ही देंगे?"

दीनानाथ ने कासिम भाई के बताये हुए गुर के अनुसार कहा कि वह आर्टिस्ट है और अभी दो अक्तूबर को बम्बई के आर्टिस्टों और लेखकों ने दगा रोकने के लिए जो रैली की है, उसी के उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह चन्दा इकट्ठा कर रहा है। देवघर हाल में उनका आफ़िस है। वही वह सब रुपया भेज देगा। मनीआर्डर की रसीद उनको दिखा देगा।

तब उसने कापी दीनानाथ के हाथ से लेकर लिस्ट पर दृष्टि डाली और फिर सतुष्ट हो कापी उसे देते हुए पूछा—"आप कितना चाहते हैं?"

दीनानाथ उस युवक के व्यवहार से कुछ जल गया था। उसने कहा—"आपने लिस्ट तो देख ही ली है। यहा तीस रुपये भी हैं और चार आने भी। आपको जो अभीष्ट हो, दे दीजिए।"

तब उसने दराज से चार आने निकाल कर काऊंटर पर दीनानाथ के सामने फेक दिये और साझीदार से, जो कदाचित् उसके चचा थे, कहा कि चार आने फड मे दिये हैं, नोट कर लें।

ऊपर टेबल-लैंड अपनी समस्त सुन्दरता के साथ अविचल खड़ी थी और नीचे पंचगनी और उसके बंगले और दूकाने और दड़बे—जिनमे सुन्दर सूरतें और कुरूप दिल तथा असुन्दर सूरते और सुन्दर दिल थे। प्रकृति के अपूर्व सौन्दर्य की छाया में क्या समस्त सभ्य-संसार और उसके वासी पंचगनी और उसके

वासियों ऐसे नही—दीनानाथ सोचने लगा—लेकिन तभी डाक्टर मरचेट का नर्सिङ्ग-होम आ गया और वह अपने विचारों को झटक कर उस ओर वढ़ा।

डाक्टर मरचेट के नर्सिङ्ग-होम में एक वड़ा वंगला और पीछे के दो छोटे व्लाक शामिल थे। वड़े वंगले में चार व्लाक थे। दीनानाथ को पहले व्लाक ही से पांच रुपये मिल गये। कोई उदार-विचारों का धनी युवक अपनी वीमार पत्नी को लेकर आया हुआ था। सुवह ही डाक्टर साहव ने वताया था कि उसे अव आराम आ गया है और वह प्रसन्न था। दूसले व्लाक में दो रुपये और तीसरे से एक रुपया मिला था। चौथा व्लाक खाली था। दो रुपये उसे दरकार थे और वह पीछे की ओर चल पड़ा।

अभी वह व्लाक से दूर ही था कि उसे एक स्त्री पिछली ओर (सम्भवत. रसोई-घर के आगे) एक लड़की के साथ खड़ी दिखाई दी। दीनानाथ को देखते ही दोनों अन्दर भाग गयी। लेकिन उस एक निमिष ही मे दीनानाथ ने जहां उनकी वेश भूषा देखकर जान लिया कि वे उत्तर की है—चाहे फिर पंजाव अथवा यू० पी० की हों—वहाँ उनकी आकृतियों पर गहरी व्यथा की छाप भी उससे छिपी न रही। उनकी दुखी निगाहें तीरों की भांति उसके हृदय को वेधती हुई चली गयी। वह उन निगाहों की व्यथा से अनभिज्ञ न था। नये नये पंचगनी आने वाले रोगियों और उनके तीमारदारों की आंखों में कुछ ऐसी ही व्यथा होती है। इनके साथ आने वाले रोगी की वीमारी कदाचित् असाध्य है इसीलिए इनकी आंखों के गम की मात्रा भी अधिक है—उसने मन ही मन सोचा—और वढ़कर पहले व्लाक पर

दस्तक दी।

वहा से उसे एक रुपया मिल गया। अब पांच सौ में केवल एक रुपया कम रह गया था। वह उत्साह के साथ, आशा और निराशा मे झकोले लेता सा, दूसरे ब्लाक की ओर बढा। न जाने क्यों, वह चाहता था कि उसी ब्लाक से उसे एक रुपया मिल जाय और उसका पांच सौ रुपया पूरा करने का निश्चय डा० मरचेंट के नर्सिंग-होम ही मे पूरा हो जाय—और उसने दस्तक दी।

कुंडी खोल कर जो लड़की दीनानाथ के किवाड़ खोलते-खोलते अन्दर भाग गयी, दीनानाथ को लगा कि वही थी जो उसे आते समय कदाचित अपनी माँ के साथ बाहर खड़ी मिली थी।

अन्दर चारपाई पर एक पचास-पचपन वर्ष के अत्यन्त क्षीण-काय बुजुर्ग लेटे थे। एक अजनबी को देख कर उठ बैठे। उनके कल्लों पर स्याही और दृष्टि के सहम मे उन माँ बेटी की सी व्यथा छिपी थी। उन को देखकर दीनानाथ को अपना सदेह ठीक ही जान पड़ा। उसने अपने आने का मंतव्य प्रकट किया तो उनके ओठों पर एक वेदना-भरी क्षीण मुस्कान फैल गयी।

"हम गरीब क्या मदद कर सकेंगे ?" उन्होने कहा।

"कुछ भी दीजिए, लोगों ने तीस रुपये से लेकर चार आने तक दिया है।"

तब उस बुजुर्ग ने अपने लकड़ी जैसे हाथों से बिस्तर के नीचे से कुछ टटोलने का प्रयास किया। असफल रहने पर आवाज दी—"अफजल !"

वही छोटी-सी लड़की क्षण भर के लिये किवाड़ की ओट

में आ खड़ी हुई और उसने जिस तरह कहा कि "अफजल बाहर गया एं!" उससे अनायास दीनानाथ के मुह से निकला—"की तुसी पंजाबी ओ ?"

यह कहते हुए वह पास पड़ी हुई लोहे की कुर्सी पर बैठ गया।

"जी असी बे-नसीब जलन्धर दे रहन वाले आं !"

"वहां कोई मुसलमान रहा या पश्चिम के हिन्दुओं की तरह सब उजड़ गये ?"

"सब तबाह हो गये !" बुजुर्ग ने आर्द्र कंठ से कहा और पहरावे से उसे मुसलमान समझकर वे अपनी विपदा की कहानी उससे कह चले।

दीनानाथ ने पास्कितान मे हिन्दु-सिख स्त्रियों पर होने वाले पाशविक अत्याचारों की बात सुनी थी—कुंवारी लड़कियों के साथ बलात्कार किया गया। उनको नंगा करके उनकी छातियों पर पाकिस्तान जिन्दाबाद लिखकर उनका जलूस निकाला गया। बड़ी-बूढ़ियों की छातियां काटी गयी ! माँ बाप के सामने उनकी बच्चियों के साथ मुँह काला किया गया। बच्चों के सामने उनके माता पिता की गर्दनें काटी गयी। कत्ल, गारतगरी, लूट की ऐसी दहला देने वाली घटनाएं पढ़-पढ़कर दीनानाथ का रक्त खौल-खौल उठा था। लेकिन उन बुजुर्ग से जालन्धर में मुसलमानों की तबाही का हाल सुनते-सुनते दीनानाथ के रोंगटे खड़े हो गये। इनमें से कौन-सा अत्याचार था जो राम और कृष्ण, नानक और गोविन्द के नाम लेवाओं ने मुसलमानों पर न तोड़ा था। जब उन बुजुर्ग ने बताया कि स्टेशन के पास हिन्दुओं ने दो बड़े-बड़े हवन-कुण्ड बना रक्खे थे जिन में मुसलमानों को बली के बकरों की भाति जीवित झोंक दिया जाता था और प्रतिशोध

के देवता को यह बलि देकर ब्राह्मण उल्लास से जयकारे बुलाते थे तो दीनानाथ के लिए कुर्सी पर बैठे रहना मुश्किल हो गया। बेचैन होकर वह कमरे मे घूमने लगा। उन बुजुर्ग के दो बड़े, लड़के, एक लड़की और दामाद, भिन्न यातनाएं सहकर प्रतिशोध की इस वह्नि मे जल गये थे। वे अपनी पत्नी और बच्ची के साथ दिल्ली मे हकीम को अपने आपको दिखाने आये हुए थे। दिल्ली में झगड़ा हुआ तो किसी प्रकार तन के कपड़े लेकर बम्बई पहुचे। बीमार तो थे ही। बम्बई के डाक्टरो ने दिक का फतवा दिया। किसी प्रकार मुसलमान भाइयों की सहायता से पंचगनी आये। उनका छोटा लड़का पाकिस्तान चला गया था। उनकी बीमारी की खबर पा, जान को जोखम मे डालकर कराची के रास्ते बम्बई पहुंचा।

"इन्तकाम की आग में तन-मन जलता है" वे बोले, "लेकिन जब उससे पाकिस्तान मे हिन्दुओं पर होने वाले जुल्मों की बात सुनते है तो इसे अपने ही गुनाहों का फल समझ कर चुप हो रहते हैं। दो महीने से डाक्टर मरचेंट के यहां पड़े है, लेकिन मुसलमान ही सही डाक्टर साहब कारूं तो है नही। कब तक मदद करेंगे!" और उन्होंने माथे पर हाथ मारकर कहा कि जो खुदा को मंजूर है . . ."

बात समाप्त करते-करते बुजुर्ग की आंखों से अनायास आंसू बहने लगे। तब न जाने दीनानाथ को क्या हुआ। वह सेठ हीरा-मल से किया हुआ अपना वचन भूल गया। आवेश-वश जेब से उसने एक कम पांच सौ के नोट और रेजगारी निकाली और उसे बुजुर्ग के सामने चारपाई पर रख दिया।

बुजुर्ग ने चकित-तरल आंखों से उसकी ओर देखा।

"बाबा, मै भी हिन्दू हूँ। मेरा घर-द्वार पाकिस्तान में लुट चुका है। पाकिस्तान मे रब्बुल-आलमीन मे यकीन रखने वाले मुसलमानों ने बेकसूर हिन्दुओं पर और हिन्दुस्तान में घट-घट मे वासी भगवान के अनुयायियों ने निर्दोष मुसलमानों पर जो अत्याचार तोड़े हैं, उनका कफ्फ़ारा[१] वे सात जन्म में अदा नही कर सकते। मेरी यही दुआ है कि भगवान उन दोनों को सुमति दे। मैं यह चन्दा पजाब के दुखी शरणार्थियों के लिए इकट्ठा कर रहा था। आप भी पजाब के शरणार्थी है और दुखी भी कम नही। ज्यादा रुपया नहीं, पर देखिए, यदि इससे आपका कुछ काम निकल सके।"

और इससे पहले कि बुजुर्ग कुछ कहते अथवा दीनानाथ कुछ और सोचता, वह रूमाल से आखों को पोंछता हुआ बाहर निकल आया।

आस-पास रुण्ड-मुण्ड, सूखी मटियाली पहाड़ियां बिखरी हुई थी। और उनके मध्य अपनी समतल धरती और समस्त भव्यता को लिये हुए टेबल-लैंड खड़ी थी। दायीं ओर डूबते हुए सूर्य कि किरणे सिलवर के पेड़ों की फुगनियों को छूती हुई उसे अपूर्व आकर्षण प्रदान कर रही थी।

---

[१] कफ़्फ़ारा=पश्चाताप।

कमला चौधरी

: २१ :

कर्तव्य

ऊषा का पति उसे बहुत प्यार करता है। सारे मुहल्ले की स्त्रियो मे दिन-रात इसी बात की चर्चा रहती है। ऊषा भी अपने को अन्य स्त्रियो से भाग्यशीला मानती है। वह देखती है—मेरे पति के समान अन्य किसी स्त्री के पति अपनी पत्नी का इतना आदर-सम्मान और प्यार नही करते, मेरा पति तो किसी बात मे भी मेरी उपेक्षा नही करता। यथा शक्ति मेरी फरमाइशो को पूरा करने मे वह कभी लापरवाही नही करता।

वह चाहता है, मेरी ऊषा सदा ही सजी-बजी दिखलाई दे। इस कारण वह ऊषा के लिये अनेक प्रकार के शृंगार की वस्तुये लाया करता है और वहुत आग्रह से ऊषा को सजाता है, अपने साथ सैर और सिनेमा को भी ले जाता है।

ऊषा की सहेलिया कहती है—अरे, तूने उस पर क्या जादू कर रक्खा है, मुझे भी बता दे न ?

ऊषा का हृदय मीठे अभिमान से भर जाता है। हंस कर वह कहती तो यही है—मेरे लिए क्या कोई अनोखी बात है ? तुम्हारे पति किस बात मे तुम्हारा लाड़ नही करते ?—किन्तु मन मे अवश्य सोचती है कि सहेलियो की बातो मे सचाई है। जो अत्य-

धिक पति-प्रेम ऊषा को प्राप्त है वह किसी भी सहेली को मुअस्सर नहीं। उसका पति तो असीम प्रेम के कारण उसे कभी पिता के घर भी जाने नही देता है एक दिन का विछोह भी उसे असह्य है।

(२)

'हरिहर क्षेत्र का मेला, बिहार प्रान्त का मशहूर मेला है। मवशियों का इससे बड़ा मेला दूसरा नही होता'। इस कारण दूर-दूर के लोग इस मेले मे सम्मिलित होते है।

आज मेले का तीसरा दिन था, गंगा के किनारे भारी भीड़ थी। चारों ओर मेला भरा था। जल के अंदर किश्तियों की बाढ़-सी आ रही थी। फिर भी बैठने वालों को किश्ती खाली न मिलती थी और सध्या का समय था इसलिए लोग बोटिंग का आनन्द लेने को उतावले हो रहे थे।

ऊषा भी अपने पति के साथ एक नाव पर बैठी। मल्लाह लोग नहीं-नहीं करते ही रहे, किन्तु भीड़ मे कौन किसी की सुनता है। जब तक खुले-खुले उस पर बहुत भीड़ हो गई।

बोझ के कारण मल्लाहों का साहस टूट गया। किश्ती बीच धारा में आकर डगमगाती हुई भवंर मे फस गई। तुरन्त मल्लाहों ने नौका डूबने का ऐलान कर दिया और वह सब जल में कूद कर प्राण बचाने की चेष्टा करने लगे।

एक-एक करके सभी मनुष्य नाव से कूद पड़े। जो तैरने की कला के विशेषज्ञ नहीं थे, वे भी यह सोच कर कि मरना तो है ही, फिर साहस से क्यों न मरा जाय, जीवन-रक्षा के लिए प्रयोग करने लगे।

नाव पर ऊषा और उसके पति दो ही प्राणी शेष रह गये थे। पति महाशय धोती का फेंट कस कर कूदने की चेष्टा मे थे और

ऊषा भयभीत हिरनी की भांति एक टक पति का मुख निहार रही थी। उसका हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था और उसी प्रकार नौका भी हिलोरे मार कर अपने जल-मग्न होने का संकेत कर रही थी। वायु की गति बड़ी तीव्र हो गई, ऊषा ने भय से आंखे बंद कर लीं। उसे जान पड़ा मानो प्रलय हुई जा रही है और यह अतिम समय है।

अब तक वह अपने पति की मंगल-कामना के हेतु मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी, परन्तु अब सब भूल कर उसकी इच्छा हुई—पति की छाती से कस कर लिपट जाऊं। अन्तिम समय भी उसे हृदय से विलग होने की इच्छा नही होती थी।

ऊषा ने अपने दोनों हाथ बढा कर पति को पकड़ने की चेष्टा की; किन्तु व्यर्थ ! पति महाशय तो ऊषा पर बिना दृष्टि डाले ही नाव से बाहर हो चुके थे और प्राण-रक्षा की चेष्टा मे व्यस्त थे।

ऊषा आंखें बन्द करके नाव मे गिर पड़ी और मृत्यु का आवाहन करनें लगी। दूर खड़े हजारों मनुष्यों की आखे इस दृश्य को देखने में तल्लीन थी। उनके हृदय इस डूबने वाली की प्राण-रक्षा के लिए एक स्वर से शुभ-कामना कर रहे थे।

(३)

ईश्वर भी एक साथ इतने मनुष्यों की प्रार्थना की अवहेलना न कर सका। हलकी हो जाने के कारण नाव डूबी नही ; बल्कि किनारे की ओर आ गई। कुछ साहसी और सहृदय मनुष्य प्रथम ही ऊषा को बचाने के लिए जल में कूद चुके थे। वे लोग भय से बेहोश ऊषा को तट पर ले आये।

उसके प्रति कितने ही हृदयो मे सहानुभूति का स्रोत उमड़ चुका था। उपचार के लिए जन-समुदाय की भीड़ लग गई। सभी

ईश्वर की अनुकम्पा का गुणगान कर रहे थे और उसके पति की ओर देख कर मुस्करा रहे थे। दो-चार मनुष्यों ने तो कह ही डाला—तुम तो अच्छे तैराक जान पड़ते हो, साथ ही स्त्री को वचाने की चेष्टा करना भी तो तुम्हारा कर्तव्य था।

वेचारी ऊषा टुकुर-टुकुर पति का मुख निहार रही थी ! इतनी भीड़ मे वह क्या कहती ? एकान्त होता तो वह भले ही पति को उपालम्भ दे देती !

उस समय तो उसे ऐसा जान पड़ रहा था, मानो वह स्वयं ही अपनी दृष्टि मे गिर गई हो। अब उसका कुछ मूल्य ही नही रह गया है। व्यर्थ ही भगवान ने उसे बचा लिया, मर जाती तो ठीक था।

किन्तु अव तो वच ही गई, ईश्वर इतनी दया करे कि यह घटना किसी परिचित को मालूम न हो। उसने आंखे उठा कर लज्जायुक्त दृष्टि से ऊपर देखने का प्रयास किया—यहां कोई परिचित व्यक्ति तो नही है ? एक-दो नही, कितने ही खड़े थे। उस ने आंखे नीची कर ली।

क्षण भर मे भविष्य के कितने ही चित्र आखों के सामने घूम गये, उसके प्रेम पर ईर्ष्या करने वाले अब प्रसन्न होगे, सहेलियां दूसरे ही प्रकार की चर्चा करेगी—क्या यह ऊषा का वही पति है, जो प्रेम के कारण उसे पिता के घर भी नही जाने देता था ? कहता था—ऊषा, तुम्हारे बिना इस घर मे कैसे रहूगा ?

उसका यह प्रेम कैसा था ? ऊषा मर भी जाती तो क्या पति को कुछ अधिक शोक होता ? घर मे अकेला रहना सम्भव है, एक दिन के लिए भी असहनीय होता, किन्तु उसका भी तो उपाय था—कुछ लोक-लज्जा के निर्वाहोपरान्त दूसरा विवाह हो

जाता। वह मूर्खा भी समझती---मेरा पति मुझे बहुत प्रेम करता है। किन्तु यह क्या ? व्यर्थ मे ऊषा ऐसी बाते क्यों सोच रही है ? भगवान् ने उस पर कम कृपा नही की जो उसका पति भीषण दुर्घटना से बच गया। उसे ईश्वर को कोटिशः धन्यवाद देना चाहिए और खुशी मनानी चाहिए। पति के हाथ से गंगा पर कुछ दान-पुण्य करवा देना चाहिए। ईश्वर ने बहुत बड़ी अलफ काट दी !

व्यर्थ किसी पर दोषारोपण करना उचित नही है, संसार मे कौन ऐसा है, जिसके प्रेम मे स्वार्थ की छाया नही होती ? किन्तु कर्तव्य ? हाँ, मानव-समाज कर्त्तव्य ही की शृखला मे बधा है। किन्तु इससे क्या, अपनी प्राण-रक्षा करना भी तो कर्तव्य है ?

स्त्री, पुरुष, पिता, पुत्र, यह सव तो मोह जाल है। कोई किसी का नही है। मोह मे फस कर अपने प्राण वचाने की सामर्थ्य होते हुए भी चेष्टा न करना, आत्म-हत्या करना भी तो पाप है।

कुछ समय पूर्व भारतीय महिलायें पति के साथ सती हो जाना ही अपना कर्तव्य मानती थी, यही उनका आदर्श था, किन्तु क्या वह आत्म-हत्या भी पाप थी ?

इस प्रकार की उधेड़-बुन मे पड़ कर ऊषा घवरा उठी। यह गहन विषय उसके हल करने का नही है। गीताकार ही जाने।

स्त्री के लिए इससे वढ कर सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है---भगवान् ने उसके पति की एक आई अलफ काट दी। स्त्री को तो इतने ही मे संतुष्ट होना चाहिए।

उसने अपने हृदय को दृढ़ किया और आंखों मे प्रसन्नता भर कर उठ खड़ी हुई। पति की लज्जा दूर करने की चेष्टा में बोली .... चलो, अव घर चले। परमात्मा ने दया करके हम लोगों के प्राण वचा लिये। आप चिन्ता क्यों करते है ?

फिर भी उसका हृदय हल्का नही हुआ, कुछ कांटा-सा खटकता ही रहा। सहेलियां प्रेम का विषय लेकर जव यह चर्चा छेड़ेंगी तो वह क्या उत्तर देगी?

(४)

मृत्यु शय्या पर पड़े अपने पति के सिरहाने बैठी ऊषा गरम-गरम आंसू वहा रही थी। आज छः महीने से उसके पति को ऐसे ज्वर ने घेरा है कि दिन-पर-दिन उसकी दशा विगड़ती ही जाती है। एक दिन को भी इस पापी ज्वर ने छोड़ा नही और न छूटने की आशा ही है। डाक्टर कहते है टी० वी० है।

टी० वी० क्या ऐसा असाध्य रोग है जिससे वचने का संसार मे कोई उपाय ही नही है? फिर क्या होगा? ईश्वर, क्या होने वाला है?

इससे आगे वह न सोच सकी। आंखें और हृदय दोनों ही नदी के प्रवाह की भांति उमड़ आये। उसी समय वहां सान्त्वना के हेतु समीप ही दूसरे पलंग पर सोता हुआ वच्चा जाग पड़ा और रोकर उसने पुकारा—अम्मा। ऊपा ने आखे पोंछ ली और कुछ सेंकिड को आखे वन्द कर मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना की—मुझे अकेली को रोने के लिए न वचा रखना।

वच्चे को गोद मे उठाते ही उसे ध्यान आया कि हम दोनों के पीछे इसका क्या होगा? फिर संसार मे इस अवोध वालक का कौन है? पति के वाद भी इसके हेतु अपने प्राण रखने की चेष्टा करना क्या मेरा धर्म है? किन्तु इस कल्पना ने फिर उसके अन्दर तूफान मचा दिया। कठ रुकने-सा लगा आखे छलछला आयीं।

उसका सारा शरीर थरथर कांपने लगा। यह क्या! वह ही नहीं, यह तो सारा घर ही कांप रहा है। पति की चारपाई भी तो

हिल रही है ।

वह बच्चे को लिये हुए चारपाई के समीप भाग गई । उसी समय चारों ओर कोलाहल मच गया—भूकम्प ! भूकम्प ! !

ऊषा के रोगी पति ने धीमी आवाज से कहा—ऊषा ! मुझ में तो उठने की शक्ति नही है, मेरी चिन्ता छोड़ो और बच्चे को लेकर भाग जाओ ।

ऊषा ने भी देखा कि वायु के झकोरों के साथ मिट्टी-रेत घर मे भरी आ रही है । भयंकर धड़-धड़ की आवाज के साथ घर गिरा ही चाहता है, किन्तु उसके पास पति को बचाने का कोई उपाय नही है । इस समय वह घर में अकेली है और गोद में बच्चा है ।

इस विचार ही में कमरे की एक दीवार गिर पड़ी । ऊषा का पति चिल्ला पड़ा—ऊषा विदा ! तुम भागो ।

ऊषा बच्चे को छाती में दबाकर बाहर की ओर भागी और भयभीत रोते हुए बच्चे को बाहर फेंक कर तुरन्त ही पति को बाहर निकालने के प्रयत्न मे फिर कमरे मे गई , परन्तु व्यर्थ !

उसी समय धड़-धड़ की आवाज के साथ ऊपर की छत आ गिरी और साथ ही ऊषा भी पति की छाती पर गिर पड़ी ।

बेचारी ऊषा को इतना भी अवकाश न मिला जो पुत्र के लिए ईश्वर से मगल-कामना भी कर सकती । दोनों पति-पत्नी क्षुधित भूमि के गर्भ में समा गये ।

होमवती देवी

: २२ :

अपना घर

उमा जब व्यथा और वैधव्य का भार मन पर लादे चारों पल्ले झाड़ कर मैके चली आई, तब उसने देखा कि वहां भी कुछ नही है। अति वैभव और विभूति मे जन्म और लालन-पालन हुआ था। वह सब आज भी ज्यों-का-त्यों था, जैसे उस घर मे उसके लिए अवहेलना के अतिरिक्त कुछ भी शेष नही बचा था। मानो सारा सम्मान, स्नेह और अधिकार माता-पिता के साथ ही चिता पर भस्म हो गया था। भाई उसका कोई था ही नही। वह पिता की एकमात्र सन्तान थी, जो आज दुर्भाग्य की मारी इस चचेरे भाई की देहली पर आश्रय ग्रहण करने को बाध्य हुई थी। उसने तव ऐसा नही सोचा था कि इस घर का एक-एक अन्न का दाना भी पोषण के अतिरिक्त उसके शोषण का भी कारण वन जायगा, अन्यथा वह किसी की मेहनत-मजदूरी करके अथवा वच्चों को अ-आ-इ-ई पढाकर भी अपना और उस अभागे वच्चे का पेट भर सकती थी, जिसको केवल एक अभिशाप के रूप मे कलेजे से चिपकाये, वह जीवित रहने को मजबूर थी।

वच्चा भी न बिल्कुल अबोध था और न समझदार था यह सातवां वर्ष चल रहा था उसे। हर वात में मामा के वच्चों की

हिरस करता—गाड़ी में बैठूंगा, मोटर में घूमने जाऊंगा, मैं भी दूध पिऊगा, सन्तरा मुझे क्यों नही दिया ? यह जूता पुराना है, मैं नया लूगा, मुझे भी नए कपड़े पहना दो ...... । उसकी अनेक फरमाइशें प्रत्येक क्षण उमा का खून चूसती रहती। मन ही मन सोचती, कैसे इस कम्बखत की जवान पर ताला डाले ? कैसे इसका दम घोंट कर खुद मर जाय ! यही सव सोच-सोच कर उसकी भावुकता सिर धुनने लगती और वह हाथ का काम छोड़ कर किसी निराले कोने की खोज मे बावली-सी भटकने लगती, जहां कि वह दो बूद आसू गिराकर मन का भार हल्का कर सके।

उसने सुसराल मे रहना पसन्द किया था। पर रहती किसके पास ? देवर-जेठों ने उसके पति के बीमे के जो दस-पांच हजार रुपये मिलने थे उसके बटवारे के लिए ही मुकदमेबाजी शुरू कर दी थी और इसीलिए बीमा कम्पनी वालो ने निर्णय होने तक रुपया देने से इन्कार कर दिया था, यद्यपि रुपये का असली वारिस यह सात वर्ष का नीलम ही था। इसी कारण उमा को दिन में ही आसमान के तारे दीखने लगे थे। आखिर उसका भी तो यही सब परिणाम हुआ था। पिता की अतुल धन-राशि मे से अकेली सन्तान होने पर भी वह दूध मे गिरी मक्खी के समान निकालकर बाहर फेंक दी गई थी। केवल सम्मिलित परिवार की दुहाई देने पर ही तो यह चचेरा भाई सब हथिया बैठा, और आज इसी के आश्रय मे दो टुकड़ों के लिए उसे बाध्य होकर आना पड़ा।

उसे कही नौकरी करने मे भी सकोच था। क्या कह कर वह परिचय देगी अपना ? तिस पर उम्र छोटी और रूप की पराकाष्ठा नहीं। भाग्य से वड़े घर मे जन्म लिया था और भाग्य ही उसे साधारण स्थिति में ले आया। पर आज वह भी नही रहा।

होमवती देवी

: २२ :

अपना घर

उमा जब व्यथा और वैधव्य का भार मन पर लादे चारों पल्ले झाड़ कर मैके चली आई, तब उसने देखा कि वहा भी कुछ नहीं है। अति वैभव और विभूति मे जन्म और लालन-पालन हुआ था। वह सब आज भी ज्यों-का-त्यों था, जैसे उस घर मे उसके लिए अवहेलना के अतिरिक्त कुछ भी शेष नही बचा था। मानो सारा सम्मान, स्नेह और अधिकार माता-पिता के साथ ही चिता पर भस्म हो गया था। भाई उसका कोई था ही नही। वह पिता की एकमात्र सन्तान थी, जो आज दुर्भाग्य की मारी इस चचेरे भाई की देहली पर आश्रय ग्रहण करने को बाध्य हुई थी। उसने तब ऐसा नही सोचा था कि इस घर का एक-एक अन्न का दाना भी पोषण के अतिरिक्त उसके शोषण का भी कारण वन जायगा, अन्यथा वह किसी की मेहनत-मजदूरी करके अथवा वच्चों को अ-आ-इ-ई पढाकर भी अपना और उस अभागे वच्चे का पेट भर सकती थी; जिसको केवल एक अभिशाप के रूप मे कलेजे से चिपकाये, वह जीवित रहने को मजबूर थी।

वच्चा भी न बिल्कुल अबोध था और न समझदार था यह सातवा वर्ष चल रहा था उसे। हर बात मे मामा के वच्चों की

हिरस करता—गाड़ी मे बैठूगा, मोटर में घूमने जाऊंगा, मै भी दूध पिऊगा, सन्तरा मुझे क्यो नही दिया ? यह जूता पुराना है, मै नया लूगा, मुझे भी नए कपड़े पहना दो....... । उसकी अनेक फरमाइशें प्रत्येक क्षण उमा का खून चूसती रहती। मन ही मन सोचती, कैसे इस कम्बखत की जवान पर ताला डाले ? कैसे इसका दम घोट कर खुद मर जाय ! यही सब सोच-सोच कर उसकी भावुकता सिर धुनने लगती और वह हाथ का काम छोड़ कर किसी निराले कोने की खोज मे बावली-सी भटकने लगती, जहां कि वह दो बूद आंसू गिराकर मन का भार हल्का कर सके।

उसने सुसराल में रहना पसन्द किया था। पर रहती किसके पास ? देवर-जेठों ने उसके पति के बीमे के जो दस-पाच हजार रुपये मिलने थे उसके बंटवारे के लिए ही मुकदमेबाजी शुरू कर दी थी और इसीलिए बीमा कम्पनी वालों ने निर्णय होने तक रुपया देने से इन्कार कर दिया था, यद्यपि रुपये का असली वारिस यह सात वर्ष का नीलम ही था। इसी कारण उमा को दिन मे ही आसमान के तारे दीखने लगे थे। आखिर उसका भी तो यही सब परिणाम हुआ था। पिता की अतुल धन-राशि मे से अकेली सन्तान होने पर भी वह दूध मे गिरी मक्खी के समान निकालकर बाहर फेंक दी गई थी। केवल सम्मिलित परिवार की दुहाई देने पर ही तो यह चचेरा भाई सब हथिया बैठा, और आज इसी के आश्रय मे दो टुकड़ों के लिए उसे बाध्य होकर आना पड़ा।

उसे कही नौकरी करने मे भी संकोच था। क्या कह कर वह परिचय देगी अपना ? तिस पर उम्र छोटी और रूप की पराकाष्ठा नहीं। भाग्य से वड़े घर में जन्म लिया था और भाग्य ही उसे साधारण स्थिति में ले आया। पर आज वह भी नही रहा।

होंमवती देवी

: २२ :

अपना घर

उमा जब व्यथा और वैधव्य का भार मन पर लादे चारों पल्ले झाड़ कर मैके चली आई, तब उसने देखा कि वहां भी कुछ नहीं है। अति वैभव और विभूति मे जन्म और लालन-पालन हुआ था। वह सब आज भी ज्यों-का-त्यों था, जैसे उस घर में उसके लिए अवहेलना के अतिरिक्त कुछ भी शेष नही वचा था। मानो सारा सम्मान, स्नेह और अधिकार माता-पिता के साथ ही चिता पर भस्म हो गया था। भाई उसका कोई था ही नही। वह पिता की एकमात्र सन्तान थी, जो आज दुर्भाग्य की मारी इस चचेरे भाई की देहली पर आश्रय ग्रहण करने को वाध्य हुई थी। उसने तब ऐसा नही सोचा था कि इस घर का एक-एक अन्न का दाना भी पोषण के अतिरिक्त उसके शोषण का भी कारण वन जायगा, अन्यथा वह किसी की मेहनत-मजदूरी करके अथवा बच्चों को अ-आ-इ-ई पढ़ाकर भी अपना और उस अभागे वच्चे का पेट भर सकती थी; जिसको केवल एक अभिशाप के रूप मे कलेजे से चिपकाये, वह जीवित रहने को मजबूर थी।

वच्चा भी न बिल्कुल अबोध था और न समझदार था यह सातवां वर्ष चल रहा था उसे। हर बात मे मामा के बच्चों की

हिरस करता—गाड़ी मे बैठूगा, मोटर में घूमने जाऊंगा, मै भी दूध पिऊंगा, सन्तरा मुझे क्यो नही दिया ? यह जूता पुराना है, मै नया लूगा, मुझे भी नए कपड़े पहना दो ...... । उसकी अनेक फरमाइशे प्रत्येक क्षण उमा का खून चूसती रहतीं। मन ही मन सोचती, कैसे इस कम्वखत की जवान पर ताला डाले ? कैसे इसका दम घोट कर खुद मर जाय ! यही सब सोच-सोच कर उसकी भावुकता सिर धुनने लगती और वह हाथ का काम छोड़ कर किसी निराले कोने की खोज मे बावली-सी भटकने लगती, जहा कि वह दो बूद आंसू गिराकर मन का भार हल्का कर सके।

उसने सुसराल में रहना पसन्द किया था। पर रहती किसके पास ? देवर-जेठों ने उसके पति के बीमे के जो दस-पांच हजार रुपये मिलने थे उसके बटवारे के लिए ही मुकदमेबाजी शुरू कर दी थी और इसीलिए बीमा कम्पनी वालो ने निर्णय होने तक रुपया देने से इन्कार कर दिया था, यद्यपि रुपये का असली वारिस यह सात वर्ष का नीलम ही था। इसी कारण उमा को दिन मे ही आसमान के तारे दीखने लगे थे। आखिर उसका भी तो यही सब परिणाम हुआ था। पिता की अतुल धन-राशि मे से अकेली सन्तान होने पर भी वह दूध मे गिरी मक्खी के समान निकालकर वाहर फेक दी गई थी। केवल सम्मिलित परिवार की दुहाई देने पर ही तो यह चचेरा भाई सब हथिया बैठा, और आज इसी के आश्रय मे दो टुकड़ों के लिए उसे वाध्य होकर आना पड़ा।

उसे कहीं नौकरी करने मे भी संकोच था। क्या कह कर वह परिचय देगी अपना ? तिस पर उम्र छोटी और रूप की पराकाष्ठा नही। भाग्य से वड़े घर मे जन्म लिया था और भाग्य ही उसे साधारण स्थिति में ले आया। पर आज वह भी नही रहा।

होमवती देवी

: २२ :

अपना घर

उमा जब व्यथा और वैधव्य का भार मन पर लादे चारों पल्ले झाड़ कर मैके चली आई, तब उसने देखा कि वहां भी कुछ नही है। अति वैभव और विभूति मे जन्म और लालन-पालन हुआ था। वह सब आज भी ज्यों-का-त्यों था, जैसे उस घर में उसके लिए अवहेलना के अतिरिक्त कुछ भी शेप नही बचा था। मानो सारा सम्मान, स्नेह और अधिकार माता-पिता के साथ ही चिता पर भस्म हो गया था। भाई उसका कोई था ही नही। वह पिता की एकमात्र सन्तान थी, जो आज दुर्भाग्य की मारी इस चचेरे भाई की देहली पर आश्रय ग्रहण करने को बाध्य हुई थी। उसने तब ऐसा नही सोचा था कि इस घर का एक-एक अन्न का दाना भी पोपण के अतिरिक्त उसके शोषण का भी कारण बन जायगा, अन्यथा वह किसी की मेहनत-मजदूरी करके अथवा बच्चों को अ-आ-इ-ई पढाकर भी अपना और उस अभागे बच्चे का पेट भर सकती थी; जिसको केवल एक अभिशाप के रूप में कलेजे से चिपकाये, वह जीवित रहने को मजबूर थी।

बच्चा भी न बिल्कुल अबोध था और न समझदार था यह सातवां वर्प चल रहा था उसे। हर बात में मामा के बच्चों की

हिरस करता—गाड़ी मे बैठूंगा, मोटर मे घूमने जाऊंगा, मै भी दूध पिऊगा, सन्तरा मुझे क्यो नहीं दिया ? यह जूता पुराना है, मैं नया लूगा, मुझे भी नए कपड़े पहना दो ...... । उसकी अनेक फरमाइशें प्रत्येक क्षण उमा का खून चूसती रहती। मन ही मन सोचती, कैसे इस कम्बख्त की जवान पर ताला डाले ? कैसे इसका दम घोंट कर खुद मर जाय ! यही सव सोच-सोच कर उसकी भावुकता सिर धुनने लगती और वह हाथ का काम छोड़ कर किसी निराले कोने की खोज में बावली-सी भटकने लगती, जहा कि वह दो बूद आसू गिराकर मन का भार हल्का कर सके।

उसने सुसराल मे रहना पसन्द किया था। पर रहती किसके पास ? देवर-जेठों ने उसके पति के बीमे के जो दस-पाच हजार रुपये मिलने थे उसके बंटवारे के लिए ही मुकदमेबाजी शुरू कर दी थी और इसीलिए बीमा कम्पनी वालों ने निर्णय होने तक रुपया देने से इन्कार कर दिया था, यद्यपि रुपये का असली वारिस यह सात वर्ष का नीलम ही था। इसी कारण उमा को दिन मे ही आसमान के तारे दीखने लगे थे। आखिर उसका भी तो यही सब परिणाम हुआ था। पिता की अतुल धन-राशि मे से अकेली सन्तान होने पर भी वह दूध मे गिरी मक्खी के समान निकालकर बाहर फेंक दी गई थी। केवल सम्मिलित परिवार की दुहाई देने पर ही तो यह चचेरा भाई सब हथिया बैठा, और आज इसी के आश्रय मे दो टुकड़ों के लिए उसे बाध्य होकर आना पड़ा।

उसे कही नौकरी करने मे भी संकोच था। क्या कह कर वह परिचय देगी अपना ? तिस पर उम्र छोटी और रूप की पराकाष्ठा नही। भाग्य से वड़े घर मे जन्म लिया था और भाग्य ही उसे साधारण स्थिति में ले आया। पर आज वह भी नही रहा।

पति के सुख में वह सब कुछ भूल गई थी, किन्तु आज वे सारे घाव हरे हो आये, जिन्हे उघाड़ने मे भी उसे लाज लगती थी और दबाने में भी अपार कष्ट।

और सहसा जैसा अपने आप से दूर भागने की चेष्टा में नीलम के मुह पर जोर का तमाचा लगा कर उसे धमकाते हुए कहा, 'चल, किताब लेकर आ और जो सबक कल बताया था, उसे सुना…… ।' फिर मन ही मन कुढ कर उसने उसे गाली दी—'मर जाता, तो पाप कटता। उन्ही के साथ इसे भी चिता पर धर आती, तो पिण्ड छूटता।' और साथ ही उसकी बड़ी-बड़ी सुन्दर आंखों से आंसू ढलकने लगे। जल्दी से मुह पोंछ कर उमा साग छौकने बैठ गई, पीछे बैठी मिसरानी आटा गूंधते-गूंधते बोली—'ऐसी मत दुत-कारो, बीबी! सिर बदले का है। जी गया, तो फिर वे ही दिन आ जायेंगे,……बच्चा है। बच्चों को देखकर दो फूल बगीचे से तोड़ लाया, तो क्या घट गया?……फिर ये बड़े आदमी हैं, कोई क्या कहे। बड़े आदमियों के बच्चे ऐसे होते ही हैं। तुरन्त शिकायत करने भी तो आ गये ……।' रसोईदारिन की सहानु-भूति से उमा को तनिक भी आश्वासन मिला हो, ऐसा नही हुआ। बल्कि उसका हृदय और बिध-सा गया। 'बड़े आदमी! …… बड़े आदमियों के बच्चे, और यह मिसरानी, और वह …… और नीलम…… ओह।' और वह तुरन्त चूल्हे पर से उठकर ऊपर छत पर चली गई, जहां धूप मे बैठा नीलम पिछले दिन का सबक याद करने की चेष्टा कर रहा था।

(२)

'सेठ कन्हैयालाल जब मरे, तो अशरफी बीबी की उम्र बहुत होगी, तो तीस साल की होगी, पर उन्होंने उसी दिन से किनारी-

धोती पहनना छोड़ दी और साल भर तक एक वक्त खाया—और वह भी अलूना·····हां।' कहते-कहते उमा की बाल विधवा भाभी ने, जिसकी उम्र चालीस को पार कर गई थी, दो लीची छील कर मुह में डाल लीं। उमा ने सिलाई हाथ से रोककर एक बार इस भावज को सिर से पैर तक देखा और दूसरी बार देखा, उसी चौड़ी पाड़ वाली हरे रंग की किनारीदार चिट्टी धोती और आसमानी रंग के छीट के ब्लाउज को। पल भर मे उसने अपने उन बड़े जमीदार विधुर भैया की बात भी सोच डाली, जिन्होंने इन्हें समस्त अधिकार दे रक्खा है कि चाहे जिसको कुछ भी कह डालें। फिर उसने निश्चय किया—कल सब धोतियों की किनारी फाड़ कर चारों ओर मशीन घुमा डालेगी वह। उस दिन शाम को उसने खाना नहीं खाया और न किसी ने इसका कारण ही उससे पूछा।

अगले दिन से नीलम का स्कूल भी सुबह का हो गया। उमा ने बहुत सवेरे ही उठ कर नित्य की भाति सब बच्चों को नाश्ता और दूध देकर थोडा-सा दूध नीलम के सामने भी रख दिया। सोचा—छोटा बच्चा है, बारह बजे तक भूखा कैसे रहेगा? नीलम अपना बस्ता ठीक करने चला गया। चौकी पर दूध रक्खा था। उसी चौकी पर आंगन मे बैठे अन्य बच्चे भी खा-पी रहे थे, किन्तु दुर्भाग्य से एक कौआ आया और अभागे नीलम का दूध एक ही चोंच मार कर लुढका गया। बच्चों ने शोर मचाया। गृहिणी ने भौहे तरेर कर कहा—'और क्या, पीने को भी चाहिए, बिखेरने को भी। किस घर से आयेगा ऐसा? भैस, गाय घर में पाल रक्खी है, तो क्या इसलिए कि पानी की तरह दूध बहाया जाय?'

उमा और नीलम स्तब्ध और अपराधी के समान ठगे-से खड़े के खड़े ही रह गये। न मां को दुबारा दूध देने की हिम्मत हुई और

पति के सुख में वह सब कुछ भूल गई थी, किन्तु आज वे सारे घाव हरे हो आये, जिन्हें उघाड़ने में भी उसे लाज लगती थी और दवाने में भी अपार कष्ट।

और सहसा जैसा अपने आप से दूर भागने की चेष्टा में नीलम के मुंह पर जोर का तमाचा लगा कर उसे धमकाते हुए कहा, 'चल, किताव लेकर आ और जो सबक कल वताया था, उसे सुना...... ।' फिर मन ही मन कुढ कर उसने उसे गाली दी—'मर जाता, तो पाप कटता। उन्ही के साथ इसे भी चिता पर धर आती, तो पिण्ड छूटता।' और साथ ही उसकी बड़ी-वड़ी सुन्दर आंखों से आंसू ढलकने लगे। जल्दी से मुह पोंछ कर उमा साग छौकने बैठ गई, पीछे वैठी मिसरानी आटा गूंधते-गूधते बोली—'ऐसी मत दुतकारो, बीबी! सिर बदले का है। जी गया, तो फिर वे ही दिन आ जायेंगे,......बच्चा है। बच्चों को देखकर दो फूल बगीचे से तोड़ लाया, तो क्या घट गया?......फिर ये बड़े आदमी हैं, कोई क्या कहे। बड़े आदमियों के वच्चे ऐसे होते ही है। तुरन्त शिकायत करने भी तो आ गये ......।' रसोईदारिन की सहानुभूति से उमा को तनिक भी आश्वासन मिला हो, ऐसा नहीं हुआ। बल्कि उसका हृदय और बिंध-सा गया। 'बड़े आदमी!...... वड़े आदमियों के बच्चे, और यह मिसरानी, और वह ...... और नीलम....... ओह।' और वह तुरन्त चूल्हे पर से उठकर ऊपर छत पर चली गई, जहां धूप मे वैठा नीलम पिछले दिन का सवक याद करने की चेष्टा कर रहा था।

(२)

'सेठ कन्हैयालाल जव मरे, तो अशरफी बीबी की उम्र वहुत होगी, तो तीस साल की होगी, पर उन्होंने उसी दिन से किनारी-

धोती पहनना छोड दी और साल भर तक एक वक्त खाया—और वह भी अलूना·····हां।' कहते-कहते उमा की बाल विधवा भाभी ने, जिसकी उम्र चालीस को पार कर गई थी, दो लीची छील कर मुह मे डाल ली। उमा ने सिलाई हाथ से रोककर एक बार इस भावज को सिर से पैर तक देखा और दूसरी बार देखा, उसी चौड़ी पाड़ वाली हरे रंग की किनारीदार चिट्टी धोती और आसमानी रंग के छीट के ब्लाउज को। पल भर मे उसने अपने उन बड़े जमीदार विधुर भैया की बात भी सोच डाली, जिन्होंने इन्हें समस्त अधिकार दे रक्खा है कि चाहे जिसको कुछ भी कह डाले। फिर उसने निश्चय किया—कल सब धोतियो की किनारी फाड़ कर चारों ओर मशीन घुमा डालेगी वह। उस दिन शाम को उसने खाना नही खाया और न किसी ने इसका कारण ही उससे पूछा।

अगले दिन से नीलम का स्कूल भी सुबह का हो गया। उमा ने बहुत सवेरे ही उठ कर नित्य की भाति सब बच्चों को नाश्ता और दूध देकर थोड़ा-सा दूध नीलम के सामने भी रख दिया। सोचा—छोटा बच्चा है, बारह बजे तक भूखा कैसे रहेगा? नीलम अपना बस्ता ठीक करने चला गया। चौकी पर दूध रक्खा था। उसी चौकी पर आगन मे बैठे अन्य बच्चे भी खा-पी रहे थे, किन्तु दुर्भाग्य से एक कौआ आया और अभागे नीलम का दूध एक ही चोंच मार कर लुढका गया। बच्चों ने शोर मचाया। गृहिणी ने भौहें तरेर कर कहा—'और क्या, पीने को भी चाहिए, बिखेरने को भी। किस घर से आयेगा ऐसा? भैस, गाय घर मे पाल रक्खी हैं, तो क्या इसलिए कि पानी की तरह दूध बहाया जाय?'

उमा और नीलम स्तब्ध और अपराधी के समान ठगे-से खड़े के खड़े ही रह गये। न मा को दुबारा दूध देने की हिम्मत हुई और

न वालक को मांगने की ही। उसने केवल इतना ही कहा—'मैं दूध नही पिऊगा, अम्मा।' और बगल मे वस्ता दबाकर बाहर चला गया।

उस दिन रात भर पानी बरसता रहा और सुबह भी नही थमा। सब बच्चे स्कूल जाने के लिए तैयार होकर गाड़ी में जा बैठे। नीलम भी वस्ता लटकाए पास आकर खडा हो गया। तभी जमींदार बाबू के वडे लड़के ने कड़क कर कहा—'गाड़ी मे जगह नहीं है। जाना है तो पैदल ही जाओ।'

'भीग जाऊगा, भैया।' कह कर नीलम ज्यों ही गाड़ी की ओर बढा, वह चल दी। धीरे-धीरे नीलम पानी मे भीगता हुआ ही चला।

दोपहर को जब नीलम स्कूल से लौटा, तो उसे तेज बुखार चढा हुआ था। कपड़े, किताबे और कापियां सब पानी मे भीगे थे। उमा ने भीगने का कारण पूछा, तो नीलम रो पड़ा—'अम्मा, अव यहां नही रहेगे। घर चलो, बाबू जी के पास।'

बच्चे की बात से उमा की छाती फूटने लगी। घर...... घर अब कही नही है। बाबू जी,......वे भी अब नही लौटेंगे। कहां लेकर चलू तुझे? तू जल्दी से पढ-लिखकर बड़ा हो जा, बस, तव..... हां, तभी कही घर होगा हमारा। और सोचते-सोचते भविष्य का चित्र उसकी आखों के सामने बनने लगा—नीलम, उस की वहू, उसके बच्चे और नौकर-चाकर, गाय-भैंस, दूध-दही...... और......और अपना घर। यह सब उसकी कल्पना मे चल-चित्रों के समान आने-जाने लगे। इन्होने आकर मानो उस की वेदना को सहला दिया। किसी क्षीण से आशा-तन्तु ने उमा को मानो एक दूसरे ही लोक मे पहुंचा दिया। वह इस समय जैसे २२

वर्ष की युवती नहीं, बल्कि पचास वर्ष की वृद्धा है—भरी-पूरी गृहस्थी की स्वामिनी। और स्नेह के प्रबल प्रवाह मे उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। तभी नीलम ने कहा—'अम्मा, जाड़ा लग रहा है।'

सहसा उमा का स्वप्न भंग हो गया। प्रकृतिस्थ होकर उसने बालक का सारा बदन तौलिये से पोंछ डाला और कपड़े बदल कर बिस्तर पर लिटा दिया। स्वयं भी पट्टी पर माथा टेक कर बैठ गई, किन्तु पल भर मे ही वह सचेत होकर उठ खड़ी हुई, जमीदार भैया की खड़ाऊं का शब्द सुनकर। थालियां तो उसे ही लगानी थीं, अभी चटनी भी नही पिसी थी, न रायता ही बना सकी थी वह। उसका हृदय भय और संकोच के भार से बैठा-सा जा रहा था। नीलम ने कहा—'अम्मा, मुझे छाता मंगा देना, मैं उनकी गाड़ी में नहीं बैठूगा।' और वह 'अच्छा' कहती हुई रसोईघर की ओर चली गई।

(३)

उमा ने अपनी चांदी की सुरमेदानी और शीशा बड़े दीवान जी को थमाते हुए कहा—'किसी को पता न हो, मुन्शी जी, इसे बेच कर एक छोटा-सा छाता,एक जोड़ी जूता और दो-चार कमीज-पाजामों का कपड़ा लाकर इस कमरे में डाल देना, मै उठा लूगी।'

मुन्शी जी ने दोनों चीजों को हाथ में तौलते हुए कहा—'देखो, कितने का माल निकले।'

उमा ने मन ही मन हिसाब लगाया—पूरे बीस तोले की यह चीजें उसकी मां ने शादी मे देने के लिए खरीदी थी। कम से कम बीस रुपये तो मिलेंगे ही। चांदी का भाव तो बहुत तेज है सुनते हैं। फिर मुन्शी से कहा—'छाता कितने तक में आ जायेगा, मुन्शी

जी ! जूता न सही, चप्पल ही ला देना।'

मुन्शी जी ने गम्भीर मुद्रा से उत्तर दिया—'इस समय सभी चीजे चौगुने दामों मे मिल रही है, बीवी ! मुझे क्या इसमें से कुछ खाना थोड़े ही है।'

और तब उमा बिना कुछ कहे घर में लौट आई—ठीक पाले की मारी लता के समान। उसे देखते ही भावज ने व्यंग्य कसते हुए कहा, 'वाहर क्या करने गई थी ?'

'नीलम के लिए छाता मंगाना था और उसका जूता भी टूट गया है विल्कुल।' कहकर उमा साग काटने बैठ गई।

'हूं' कह कर हरनन्दी ने एक तीव्र दृष्टि ननद पर डाली, उसे असीम सन्तोप नही हुआ था। वह वातों का सिलसिला इतने संक्षेप मे समाप्त कर देने की आदी नही थी। बोली—"वे कहते थे कि नीलम अव सयाना हो गया है। अन्दर जनानानखाने में सोने की क्या जरूरत है, बाहर सोना चाहिए, और वच्चे भी तो वाहर सोते ही है।"

उमा जैसे आकाश से गिर पड़ी—"नीलम तो अभी पूरे सात वर्प का हुआ है। वह वाहर, बाहर सोयेगा। घरके सभी लड़को मे छोटा है वह। कभी मुझसे दूर नही सोया ..... ।" पर कहती भी क्या। चुपचाप सर झुकाये सुनती रही। गृहिणी को ऐसा लगा, मानो उसकी वात की उपेक्षा की गई है। उनकी वात का कोई उत्तर न देने का साहस इस घर में किसी भी व्यक्ति को नही था। आतंक का तीव्र बाण छोड़ती हुई वह अपने कमरे में चली गई। उमा जैसी की जैसी वैठी रही—विल्कुल निश्चल भाव से वह भाजी काटने में व्यस्त थी।

उसी दिन शाम को उसकी व्यथा और आश्चर्य की सीमा न

रही, जब उसने देखा कि बाहर का नौकर नीलम का बिस्तर लेने आया है। एक बार साहस करके उमा ने पूछा—"किसने कहा कालीचरन ! तुमसे नीलम का बिस्तर ले जाने को ?"

उत्तर मिला—"बड़े बाबू ने।"

और उमा हाथ मल कर रह गई। आगे वह क्या करती ? किन्तु उस दिन रात भर न उसे नीद आई और न नीलम को। सबेरे आकर मां की छाती में मुह छिपा कर वह रो पड़ा—"अम्मा, मेरा तो मन नहीं लगता यहां। अब चलो यहा से ····। और उस दिन से उसे इतना तेज बुखार चढ़ा कि सारा दिन बेहोश पड़ा रहा। अगले दिन डाक्टर को दिखलाना तय हुआ। डाक्टर ने बतलाया कि नीलम को टाइफाइड है। उसे सबसे अलग रखना चाहिए। बड़ी छूत की बीमारी है यह।

घंटे और दिन, दिन और सप्ताह होते-होते पूरे दो मास बीत गये, पर नीलम का ज्वर कम नही हुआ, कभी कुछ कम होता भी, तो दूसरे क्षण चौगुना बढ जाता। वह अब हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया था। आंखें गढ़े में धंस गई और हाथ-पैर सूख कर कांटा हो गये। न कभी कुछ कहता है न सुनता है। बोलता है, तो अन्ट-सन्ट बकता है। सब देखते है, और एक दूसरे की ओर भयानक संकेत करके चले जाते है। डाक्टर आते हैं और उमा की ओर एक ठंडी सांस फेंक कर चले जाते है। वह अधमरी-सी पाषाण-प्रतिमा के समान बैठी रहती है, न जाने क्या सोचती रहती है। न खाना खाती है न पीती है—मानो दया और करुणा की साक्षात् मूर्ति ही है वह।

(४)

"नीलू ····अरे बोल भैया। दो महीने से ज्यादा हो गये

तेरी बोली सुने····नीलाम, एक बार आँखे तो खोल मुन्ना! तू कहां जाने की तैयारी कर रहा है, बेटा ? अकेले मत जाना, नीलू! मन नहीं लगेगा—न तेरा और न मेरा।" कहते-कहते उमा ने पलंग की पट्टी पर अपना सर दे मारा। उसकी आंखों के आगे अंधेरा-सा छा गया। आंसू भी न जाने, कैसे सूख गये, नहीं तो रोकर ही मन कुछ हल्का हो जाता।

ठीक दोपहरी का समय था। मां के हृदय में भट्ठी-सी जल रही थी। वह न जाने कब से प्रलाप कर रही थी। तभी धीरे-धीरे उसके कमरे में गृहस्वामी ने प्रवेश किया। उमा की एक-एक बात उनके कलेजे को आज अचानक ही काटे डाल रही थी। उन्हें ऐसा लगा, मानो इसका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है—जैसे वे ही इस अभागी युवती की बरबादी का कारण है। उन्होंने आज उसे पथ की भिखारिन बना डाला है। उसकी कुन्दन-सी काया मिट्टी में मिल रही है। उन्हे याद आया वह दिन, जब उसे सजा-सवांर कर डोले मे बैठा कर उन्होंने भाई का हक पूरा किया था। कितने लाड़-प्यार से पाला था उमा को, उसके मां-बाप ने ! जमींदार बाबू को ऐसा लगा, मानो उमा के माता-पिता प्रेत बन कर उन्हें घूर रहे है। उनका दिल बैठने लगा। तभी उमा ने धीरे-धीरे पट्टी से सिर उठा कर फिर नीलम की ओर देखा।

जगदीश बाबू ने साहस करके दो पग और आगे बढाये और ठीक उमा के पीछे खड़े होकर बोले—"तुम मुकदमा जीत गई, उमा। अभी तार आया है। रुपया जल्दी ही मिल जायेगा।"

पर उमा को कुछ नही सूझ रहा था। उसने बड़ी आकुलता से बड़े भाई के पैरों पर अपना सर रखते हुए कहा, "नीलम को बचा लो, भैया। यह मुझे छोड़ कर चुपचाप चला जा रहा

है। अब तो आंख भी नही खोलता। इसके प्राण स्वतन्त्र होना चाहते है, भैया। यह अब बन्धन पसन्द नही करता। मुझे कोई ऐसा कोना ढूढ़ दो, जिसे नीलम अपना घर समझ सके, जहा इसका अपमान न हो, जहां इसे मुझसे कोई अलग न कर सके। और यदि मरना ही है, तो यह शान्ति से तो मर सके।"

कहते-कहते उमा की आंखों से अवरिल अश्रुधारा बह चली। उसे ऐसा लगा मानो युगों के बाद आज उसे थोड़ा सहारा मिला है। आज उसकी कोई सुन रहा है। आज उसके बन्धन ढीले पड़ रहे है। आज उसके मुख से दो शब्द निकल सके है। जगदीश बाबू ने उमा को उठाते हुए कहा—"बस करो, उमा। जो तुम चाहोगी वही होगा। नीलू अच्छा हो जायगा। मै अभी दूसरे डाक्टर को बुलाता हूं।"

वे बाहर चले गये। पत्थर अचानक ही करुणा की तीव्र ज्वाला मे पसीज गया। उमा ने आसू पोंछ कर नीलम के सिर पर हाथ फेरा और फिर दोनों हाथ जोड़कर किसी अज्ञात शक्ति को नमस्कार किया। नीलम ने आंखे मूदे ही मूदे अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा—'अ म्म मा ं पा नी।'

उमा के कानों मे जैसे सहसा अमृत बरस पड़ा—जैसे आज आकाश का चांद मुट्ठी मे आ गया। उसने चम्मच-भर पानी बालक के मुह मे डालते हुए कहा—"जल्दी अच्छे हो जाओ भैया। फिर अपने घर चलेगे।"

कहानीकारों का परिचय

श्री जयशंकर प्रसाद

प्रसाद जी का जन्म काशी के एक धनी-मानी वैश्य-परिवार में, १८८९ में हुआ था। स्कूली शिक्षा केवल आठवी कक्षा तक प्राप्त की। पश्चात् घर पर ही हिन्दी, सस्कृत, उर्दू और अग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया।

कविता की ओर आपका झुकाव बाल्यकाल से ही था। बाद में आपने नाटक, उपन्यास और कहानिया भी लिखनी आरम्भ कर दी।

यद्यपि प्रसाद जी की भाषा कुछ क्लिष्ट है, परन्तु भावो की मधुरिमा और कला-सौंदर्य की दृष्टि से उनकी रचनाएँ अद्वितीय बन पडी है।

१९३७ में आपकी मृत्यु हुई। और उसके पश्चात् आपके प्रसिद्ध काव्य-ग्रथ 'कामायनी' पर मगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया।

प्रसाद जी एक नये साहित्यिक युग के निर्माता तो थे ही, साथ ही एक नई विचार-शैली, नई भावधारा और नवीन दर्शन के उद्भावक भी थे।

प्रसाद जी की 'आकाशदीप' कहानी के पात्र चम्पा तथा बुद्धगुप्त दृश्य होते हुए भी अदृश्य तथा प्रस्तुत होते हुए भी अप्रस्तुत से लगते है। इसके कारण कहानी में जो एक रहस्य उत्पन्न होता है, और वही रहस्य जब प्रकट होता है तो कहानी प्रभावोत्पादक बन जाती है। आरम्भ में ही इन दो पात्रों की कहानी के दो आधार स्तभो का परिचय, प्रसाद जी ने उपर्युक्त रीति से कराया है। इसके आरम्भ में जोरदार पकड़ है।

इस कहानी में आद्योपान्त क्षिप्रता का वातावरण बना रहता है। चम्पा और बुद्धगुप्त का चरित्र सफलता से अकित हुआ है। यह प्रसाद जी की श्रेष्ठ कहानियो में से एक है।

प्रमुख रचनाएं

कविता—कामायनी, आसू, झरना, प्रेमपथिक, कानन कुसुम, महाराणा का महत्त्व।

नाटक—अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, जन्मेजय, राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी, करुणालय, कामना, एक घूट।

उपन्यास—तितली, ककाल।

कहानी सग्रह—आकाशदीप, छाया, प्रतिध्वनि, आधी।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

गुलरी जी का जन्म, १८८३ में, गुलेर (कागडा) मे हुआ था। क्योकि आपके पिता पं० शिवराम शास्त्री जयपुर संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल थे, इसलिए यह परिवार जयपुर में ही वस गया था।

गुलेरी जी ने वी ए. तक शिक्षा पाई। आपकी गिनती प्रतिभाशाली छात्रों में की जाती थी। श्री गुलेरी जी संस्कृत, प्राकृत, पाली और अंग्रेजी के अच्छे विद्वान थे। भापा-विज्ञान का उन्होने गहन अध्ययन किया था। वे हिन्दू विश्वविद्यालय, वनारस में कई वर्प प्राच्य शिक्षा विभाग के अध्यक्ष पद पर रहे।

श्री गुलेरी जी ने केवल तीन कहानिया लिखी है। 'उसने कहा था' कहानी विश्व साहित्य की श्रेष्ठतम कहानियो मे से एक है। कई फुटकर निवन्ध भी गुलेरी जी ने लिखे हैं। 'पुरानी हिन्दी' शीर्पक उनका निवन्ध वहुत ही महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।

'उसने कहा था' कहानी अपनी प्रौढ़ता, अनुपम कल्पनाशक्ति और अनूठी वर्णन-शैली के कारण अपने जन्म के तीस वर्प पश्चात् आज भी यथार्थवादी कहानियों में अद्वितीय है। यद्यपि इन तीस वर्पो मे हमारा कहानी-साहित्य पर्याप्त समृद्ध हो चुका है। कहानीकार अपनी ओर से एक भी शब्द न कह कर घटनाओ और कथोपकथन के द्वारा ही भावाभिव्यक्ति करता है। और यह कहानीकार की वहुत वड़ी विशेपता है। भापा, विधान और कथोपकथन सभी दृष्टियो से यह एक उत्कृष्ट कहानी है। वातावरण के सजीव चित्रो के भीतर स्नेह की वासनाहीन शक्ति की लेखक ने जिस ढग से सृष्टि की है, वह अकथनीय है।

आरम्भ से अन्त तक कहानी की पकड कही ढीली नही होती और वह अपने प्रभाव की स्थायी छाप पाठक पर छोड जाती है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

श्री कौशिक जी का जन्म सन् १८९१ में, अम्बाला (पंजाब) मे हुआ था। कौशिक जी बचपन से ही दत्तक होकर कानपुर चले गये और बाद में वही रहे।

श्री कौशिक जी ने मैट्रिक तक शिक्षा पाई थी। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फारसी के आप अच्छे जानकार थे। पहले आपका झुकाव कविता की ओर था, किन्तु बाद में कहानी-उपन्यास लिखने लगे और प्रभूत यश पाया।

आपकी भाषा सरल किन्तु ओजस्विनी है। शैली में स्वाभाविकता है। कथोपकथन आपकी कहानियों की विशेषता है।

१९१२ में आपकी पहली कहानी 'रक्षा-बन्धन' सरस्वती में छपी। 'दूबे जी की चिट्ठी' के नाम से आपने कुछ हास्य रस के पत्र भी लिखे है।

'रक्षा-बन्धन' कथोपकथन-प्रधान शैली की कहानी का उत्कृष्ट नमूना है।

यद्यपि इस कहानी का आरम्भ भाई के अभाव की उपस्थिति से होता है, तो भी, पारिवारिक स्नेह-सबंध का सफल मार्मिक उद्घाटन होने से इसका चर्मोत्कर्ष आनन्द मूलक बन गया है।

अपनो का अपनो के प्रति सहज स्वाभाविक आकर्षण होता है, इस तथ्य का सुन्दर उद्घाटन कर भाई-बहन के स्नेह-सबध की प्रस्थापना इसमें की गई है।

प्रमुख रचनाएं

उपन्यास—मा, भिखारिणी।

कहानी-सग्रह—चित्रशाला, मणिशाला।

नाटक—भीष्म।

पत्र-सग्रह—दूबे जी की चिट्ठी।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

श्री चतुरसेन जी का जन्म १८८१ में हुआ। शास्त्री जी यशस्वी साहित्यकार के अतिरिक्त लब्ध प्रतिष्ठ वैद्य भी है और व्यवसाय के रूप में आपने वैद्यक को ही अपनाया है।

आपकी साहित्य-धारा में अद्‌भुत प्रवाह, वर्णन में सजीवता और भापा में लालित्य होता है।

मुगलकालीन इतिहास का अध्ययन शास्त्री जी ने विशेप रूप से किया है। आप सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले कलाकार है। कहानी, उपन्यास, नाटक, गद्य काव्य, सभी कुछ आपने लिखा है और वहुत सुन्दर लिखा है।

सस्कृत साहित्य का आपने गहरा अव्ययन किया है। पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारो में आपका स्थान महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न विषयों पर सौ से ऊपर आपकी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

'खनी' आत्मकथन-प्रधान शैली की कहानी है। किसी असाधारण घटना से, प्रवान चरित्र के चरित्र परिवर्त्तन को लेकर लिखी गई उत्कृष्ट कहानियो मे से यह एक है। कहानी में कोई भी नाम नही आया है। तो भी पाठक को कही भी कुछ कठिनाई नही होती। जीवन-चरित्र, शक्तिम शैली, सफल विवान और जोरदार भापा, सभी कुछ कहानी में विद्यमान है।

अहिसा वृत्ति वालों में जो एक प्रकार की कायरता होती है, उसका सफल निदर्शन इसमे हुआ है।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास—वैशाली की नगर वधू, सोमनाथ, वयं रक्षामः।

कहानी संग्रह—नवाव ननकू, लम्व ग्रीव, लाला रुख आदि।

श्री प्रेमचन्द

अमर कथाकार प्रेमचन्द जी का जन्म १८८० में वनारस जिले के एक छोटे-से गाव में हुआ था। वचपन में ही पहले माता का और वाद में पिता का देहान्त हो गया।

मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करने के वाद आप अध्यापक का कार्य करने लगे और साथ ही प्राइवेट परीक्षा देकर वी. ए. पास कर लिया। उन्नति करते-करते अध्यापक से सव-डिप्टी इस्पैक्टर बन गये।

पहले आपने उर्दू में लिखना प्रारम्भ किया। हिन्दी में आपकी पहली कहानी १९१५ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई।

१९१९ के असहयोग आन्दोलन में आपने भी सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया और स्वतत्र साहित्यकार का जीवन प्रारम्भ किया।

सरल, सरस और मुहावरेदार भाषा, मार्मिक, स्वाभाविक चित्रण आपकी विशेषता है। ग्राम्यजीवन के आप अद्वितीय शिल्पी है।

'बडे भाईसाहब' शीर्षक कहानी पूर्ण मनोवैज्ञानिक है। अयोग्यताजन्य हीन भाव की प्रतिक्रिया के रूप में बडे भाई साहब की उपदेश-वृत्ति का बडी स्वाभाविक रीति से चित्रण हुआ है।

विद्यार्थी काल में अपने पाठ्यक्रम की कठिनाई के सबध में साधारणतया सभी, और विशेष रूप से अयोग्य छात्र, जैसी बातें किया करते है, वे बड़े भाई साहब से कहलवाई गई है।

बडे भाई साहब यद्यपि कठोर अनुशासन मे विश्वास रखते थे, तो भी मौका मिलते ही उनके भीतर की स्वाभाविक बालवृत्ति, अनुशासन की दीवार को फाद कर बाहर निकल पडी।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास—कर्मभूमि, कायाकल्प, गबन, गोदान, निर्मला, रंगभूमि, प्रेमाश्रम, वरदान, सेवासदन।

कहानिया—मान सरोवर ८ भाग।

नाटक—सग्राम, प्रेम की वेदी, कर्बला।

निबन्ध—साहित्य का उद्देश्य

श्री रायकृष्णदास

श्री रायकृष्णदास जी का जन्म १८९२ मे, काशी के एक समृद्ध वैश्य परिवार में हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। लेखन की ओर आपकी रुचि बचपन से ही है। साहित्य के समान ही चित्रकला और मूर्तिकला के भी आप मर्मज्ञ है और उस क्षेत्र में भी आपने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। भारत कला भवन, काशी आपके ही शुभ प्रयत्नों का परिणाम है।

आपने अपनी प्रतिभा से साहित्य के विविध अगो को पुष्ट किया है। गद्य काव्य, कविता, कथोपकथनात्मक लेख, कहानी, निबन्ध सभी मे आपने

उत्कृष्ट कृतियों की रचना की है। भारतीय चित्रकला और मूर्त्ति कला पर भी आपने खोजपूर्ण कृतिया प्रस्तुत की है।

आपकी रचनाओं में भावुकता और दार्शनिकता पाई जाती है। आपकी भाषा संस्कृतनिष्ठ किन्तु सुबोध होती है। गद्यकाव्य-लेखक होने के कारण आपकी कहानियों की भाषा भी काव्यमयी होती है।

प्रमुख रचनाएँ

कहानी-संग्रह—सुधांशु, अनाख्या।

गद्यकाव्य—साधना, छायापथ, प्रवाल, संलाप।

कविता—भावुक।

अन्य—भारतीय चित्रकला, भारतीय मूर्त्तिकला।

श्री सुदर्शन

श्री सुदर्शन जी का जन्म १८९६ में, सियालकोट (पंजाब) में हुआ। आपने बी. ए. तक शिक्षा पाई। कहानी-लेखन की ओर आपकी रुचि बचपन से ही थी। जब आप छठी कक्षा में पढ़ते थे, तब आपने उर्दू में पहली कहानी लिखी थी। पहले आप उर्दू में ही लिखते रहे और अच्छा नाम कमाया। पश्चात् हिन्दी के क्षेत्र में आये और वहां कहानीकारों की प्रथम पंक्ति में स्थान बना लिया।

हिन्दी में आपकी सबसे प्रथम कहानी, १९२० में, 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। लोकप्रिय कहानी लेखकों में प्रेमचन्द जी के बाद आपका ही नाम लिया जाता है।

कहानी के अतिरिक्त आपने नाटक, उपन्यास और बाल-साहित्य भी लिखा है। आपकी कई कहानियां फिल्माई जा चुकी है और सफल हुई हैं।

स्वाभाविकता और मनोरंजकता आपकी कहानियों की विशेषता है।

प्रमुख रचनाएँ

कहानी संग्रह—सुदर्शन सुमन, सुदर्शन सुधा, सुप्रभात, तीर्थयात्रा।

उपन्यास—भागवन्ती।

नाटक—भाग्यचक्र, अंजना, सिकन्दर।

प्रहसन—आनरेरी मजिस्ट्रेट।

श्री भगवतीचरण वर्मा

श्री वर्मा जी का जन्म १९०३ में, शफीपुर (उत्तर प्रदेश) मे हुआ। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी. ए, एल. एल बी. की परीक्षाएं पास की।

लेखन की ओर आपकी प्रवृत्ति बचपन से ही थी। आप जब सातवी कक्षा में पढते थे, तब आपकी कुछ कविताए कानपुर के दैनिक प्रताप में प्रकाशित हुई थी। १९२१ मे आपकी पहली कहानी 'हिन्दी मनोरंजन' में प्रकाशित हुई थी।

साहित्य क्षेत्र में पहले आप सुकवि के रूप में प्रसिद्ध हुए और बाद में कहानी, उपन्यास, नाटक-एकाकी सभी कुछ लिखने लगे।

आपकी कहानिया अधिकतर दैनिक जीवन की कुछ मनोरंजक बातो को लेकर लिखी गई हैं। उसमें कल्पना का पुट पर्याप्त होता है। जिससे वे और भी चमत्कारपूर्ण हो जाती हैं। सहज व्यग्य और हास्य आपकी विशेपता है।

वर्मा जी की शैली एक अलग व्यक्तित्व रखती है। चित्रात्मकता, सजीवता, सकेतात्मकता उसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

'प्रायश्चित्त' कहानी मे हिन्दू स्त्रियो की धर्म-मीमांसा और पडितो की ठगविद्या पर अच्छा व्यग्य है। बिल्ली को अप्रत्याशित रूप से चलता-फिरता कर गाभीर्य से एकाएक हास्य का वातावरण उपस्थित कर दिया गया है।

प्रमुख रचनाएँ

कहानी संग्रह—दो बांके, इन्स्टालमेंट

उपन्यास—टेढे-मेढे रास्ते, चित्रलेखा, तीन वर्ष, आखिरी दाव, पतन।

श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

श्री उग्र जी का जन्म १९०१ में चुनार (उत्तर प्रदेश) में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा काशी में हुई। असहयोग आन्दोलन में आपने स्कूल छोड़ दिया।

आपकी पहली कहानी १९२० में 'आज' में छपी। हिन्दी में आपकी रचनाएँ सदा चर्चा का विषय रही और उन्हे लेकर वाद-विवाद होते रहे।

आपकी लेखनशैली सर्वथा अनूठी है। आप अपनी बात को बिना लाग-लपेट के, शक्तिम शैली में कहते है। प्रभावोत्पादक और दमदार भाषा लिखने मे आप बेजोड है।

साहित्य के सभी क्षेत्रो में आपने सफल प्रयास किये है। कहानी, नाटक, प्रहसन, कविता सब कुछ आपने लिखा और सफल रहे। यथार्थवादी शैली के प्रवर्तको मे आपका प्रमुख स्थान है।

'उसकी मा' बड़ी करुणाजनक कहानी है। इसमे आपने देशभक्ति की भावना को जनजीवन में प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयत्न किया है। मा की ममता और सरलता को बडी खूबी से चित्रित किया गया है।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास—सरकार तुम्हारी आखो में, खुदाराम और चन्द हसीनो के खतूत, कढी में कोयला, शराबी, मनुष्यानन्द।

कहानी सग्रह—रश्मि, जब सारा आलम सोता है।

नाटक—सनकी अमीर।

कविता—कचन घट।

सस्मरण—व्यक्तिगत।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

श्री वृन्दावनलाल वर्मा का जन्म १८९० में मऊरानीपुर में हुआ। बी. ए. एल. एल. बी तक शिक्षा प्राप्त की। साहित्य क्षेत्र में आपका सुयश एतिहासिक उपन्यासकार के नाते है किन्तु आपने कई सुन्दर कहानिया और नाटक भी लिखे है। उपन्यासो की ही भाति आपकी कहानियो की कथावस्तु भी प्रायः ऐतिहासिक होती है। इतिहास और कल्पना का संयोग सोने में सुगन्ध की सृष्टि करता है।

सुमधुर धारावाहिक भाषा और सजीव वातावरण-चित्रण वर्मा जी की विशेपता है।

'शरणागत' मे बुन्देलों की शरणागत-वत्सलता की परम्परा का चित्रण है। गई-बीती दशा मे भी, डाकू का जघन्य कार्य करते हुए भी, ठाकुर के मन में कुछ परम्परागत संस्कार विद्यमान है। शरणागत की रक्षा के लिए वह अपनी

ओर से कुछ उठा नही रखते । चरित्र की अभिव्यक्ति का ढग भी कलापूर्ण है ।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास—गढ कुंडार, विराटा की पद्मिनी, झासी की रानी, मृग-नयनी, कचनार, कुण्डली चक्र, अचल मेरा कोई, संगम, प्रत्यागत आदि ।

नाटक—राखी की लाज ।

कहानिया—शरणागत ।

इलाचन्द्र जोशी

श्री जोशी जी का जन्म १९०२ में अलमोड़ा में हुआ। आजकल आप इलाहाबाद में रहते हैं ।

१९२३ से आप साहित्य के क्षेत्र में अवतरित हुए। हिन्दी के अतिरिक्त अग्रेजी में भी लिखते रहे। कई पत्रो का सपादन भी आपने किया ।

आप यथार्थवादी कलाकार हैं । पाश्चात्य ढग पर मनोविश्लेषणात्मक कहानी लिखने वालो में आप अग्रणी हैं । मनोवैज्ञानिक चित्रण आपकी विशेषता है । आप अपनी सूक्ष्म दृष्टि से पात्रो के मनोभावो के स्पष्ट और हृदयहारी चित्र अकित कर देते हैं ।

कहानी लिखने के अतिरिक्त आप सफल उपन्यासकार, कवि और निवन्ध लेखक भी हैं ।

'मिस्त्री' शीर्षक कहानी का नायक मिस्त्री अपने छोटे भाई की शिक्षा के लिये खून-पसीना एक कर देता है और उसे काम पर भी लगवा देता है । छोटे भाई के पुत्र के साथ उसे ममत्वमय प्रेम है, पर छोटे भाई की पत्नी उसे घृणा से देखती है, और मिस्त्री को घर से निकलना पडता है । इस खटपट में वच्चे की जान चली जाती है और मिस्त्री का कोमल हृदय समाज की ओर उपेक्षापूर्ण और स्त्री जाति के प्रति पाषाणमय हो जाता है ।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास—घृणामयी, जिप्सी, सन्यासी, मुक्ति-पथ, लज्जा, पर्दे की रानी ।

कहानी-संग्रह—धूपलता।
कविता—विजनवती।
आलोचना—साहित्य सर्जन।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

वाजपेयी जी का जन्म १८९९ में, कानपुर में हुआ। मिडिल तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् एक पाठशाला मे अध्यापक हो गये। पश्चात् अध्यापक का कार्य छोड कर कानपुर के एक पुस्तकालय के अध्यक्ष पद पर कार्य करने लगे।

पुस्तकालयाध्यक्ष का कार्य करते समय अध्ययन का पर्याप्त अवसर मिला और लिखने की प्रेरणा भी। आपकी पहली कहानी १९२४ मे 'माधुरी' में छपी।

चरित्र-चित्रण-प्रधान कहानी लिखने में आपको विशेप सफलता मिली है। आप कोई साधारण सी कथावस्तु लेकर उसे सजा-संवार कर असाधारण बना देते है। आप पाठक की उत्सुकता को अन्त तक सुन्दर ढंग से बनाये रखते है। आपकी कहानियो का अन्त बहुत ही कलापूर्ण होता है।

उनकी 'मिठाईवाला' कहानी उनकी कला का उत्कृष्ट नमूना है। इसमें उन्होने मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि पर सजीव चरित्र-चित्रण की सृष्टि की है। मिठाईवाले ने अपने पितृ सुलभ स्नेह का दान प्रत्येक बच्चे के लिए करता हुआ उन्ही में अपने मृत पुत्रों की आत्मा का दर्शन करता है। उदात्त भावनाओ का विकास मिठाईवाले के जीवन में बहुत ही सुन्दर हुआ है।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास—दो बहनें, मनुष्य और देवता, ज्वारभाटा, पतवार, यथार्थ से आगे, चिराग, चलते-चलते आदि।

कहानिया—पुष्करिणी, अगारे, हिलोर, खाली बोतल।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

श्री बेनीपुरीजी का जन्म १९०१ मे हुआ। बचपन से ही आपकी प्रवृत्ति लेखन की ओर थी। १९१७ में आपकी पहली रचना दैनिक 'प्रताप' में छपी थी।

आपने कई पत्रों का सम्पादन किया। दर्जनों किशोरोपयोगी पुस्तके लिखी, और कहानी, उपन्यास, नाटक, एकाकी, निबन्ध, शब्दचित्र, यात्रा-वर्णन लिखकर सभी साहित्यागो को सुपुष्ट किया।

साहित्य के साथ-साथ आप राजनीति और सामाजिक कार्यो मे भी पूरे मनोयोग से भाग लेते रहे और कोई दस-बारह बार जेल-यात्रा कर चुके हैं।

आपकी कई पुस्तको के उर्दू संस्करण भी हो चुके हैं। कई पुराने काव्य-ग्रन्थो की आपने टीका भी की है। भाषा पर आपका असामान्य अधिकार है। हिन्दी के शब्द-शिल्पियो मे आपका प्रथम स्थान है।

'गोशाला' मे आपने मानव की मानव के प्रति उपेक्षा पर अच्छा व्यंग्य किया है।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास—पतितो के देश मे, लाल तारा, झोपड़ी का रुदन, सात दिन, आंसू की तस्वीरे, रानी आदि।

रेखाचित्र—माटी की मूरते।

नाटक—अम्बपाली, तथागत, नेत्रदान आदि।

श्री जैनेन्द्रकुमार

श्री जैनेन्द्र कुमार का जन्म १९०५ में अलीगढ जिले में हुआ। परन्तु अब वे स्थाई रूप से दिल्ली-निवासी बन गये हैं। असहयोग आन्दोलन के दिनो मे आप ने भी कालेज छोड दिया था। १९३० मे आप जेल भी गए और इन्ही दिनो आपने लिखना आरम्भ किया।

कहानी, उपन्यास, निबन्ध नाटक सभी कुछ आपने लिखा है। आपके विचार दार्शनिकता लिए हुए है और गाधीवादी विचारधारा से प्रभावित हैं।

पाश्चात्य मनोविज्ञान के आधार पर मनोविश्लेपणात्मक चित्र उपस्थित करना आपकी विशेषता है।

आपकी अपनी मौलिक लेखन शैली है। आपने कुछ कहानियां पुरातन ढग की भी लिखी हैं।

आपकी कई रचनाओ के अनुवाद दूसरी भाषाओ मे हो चुके हैं। टाल-

स्टाय की कई पुस्तको के अनुवाद भी आपने किये हैं जो काफी लोकप्रिय हुए है।

'पाजेब' मे प्रश्नोत्तर रूप मे बालक की मानसिक स्थिति का चित्र बहुत सुन्दर ढंग से चित्रित हुआ है। यह कहानी आपकी लेखनशैली की प्रतिनिधि कहानी कही जा सकती है।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास—परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, मुखदा, विवर्त, व्यतीत।

कहानी सग्रह—एक रात, वातायन, फासी, नीलम देश की राज कन्या, स्पर्धा, पाजेब, जय-सन्धि तथा जैनेन्द्र की कहानिया : ७ भाग।

निबन्ध—प्रस्तुत प्रश्न, जड की बात, पूर्वोदय, साहित्य का श्रेय और प्रेय, मन्थन, सोचविचार; काम, प्रेम और परिवार।

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार जी का जन्म कोट अड्डू, पंजाब (अब पाकिस्तान) मे सन् १९०६ मे हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल कांगडी, हरिद्वार मे हुई।

मौलिक कथा साहित्य की रचना के साथ-साथ आपने कई पाश्चात्य कहानियो के अनुवाद भी किये।

विभाजन के पश्चात् आप दिल्ली आ गए और भारत सरकार के 'आज-कल' नामक पत्र का सम्पादन कर रहे हैं।

आपकी पहली कहानी १९२८ में 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई थी। आपने कुछ सुन्दर नाटक और आलोचनात्मक निबन्ध भी लिखे हैं।

सरल भाषा, वातावरण का मार्मिक चित्रण और टैक्नीक के नए-नए प्रयोग आपकी कला के प्रमुख गुण हैं।

'काम-काज' कहानी रचना-विधान, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन आदि सभी दृष्टियो से उत्कृष्ट बन पडी है। हमारा जीवन कितना यान्त्रिक-सा हो गया है, इस पर मार्मिक व्यंग्य भी है। यह आपकी कहानियो मे ही नहीं, हिन्दी की कहानियों में भी एक उत्कृष्ट कहानी समझी जाती है।

प्रमुख रचनाएँ

कहानी सग्रह—चन्द्रकला, भय का राज्य, अमावस और वापसी।
नाटक—रेवा, अशोक, शिव-सती, गौरी-शंकर, कास्मोपोलिटन क्लब।
अन्य—आजकल, मानव जाति का संघर्ष और प्रगति—आदि।

श्री सियारामशरण गुप्त

श्री सियारामशरण गुप्त का जन्म चिरगाव, झासी में एक वैश्य परिवार में हुआ। आपके पिता श्री रामचरणजी कविता प्रेमी थे और स्वयं भी कवि थे। आपके बडे भाई श्री मैथिलीशरण गुप्त जी तो खडी बोली कविता के प्रवर्तक ही माने जाते है। हिन्दी के अतिरिक्त आप अग्रेजी, बगला, गुजराती और मराठी भी जानते है।

आपकी प्रसिद्धि भी कवि के रूप में ही है। तो भी आपने कहानी, उपन्यास, नाटक निबन्ध सभी साहित्यागो को पुष्ट किया है।

'कोटर और कुटीर' में आपने साधना की शक्तिमत्ता और लोकोपकारिता का सुन्दर चित्रण किया है।

प्रमुख रचनाएं

उपन्यास—गोद, नारी, अन्तिम आकाक्षा।
कहानी-सग्रह—मानुषी।
नाटक—पुण्य पर्व आदि।
कविता—मौर्य-विजय, दूर्वादल, आत्मोत्सर्ग, अनाथ, विषाद, आर्द्रा, पाथेय, मृण्मयी आदि।
निबन्ध—झूठ-सच।

श्री राधाकृष्ण

श्री राधाकृष्ण जी का जन्म राची जिले में १९१२ में हुआ था। वही पर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। आपको बचपन से ही कहानी लिखने का शौक था। पहले आप घोस-बोस-बनर्जी-चटर्जी के उपनाम से हास्य और व्यंग्यपूर्ण कह ानिया लिखते थे। इनमें आपको काफी लोकप्रियता भी मिली।

यद्यपि राधाकृष्णजी अर्थाभाव के कारण उच्च शिक्षा प्राप्त नही कर सके तो भी उन्होंने अपने स्वाध्याय के वल पर अपने ज्ञान और अनुभव को काफी विस्तृत कर लिया। उनकी गम्भीर कहानियो पर उनके संघर्षमय जीवन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा हैं। उनका चरित्र-चित्रण भी कमाल का होता है।

आप कई वर्ष तक 'कहानी' का सम्पादन करते रहे। फिर विहार सरकार के 'आदिवासी' पत्र के सम्पादक हुए और आजकल आल इण्डिया रेडियो, पटना मे कार्य करते हैं। कहानी के अतिरिक्त उपन्यास, और नाटक भी आपने लिखे है।

'रामलीला' मे उन्होने सामाजिक परिस्थितियो की ओर संकेत किया है जोकि एक व्यक्ति को राम से रावण वन जाने के लिए विवश करती हैं।

प्रमुख रचनाएँ

कहानी-सग्रह---रामलीला, गल्पिका, सजला, फुटपाथ आदि।
उपन्यास---रूपान्तर।
नाटक---भारत छोड़ो आदि।

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

श्री अज्ञेय जी का जन्म १९११ में हुआ। बी. ए. पास करने के पश्चात् आप एम. ए. में प्रविष्ट हुए किन्तु क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित होने के कारण अध्ययन वीच में अधूरा ही छोड़ देना पड़ा। साहित्य, चित्रकला और मूर्तिकला तीनो की ओर आपकी प्रवृत्ति है। आप असाधारण प्रतिभा के कलाकार हैं। आपका अध्ययन और अनुभव व्यापक हैं। विदेशी साहित्य का भी आपने खूब अध्ययन किया है, फलस्वरूप उसका प्रभाव आपके साहित्य पर पडा है।

क्रान्तिकारी आन्दोलन के सिलसिले में आपको कई बार जेल-यात्रा करनी पडी। जेल-जीवन में आपने कई कहानिया और कविताएं लिखी। आपकी पहली कहानी १९२४ में 'सेवा' पत्रिका में छपी। आपने कई पत्रो का सम्पादन भी किया है।

यात्रा आपको बहुत प्रिय है और आपने यात्रा-सम्बन्धी सुन्दर कृतिया प्रस्तुत की है।

आप कहानीकार, नाटककार, कवि, आलोचक और उपन्यासकार होने के अतिरिक्त चित्रकार और मूर्तिकार भी है।

गहन मनोवैज्ञानिक चित्रण आपकी कला की विशेषता है। 'सेब और देव' अज्ञेय जी की कला का सुन्दर उदाहरण है। प्रो० गजानन पण्डित सेबो की चोरी करते बालक को देख कर ग्लानि और क्रोध से भर उठते है और उसे तमाचा मारते है, चोरी के सेबो को भी उससे छीन कर फेंक देते है। फिर मन्दिर में पत्थर की प्राचीन मूर्त्ति को देखकर और उसे उठाने के बाद उनके मन में जो द्वन्द्व उठता है, वह चित्रण उच्चकोटि का बन पडा है।

प्रमुख रचनाएँ

कहानी-संग्रह—परम्परा, विपथगा, जयदोल ।

उपन्यास—शेखर, नदी के द्वीप ।

कविता-संग्रह—चिन्ता, भग्नदूत, हरी घास पर क्षण भर ।

आलोचना—त्रिशंकु

यात्रा—एक टायर की कहानी, अरे यायावर रहेगा याद !

श्री यशपाल

वर्तमान कहानी-लेखकों मे यशपाल जी का नाम बडे सम्मान से लिया जाता है। आपने बी ए. तक शिक्षा पाई है । सशस्त्र क्रान्तिकारियो के दल में सम्मिलित होकर आप कई बार जेल गए।

आपकी कृतियो पर राजनीति का पर्याप्त प्रभाव पडा है। आप कई वर्षों तक 'विप्लव' नामक पत्र का सम्पादन करते रहे। साधारणतया आप अपने साहित्य में मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन और प्रतिष्ठापन करते है। आपकी भाषा और शैली प्रसाद गुण-सम्पन्न कलात्मक होती है।

अब उत्तरोत्तर आपकी लेखनी कला के स्वरूप को संवारने में विशेष प्रयत्नशील है ।

आपकी रचनाएं लेखक के मानस को झकझोरकर कुछ सोचने और करने की प्रेरणा देती है। उनका प्रभाव स्थायी होता है।

प्रस्तुत संग्रह में ली गई उनकी कहानी 'दु:ख' वास्तविक दु:ख और अमीरो के काल्पनिक दुःख का बड़े सुन्दर ढग से चित्रण करती है।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास—दादा कामरेड, दिव्या, देशद्रोही, पार्टी कामरेड, मनुष्य के रूप, पक्का कदम।

कहानियां—अभिशप्त, दो दुनिया, ज्ञानदान, पिंजरे की उड़ान, तर्क का तूफान।

राजनैतिक—मार्क्सवाद, लोहे की दीवार के दो ओर, राम राज्य की कथा, देखा, सोचा, समझा; न्याय का संघर्ष, चक्कर क्लब।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री अश्क जी का जन्म १९१० में जालन्धर में हुआ था। बी. ए. पास करने के पश्चात आप कुछ दिन अध्यापन का कार्य करते रहे और तत्पश्चात् लाहौर जाकर उर्दू पत्रों का सपादन करने लगे।

आप पहले उर्दू में कहानिया लिखा करते थे और उर्दू में आपके दो कहानी-सग्रह प्रकाशित भी हो चुके थे। १९३३ से आपने हिन्दी में लिखना शुरू किया। आपकी पहली कहानी 'हंस' मे प्रकाशित हुई।

कुछ दिन आपने आल इंडिया रेडियो में काम किया, फिर बम्बई जाकर फिल्म-कम्पनियों में भी काम किया। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण बम्बई छोडना पड़ा। अब आप इलाहाबाद में प्रकाशन का कार्य कर रहे है।

आपकी भाषा चुस्त और मुहावरेदार होती है। व्यंग्य का सुन्दर पुट आपकी रचनाओ की विशेषता है। आप सर्वतोमुखी प्रतिभा के कलाकार हैं। उपन्यास, कविता, कहानी, नाटक, एकाकी, निबन्ध सभी कुछ आपने लिखा है।

'टेबल-लैण्ड' में भारत-विभाजन के समय की जनसाधारण की मन:-स्थिति का सुन्दर निदर्शन तो है ही साथ ही धनिक समाज की विभाजन के कारण बेघर लोगो के प्रति उपेक्षा का भी सजीव चित्रण है। आपकी रचनाओ में सर्वत्र नाटकीयता लक्षित होती है।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास—सितारो के खेल, गिरती दीवारे, गर्म राख आदि।

कहानिया—निशानिया, छीटे, पिंजरा, अकुर।

नाटक—जय-पराजय, स्वर्ग की झलक, कैद और उड़ान, छटा बेटा आदि।

कमला चौधरी

श्रीमती कमला चौधरी का जन्म १९११ में लखनऊ मे हुआ और वही शिक्षा पाई।

१९३४ में आपकी पहली कहानी 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई। वह कहानी इतनी सुन्दर बन पडी थी कि उसने साहित्य-जगत मे आपको कहानी-लेखिका के रूप मे प्रसिद्ध कर दिया।

कहानियो के अतिरिक्त आपने हास्य रस की कुछ कविताएं भी लिखी। थोडे-से शब्दो मे पूरे वातावरण को चित्रित कर देना आपकी विशेषता है। भाषा सरल और प्रवाह पूर्ण है। कहानियो की कथावस्तु आप जीवन की किसी साधारण सी घटना से लेती है। और अपनी कला से उसे सजा-सवार कर आकर्षक बना देती है। हिन्दी कहानी लेखिकाओ मे अपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी कहानी साहित्य आपकी कहानियों से समृद्ध हुआ है।

प्रमुख रचनाएं

कहानी सग्रह—पिकनिक, यात्रा, उन्माद, बेल-पत्र।

पद्यानुवाद—उमर खैयाम।

कविता—आपन मरन जगत के हासी।

श्रीमती होमवती देवी

श्रीमती होमवती देवी का जन्म १९०६ मे मेरठ में हुआ था। हिन्दी कहानी लेखिकाओ में आपका नाम आदर के साथ लिया जाता है। आपकी कहानियो की कथावस्तु प्राय. दैनदिन जीवन से सम्बन्धित होती है। अधिकाश कहानियो मे गार्हस्थ्य जीवन का चित्रण बहुत सुन्दर बन पड़ा है। वातावरण प्रधान कहानी लिखने मे आपको अधिक सफलता मिली है।

सरल प्रवाहपूर्ण भाषा और भावात्मक शैली के कारण आपकी कहानियां हृदय-स्पर्शिनी बन पड़ी हैं।

'अपना घर' कहानी अति कारुणिक, भावमयी और पाठक पर स्थायी प्रभाव छोड़ने वाली बन पड़ी है। मातृत्व का ऐसा सजीव चित्रण अन्यत्र कम देखने मे आया है।